अभिषेक नाटकम्

*

सम्पादक: अनुवादक
मोहनदेव पन्त

*

भासकृतम्

अभिषेक-नाटकम्

['छात्रतोषिणी'-टीकासहितम्]

टिप्पण्या च विभूषितम्

टीकाकार

मोहनदेव पन्त

अम्बालास्थ–दीवान कृष्णकिशोर सनातनधर्मसंस्कृतकालेज–

(लाहौर) स्य सेवानिवृत्त-प्रधानाचार्यः

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

दो शब्द

भास के नाटकों में से 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' और 'मध्यम-व्यायोग' की टीकाओं के छात्र-जगत् में आदृत और सर्व-प्रिय होने के कारण मुझे प्रोत्साहन मिला कि मैं भास के अन्य नाटकों की भी उसी तरह छात्र-तोषिणी टीकायें लिखूं। इसी सिलसिले में मैंने भास का यह अभिषेक नाटक लिया। इसमें भी व्याख्या की वही आधुनिक आलोचनात्मक शैली अपनायी गई है। इसकी अपनी एक नयी विशेषता यह है कि इसकी सरल शब्दों में संस्कृत-व्याख्या भी की गई है। जिससे पर्याय-शब्दों के ज्ञान द्वारा छात्रों का शब्द-भंडार बढ़े और साथ ही उनमें संस्कृत में भी विचार प्रकट करने की प्रवृत्ति अंकुरित हो सके। हिन्दी में अर्थ बताने हेतु पृथक् शब्दार्थ-स्तम्भ न बनाकर संस्कृत-व्याख्या के साथ ही सरल-सुबोध, साधारण शब्दों को छोड़ कुछ कठिन से प्रतीत होने वाले—विशेषतः समस्त पदों का हिन्दी-अर्थ ब्रैकटों में दे दिया है। इसके अतिरिक्त समस्त पदों का विग्रह करते हुए समासों के नाम भी विस्तार-भय से व्याकरण-स्तम्भ में न देकर टीका में ब्रैकटों में ही दे दिए हैं। टीका के बाद व्याकरण का पृथक् स्तम्भ बनाकर उसमें सभी शब्दों की व्युत्पत्ति कर दी है। साथ ही भास के पाणिनि-व्याकरण के विरुद्ध जो भी प्रयोग मिले, उनकी भी सोपपत्तिक आलोचना कर दी है और कुछ मोटी-मोटी गलतियों का ग्रन्थ के अन्त में एक पृथक् परिशिष्ट भी दे दिया है। इसके अतिरिक्त जहां-जहां भास भरत मुनि के नाट्य-विधान के विरुद्ध चले हैं अथवा कुछ पौराणिक संकेत दे गए हैं अथवा मूल-कथा से हट गए हैं, एक पृथक् टिप्पणी-स्तम्भ में उन सभी की संक्षिप्त विवेचना कर दी गई है, साथ ही जहां-जहां उनकी भाव-सम्बन्धी त्रुटियां दिखाई दीं या उनके अन्य नाटकों में समान भाव और शब्दावली मिली, उन्हें भी प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया है। कोमल-मति छात्रों हेतु संक्षिप्त छन्दोविज्ञान और नाट्यविधान के परिशिष्ट भी जोड़ दिये गए हैं। जहांतक हिन्दी-अनुवाद का

मोतीलाल बनारसीदास

प्रधान कार्यालय--बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७

शाखाएं--(१) चौक, वाराणसी (उ० प्र०)।

(२) अशोक राजपथ, पटना (बिहार)।

प्रथम संस्करण : वाराणसी, १९७४

श्री सुन्दरलाल जैन, अध्यक्ष-मोतीलाल बनारसीदास चौक, वाराणसी
द्वारा प्रकाशित एवं केशव मुद्रणालय, सुधाकर रोड, खजुरी,
वाराणसी-२ द्वारा मुद्रित

दो शब्द

भास के नाटकों में से 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' और 'मध्यम-व्यायोग' को टीकाओं के छात्र-जगत् में आदृत और सर्व-प्रिय होने के कारण मुझे प्रोत्साहन मिला कि मैं भास के अन्य नाटकों की भी उसी तरह छात्र-तोषिणी टीकायें लिखूं। इसी सिलसिले में मैंने भास का यह अभिषेक नाटक लिया। इसमें भी व्याख्या की वही आधुनिक आलोचनात्मक शैली अपनायी गई है। इसकी अपनी एक नयी विशेषता यह है कि इसकी सरल शब्दों में संस्कृत-व्याख्या भी की गई है। जिससे पर्याय-शब्दों के ज्ञान द्वारा छात्रों का शब्द-भंडार बढ़े और साथ ही उनमें संस्कृत में भी विचार प्रकट करने की प्रवृत्ति अंकुरित हो सके। हिन्दी में अर्थ बताने हेतु पृथक् शब्दार्थ-स्तम्भ न बनाकर संस्कृत-व्याख्या के साथ ही सरल-सुबोध, साधारण शब्दों को छोड़ कुछ कठिन से प्रतीत होने वाले—विशेषत: समस्त पदों का हिन्दी-अर्थ ब्रैकटों में दे दिया है। इसके अतिरिक्त समस्त पदों का विग्रह करते हुए समासों के नाम भी विस्तार-भय से व्याकरण-स्तम्भ में न देकर टीका में ब्रैकटों में ही दे दिए हैं। टीका के बाद व्याकरण का पृथक् स्तम्भ बनाकर उसमें सभी शब्दों की व्युत्पत्ति कर दी है। साथ ही भास के पाणिनि-व्याकरण के विरुद्ध जो भी प्रयोग मिले, उनकी भी सोपपत्तिक आलोचना कर दी है और कुछ मोटी-मोटी गलतियों का ग्रन्थ के अन्त में एक पृथक् परिशिष्ट भी दे दिया है। इसके अतिरिक्त जहां-जहां भास भरत मुनि के नाट्य-विधान के विरुद्ध चले हैं अथवा कुछ पौराणिक संकेत दे गए हैं अथवा मूल-कथा से हट गए हैं, एक पृथक् टिप्पणी-स्तम्भ में उन सभी की संक्षिप्त विवेचना कर दी गई है, साथ ही जहां-जहां उनकी मञ्च-सम्बन्धी त्रुटियाँ दिखाई दीं या उनके अन्य नाटकों में समान भाव और शब्दावली मिली, उन्हें भी प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया गया है। कोमल-मति छात्रों हेतु संक्षिप्त छन्दोविज्ञान और नाट्यविधान के परिशिष्ट भी जोड़ दिये गए हैं। जहाँतक हिन्दी-अनुवाद का

सम्बन्ध है, उसे मैंने—जैसा कि अनुवाद का नियम है—शाब्दिक ही रखना

उचित समझा, जिससे कि छात्रों को मूल-संस्कृत समझने में कोई कठिनाई न हो। ग्रन्थ के आरम्भ में एक विस्तृत भूमिका भी दे दी है, जिसमें भास-सम्बन्धी सभी बातों का पूरा विवेचन कर दिया गया है।

खेद है कि इस टीका को लिखते समय मुझे कोई सहायक पुस्तक नहीं मिल सकी। मूल के लिए मुझे मोतीलाल बनारसीदास वालों से इस ग्रन्थ की विद्यारत्न श्री एस्० रंगाचार द्वारा संपादित प्रति मिली जिसके साथ अंग्रेजी और कन्नड़ी अनुवाद भी थे। भास के सम्बन्ध में प्रो० देवधर द्वारा लिखित 'Plays ascribed to Bhas, their authenticity and merit' नामक निबन्ध भी मिला मध्यमव्यायोग पर अपने वरिष्ठतम शिष्य डा० संसारचन्द्र द्वारा लिखी भूमिका से भी मुझे सहायता मिली। इन तीनों महानुभावों का मैं आभारी हूँ। अन्त में मैं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त, प्रसिद्ध मोतीलाल-बनारसीदास संस्थान के प्रबन्धक ला० सुन्दरलाल और शान्तिलाल जैन का भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने प्राचीन संस्कृत-साहित्य प्रकाशन में उत्कट रुचि दिखाते हुए मेरी इस कृति को प्रकाशित करने का भार उठाया है। वास्तव में इसे लिखने की मूल-प्रेरणा उन्होंने ही मुझे दी है।

देहरादून
शरद् पूर्णिमा १९७३

मोहनदेव पंत

भूमिका

भास संस्कृत-साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार हैं। नाटय-कला के इतिहास में इनका सबसे पहला स्थान है इसमें सन्देह नहीं कि भास से पूर्व भी नाटककार हुए और नाटक लिखे गए। आदिकाव्यकार[1] वाल्मीकि ने उत्सवों पर नाटकों के अभिनय का उल्लेख किया है। व्याकरणकार पाणिनि[2] ने 'अष्टाध्यायी' में अपने समय में शिलादित्य और कृशाश्व-नामक दो नाटयाचार्यों द्वारा चलाए गए सम्प्रदायों (Schools) का उल्लेख किया है। महाभाष्यकार पतञ्जलि[3] ने भी शौभिक सम्प्रदाय के नटों द्वारा अभिनीत 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' नामक दो नाटकों का उल्लेख किया है। किन्तु कोई कृति उपलब्ध नहीं हुई। स्वयं भास और उनके नाटकों के नाम ही नाम हम साहित्य में पढ़ा करते थे। कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्र'[4] नाटक में आदर के साथ भास का नाम एक उच्च नाटककार के रूप में ले रखा है। इसी तरह गद्य-सम्राट् बाणभट्ट भी अपने हर्षचरित के आरम्भ में भास को अपनी श्रद्धाञ्जलि देते हुए उनके नाटकों की विशेषतायें भी बता गए हैं कि वे सूत्रधार से आरम्भ होते हैं, बहुत भूमिका वाले तथा पताका-स्थानों से युक्त होते हैं।[5] राजशेखर ने भास के नाटकों को 'भास-नाटकचक्र' के रूप में स्मरण करके उनमें से 'स्वप्नवासवदत्तम्' को सवश्रेष्ठ

१—वादयन्ति तदा शान्ति लासयन्त्यपि चापरे।
नाटकान्यपरे स्माहुर्हास्यानि विविधानि च ॥ (बा० १।४।५)

२—'पाराशर्य-शिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः' (४।३।१)

३—ये तावदेते शौभिकाः (नटाः) एते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्ति (३।१।२)

४—प्रथित-यशसां भास-सौमिल्ल-कविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमान-कवेः कालिदासस्य क्रियायां बहुमानः (प्रस्तावना)।

५—सूत्रधार-कृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥

[illegible]
कामिनं के रूप में चित्रत करके 'भास' को उसका 'हास' बताया है।[2] इस तरह भोजराज आदि आलंकारिकों ने अपनी-अपनी कृतियों में स्थान-स्थान पर भास के नाटकों में से उद्धरण दे रखे हैं, जिससे सिद्ध होता है कि उक्त सभी कवियों, नाटककारों और आलंकारिकों के समय भास बड़ी भारी प्रसिद्धि पाए हुए कलाकार थे, किन्तु उनके नाटक उपलब्ध नहीं हो रहे थे। संस्कृत-जगत हर्ष-विभोर हो उठा जब सन् १९०९ में ट्रावन्कोर के विख्यात विद्वान् महामहोपाध्याय श्रीगणपति शास्त्री ने पहली बार ट्रावन्कोर में मलयालम लिपि में ताड़-पत्रों पर लिखे भास के १३ नाटकों का पता लगाया और उन्हें प्रकाशित करके संस्कृत-जगत् को भेंट किया। प्रारम्भ में लोगों को इनके भास-रचित होने में सन्देह रहा, किन्तु महामहोपाध्याय जी के प्रबल तर्कों और युक्तियों ने इन नाटकों की प्रामाणिकता सिद्ध कर दी। इस पर हम भी आगे विचार करेंगे।

भास का काल—भास किस समय हुए ? यह प्रश्न बड़ा जटिल और आज तक विवादास्पद ही बना हुआ है। इस विषय में विद्वान् और आलोचक-गण एकमत नहीं हैं। अपने-अपने विचार के नुसार भास को ईसा-पूर्व छठीं शताब्दी से लेकर ईसा-उत्तर ग्यारहवीं शताब्दी तक का मानते हैं। विचारों में यह भेद कोई सौ दो सौ वर्षों का नहीं, प्रत्युत डेढ़ हजार से भी अधिक वर्षों का है। भास के स्थिति-काल की पूर्व सीमा श्रीगणपति शास्त्री, हरप्रसाद शास्त्री और पुसालकर के अनुसार छठी शताब्दी (ई० पू०) है और परसीमा राघवाचार्य रेड्डी के अनुसार ग्यारहवीं शताब्दी (ई० उ०) है। ऐसी स्थिति में कोई निर्णय देना बड़ा कठिन हो जाता है। तथापि इस सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें हमें अवश्य ऐसी मिल जाती हैं जिनके आधार पर हम काल-भेद की इतनी चौड़ी खाई कुछ हद तक पाटकर यदि काल के निश्चित बिन्दु तक न भी पहुँच सकें, तो कम से कम उसके आस-पास की सीमा तक तो पहुँच ही सकते हैं। वे बातें निम्नलिखित हैं—

१—भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥ (काव्यमीमांसा)

२—भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः। (प्रसन्नराघव)

१—राजशेखर (नवीं शती ई०) और बाण (सातवीं शती ई०) द्वारा अपने ग्रन्थों में भास का उल्लेख जिससे भास के सातवीं शती वाले मत का खंडन हो जाता है।

२—कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र में भास का उल्लेख किया है। कालिदास के स्थिति काल के सम्बन्ध में भी विद्वान् लोग एकमत नहीं हैं। पाश्चात्य समालोचक और उनके ही पद-चिन्हों पर चलने वाले बहुत-से भारतीय विद्वान् भी कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' (पांचवी शती ई०) का समकालीन मानते हैं। उनके मतानुसार भास दूसरी अथवा तीसरी शताब्दी (ई० उ०) के हैं और अश्वघोष प्रथम शताब्दी (ई० उ०) के। इस प्रकार वे भास को कालिदास और अश्वघोष—दोनों से पूर्वतन मानते हैं। परन्तु कालिदास पर हुए नवीन शोधों के अनुसार इस मत का खण्डन हो चुका है और यह पूर्णतः निश्चित हो गया है कि कालिदास उस परमार-वंशीय सम्राट् आदि-विक्रमादित्य के सम-सामयिक थे, जिन्होंने ईसा से ५७ वर्ष पूर्व अपने नाम का 'विक्रम' संवत्सर चलाया था। इससे सिद्ध होता है कि कालिदास द्वारा उल्लिखित भास ५७ (ई० पू०) से भी पूर्व के हैं।

३—मृच्छकटिक के प्रणेता शूद्रक ने भास के 'चारुदत्त' को आधार बनाकर ही अपनी रचना की है यह सभी मानते हैं। इससे भास का स्थिति-काल शूद्रक से पूर्व होना निश्चित है। शूद्रक का समय बहुमतानुसार दूसरी-तीसरी शताब्दी ईसा-पूर्व माना जाता है। इससे भास को शूद्रक से पूर्ववर्ती ही होना चाहिए। इसके अतिरिक्त भास ने अपने 'प्रतिमा' नाटक में बृहस्पतिकृत अर्थशास्त्र का उल्लेख कर रखा है ('बार्हस्पत्यम् अर्थशास्त्रम्') : बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का उल्लेख महाभारत में आया हुआ है। स्पष्ट है कि बृहस्पति चाणक्य से पूर्वतन हैं और चाणक्य से पूर्व बृहस्पति के अर्थशास्त्र की ही मान्यता थी। यदि भास चाणक्य के बाद के होते तो वे बृहस्पति के अर्थशास्त्र के स्थान में चाणक्य के अर्थशास्त्र का उल्लेख करते जिसका बाद में खूब प्रचार रहा। इस सम्बन्ध में उल्लेखयोग्य दूसरी बात यह भी है कि चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में सैनिक का कर्तव्य इस तरह बता रखा है:—

नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं
सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।
तत्तस्य मा भून्नरकं स गच्छेद्
यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ॥ (१०।३)

यह श्लोक भास के 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' (४।२) का है जिसे ज्यों-का-त्यों चाणक्य ने लिया है। चाणक्य का समय बहुमत से तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व माना गया है। यह चाणक्य वही है, जिसने नन्द-वंश का मूलोच्छेद करके चन्द्रगुप्त मौर्य को अभिषिक्त किया और मौर्यवंश की नींव रखी थी। इतिहासकारों ने चन्द्रगुप्त मौर्य का मृत्युसमय २९९ (ई० पू०) दे रखा है। इससे भी सिद्ध होता है कि भास का स्थिति-काल तीसरी शताब्दी (ई० पू०) है।

४—भास के नाटकों में रामायण और महाभारत की तरह बहुत से शब्द-प्रयोग पाणिनि-व्याकरण के विरुद्ध मिलते हैं। उदाहरण के रूप में इसी अभिषेक नाटक में देखिए:—'माम् न रमते' (२।१०), 'आकर्षमाणः (१।१६),'विशत' (५), 'समाश्वासितुम्' (६।१९), 'वीजन्ति' (३।१), 'मज्जमानम्' (६।२२) इत्यादि। इससे यदि भास को हम पाणिनि (५०० ई० पू०) से पूर्व का न भी मानें, तो भी इतना अवश्य मान सकते हैं कि वे पाणिनि के आस-पास उस समय के थे जब पाणिनीय व्याकरण अपना प्रभाव लोगों पर अच्छी तरह नहीं जम चुका होगा, क्योंकि वह व्याकरण का संक्रमण-काल (Transition period) रहा, इसलिए जैसा कि सभी संक्रमण-कालों में हुआ करता है, पुराने प्रयोग भी तब चलते ही रहते होंगे।

५—भास के सम्बन्ध में प्रचलित एक दन्तकथा यह है कि एक बार भास और व्यास के मध्य विवाद छिड़ उठा कि दोनों में से किसकी कृतियाँ उत्तम हैं। निर्णय हेतु दोनों के ग्रन्थों में से एक-एक लिया गया और उनकी अग्नि-परीक्षा ली गई। अग्नि ने भास का ग्रन्थ नहीं जलाया और भास विजयी हुए। इस दन्तकथा से इतनी बात तो अवश्य सिद्ध हो जाती है कि भास व्यास की तरह बड़े प्राचीन कवि हैं, अन्यथा भास का विवाद व्यास के साथ न कराकर कालिदास, अश्वघोष आदि के साथ कराया जा सकता था। इसके अतिरिक्त भास ने अपने

प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण नाटक में व्यास की राज-गृह में [illegible] है । यह बात भी भास की प्राचीनता की ओर संकेत करती है।

६—भास के सम्बन्ध में काल-भेद की ईसा बादकी ग्यारहवीं शताब्दी तक फैली हुई खाई को पाटकर हम ईसा पूर्वकी तीसरी शताब्दी तक पहुँच गए हैं। अब गणपति शास्त्री आदि विद्वानों द्वारा स्वीकृत छठी शताब्दी ईसा पूर्ववाली उपरितन सीमा पर भी विचार कर लेते हैं कि वह कहाँ तक ठीक है। हम देखते हैं कि भास ने अपने नाटकों में अनेक चरित्र नायकों–राम और कृष्ण–को देवत्व प्रदान कर रखा है जिससे भास का उनसे बहुत बाद का होना स्वतः सिद्ध है। भगवान् राम-कृष्ण और कौरव-पाण्डवों के बाद भास ने जिसे अपना चरित्र-नायक बनाया है, वह हैं वत्सराज उदयन। उदयन के चरित्र को लेकर भास ने दो नाटक—'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' और 'स्वप्नवासवदत्त'—लिखे हैं। भास के बाद कात्यायन (वररुचि), गुणाढ्य, सम्राट् हर्षवर्धन, क्षेमेन्द्र और सोमदेव आदि ने भी उनके उदात्त चरित्र को अपने सम्मान-सुमन भेंट किए। स्वयं कालिदास ने भी अपने 'मेघदूत'[१] में उदयन की पावन स्मृति में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रखी है। किन्तु उदयन के चरित्र का यथातथ्य चित्रण जो हमें भास में दिखलाई देता है, वह परवर्ती कवियों में नहीं। एक ओर वररुचि और गुणाढ्य ने बहुत समय बाद उदयन में देवत्व का आरोप कर दिया, उनके चरित्र को दैवी शक्ति और तिलस्मी चमत्कार का परिधान पहना दिया, तो दूसरी ओर हर्षवर्धन आदि कलाकार अपनी रचनाओं में उनके चरित्र को आलंकारिक एवं कलात्मक अतिरञ्जना से मण्डित कर बैठे। प्रकृत मनुष्य-रूप में उदयन का स्वाभाविक चित्रण और उनके जीवन की घटनाओं का यथातथ्य वर्णन भास के ही नाटक करते हैं। इससे यह मानना पड़ेगा कि भास उदयन के समय से बहुत दूर नहीं हैं जैसे कि वररुचि और गुणाढ्य आदि।

प्रश्न उठता है कि क्या वत्सराज उदयन कल्पित व्यक्ति हैं या ऐतिहासिक? 'कथासरित्सागर' आदि में उनकी कथा पढ़कर उन्हें कल्पित समझना भूल है। हम देखते हैं कि भारत का प्रामाणिक और क्रमबद्ध इतिहास भगवान् गौतम बुद्ध से आरम्भ होता है और उनका स्थिति-काल छठी शताब्दी (ईसा पूर्व)

---

१ पूर्वमेघ, श्लोक ३१ और ३४

[illegible]
ने अपने 'अजातशत्रु' नाटक में इतिहास के इसी अरुणोदय का चित्र खींचा है। हिन्दी के दूसरे प्रसिद्ध वर्तमान नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी 'वत्सराज' नाटक लिखकर अपने चरित्रनायक उदयन की पुण्यस्मृति में अपना श्रद्धा-सुमन चढाया। उक्त दोनों नाटककारों ने वत्सराज उदयन को ऐतिहासिक व्यक्ति माना है, कल्पित व्यक्ति नहीं। मिश्र जी के शब्दों में "इतिहास में उदयन के समकलीन नर-रत्नों में गौतम बुद्ध और महावीर जैसे धर्म-प्रवर्तक महापुरुष हैं। अवन्ती के चण्डप्रद्योत महासेन सरीखे अपराजित और विजयी वीर योद्धा भी हैं। कोशल का प्रसेनजित् और उसका दुर्धर्ष पुत्र विरुद्धक भी उदयन के समकालीन हैं।" बौद्ध साहित्य भी इस बात की पुष्टि करता है कि गौतम बुद्ध ने अपना नवम चातुर्मास्य कौशाम्बी में किया था जब उदयन वहाँ राज्य कर रहे थे। प्रसाद जी के अनुसार मगध नरेश बिम्बसार का पुत्र अजातशत्रु—जिसे इतिहास में कुणीक अथवा दर्शक भी कहते हैं उदयन का समकालीन है। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में भास ने उदयन द्वारा जिस वासवदत्ता राजकुमारी का अपहरण बताया है, वह अवन्ती-नरेश चण्ड प्रद्योत महासेन की पुत्री है और 'स्वप्नवासवदत्त' में जिस पद्मावती से उदयन का दूसरा विवाह दिखा रखा है, वह मगध-नरेश बिम्बसार की पुत्री और दर्शक की बहन है। इन ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर भास अपने चरित्र-नायक उदयन के समकालीन अर्थात् छठी शताब्दी (ईसापूर्व) कदापि नहीं हो सकते जैसा कि गणपति शास्त्री कहते हैं।

हम देखते हैं कि किसी भी व्यक्ति को अपने जीवन-काल में काव्य अथवा नाटक रूप नहीं दिया जाता है। वह पहले जन-वाणी को अपना घर बनाता है और काफी समय तक किंवदन्तियों के रूप में प्रचलित रहता है, तब जाकर कहीं वर्षों के व्यवधान से किन्हीं सुनिपुण कलाकारों के हाथ में आकर वह काव्य नाटक अथवा आख्यान रूप अपनाता है। कुछ विद्वानों के मस्तिष्क में यह भ्रान्त धारणा घर किये हुए हैं कि भास ने अपने नाटकों के लिए उदयन-सम्बन्धी सामग्री 'बड्ढकहा' (बृहद् कथा) से ली है। वास्तव में सातवाहन-नामक आन्ध्रनरपति के राजपण्डित गुणाढ्य ने पैशाची भाषा में अपनी 'बड्ढकहा' (बृहत्कथा) पहली शताब्दी (ई० पू०) में लगभग लिखी जब कि भास ३००

(ई० पू०) के हैं । [illegible] यह भी है कि गुणाढ्य स्वयं मूलकथालेखक नहीं हैं । लोक-किंवदन्तियों में बिखरे पड़े उदयन की जीवन-घटनाओं के सूत्रों को बटोरकर उन्हें सुन्दर साहित्यिक रूप देनेवाले प्राचीन कलाकारों में दो ही मिलते हैं— एक भास और दूसरे वररुचि । भास ने जहाँ उसे नाटय-रूप दिया वहाँ वररुचि ने आख्यान-रूप । वररुचि की आख्यान माला में उदयन का चरित्र आया हुआ है । क्षेमेन्द्र और सोमदेव के मतानुसार वररुचि कात्यायन का ही दूसरा नाम है, जिन्होंने पाणिनि-व्याकरण पर वार्तिक लिखे । कात्यायन वररुचि का गोत्रीय नाम है । क्योंकि वे कत-नामक गोत्रप्रवर्तक मूल पुरुष के वंशज (कतस्य गोत्रापत्यं पुमान्=कात्यायनः) थे । कीथ भी यही मानता है और प्रसाद का भी यही मत है । भाषा-परिवर्तन की दृष्टि से पाणिनि और कात्यायन के मध्य लगभग एक शताब्दी का अन्तराल स्वाभाविक है । 'अष्टाध्यायी' के प्रमाण एवं समसामयिक राजनैतिक स्थिति के आधार पर पाणिनि को वासुदेवशरण अग्रवाल ने महानन्द (४४५-४०३ ई० पू०) का सम-सामयिक सिद्ध किया है ।[1] क्षेमेन्द्र ने अपनी 'बृहत्कथामञ्जरी' में और सोमदेव ने भी 'कथा-सरित्सागर' में यह बात स्वीकार की है कि पाणिनि नन्द राजा की सभा में पाटलिपुत्र गए थे । भास पाणिनि के उत्तरकालीन हैं— इस बात का संकेत हम पीछे कर आए हैं । अब हमें यह देखना है कि उदयन पर पहली लेखनी भास की उठी या वररुचि कात्यायन की । हम पीछे कह आए हैं कि वररुचि के उपाख्यान में उदयन के साथ कुछ चमत्कार और अतिमानुष तत्त्व जुड़ा हुआ है जो काल-व्यवधानसापेक्ष है । इसके विपरीत भास का उदयन यथार्थ प्रकृत मनुष्य है । इससे सिद्ध होता है कि वररुचि भास का परवर्ती है । पाणिनि से एक शताब्दी पीछे वररुचि का काल यदि लगभग ३५० (ई० पू०) मानें तो भास का स्थिति-काल पाणिनि से कुछ बाद और वररुचि से कुछ पूर्व अर्थात् लगभग ४०० (ई० पू०) ठहरता है ।

भास का स्थान—भास के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में म० म० पं० कुप्पुस्वामी शास्त्री आदि कुछ दाक्षिणात्य विद्वानों का मत है कि वे दक्षिण के थे । उनका कहना है कि एक तो भास के सारे नाटक केरल में ही प्राप्त हुए हैं । दूसरे,

---

१—पाणिनिकालीन भारत, पृ० ४७३ ।

'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में विवाह के लिए 'सम्बन्ध' शब्द आया हुआ है (वहूनि सम्बन्धप्रयोजनागतानि राजकुलानि श्रूयन्ते) और विवाह के 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग केरल में ही हुआ करता है। तीसरे, प्रतिमा नाटक में जब राम का राज्याभिषेक होता है, तो उसके साथ सीता का भी अभिषेक नहीं दिखाया गया है और रानी के बिना केवल राजा के ही अभिषेक की प्रथा केरल में ही पाई जाती है, उत्तर भारत में नहीं। इसलिए उनके मतानुसार भास केरल प्रदेश के हैं।

हम उपर्युक्त मत मानने को तय्यार नहीं हैं। किसी भी कवि या नाटककार की कृति का हस्तलेख देश के किसी भाग में प्राप्त होने का कदापि यह मतलब नहीं हो सकता है कि उसका रचयिता भी उसी प्रदेश का हो। कुछ समय हुआ प्रो० लूडर्स को तुरफान (मध्य-एशिया) में प्रसिद्ध संस्कृत कवि अश्वघोष के ताड़पत्रों पर लिखित 'शारिपुत्रप्रकरण', एक गणिका-रूपक एवं एक प्रतीक-रूपक प्राप्त हुए, तो क्या हम कह दें कि अश्वघोष मध्य-एशिया के थे? भारतवर्ष एक विशाल देश है। भास, कालिदास-जैसे अखिल भारतीय कोटि के यशस्वी कलाकारों की रचनाओं की हस्त-प्रतियाँ कहीं भी प्राप्त हो सकती हैं। स्वयं कालिदास, बाण, जयदेव—जैसे कवियों द्वारा भास का उल्लेख सिद्ध करता है कि भास की सभी कृतियाँ प्राचीन काल में उत्तर भारत में भी सर्वजन सुलभ थी। मध्य काल में ही वे फिर क्यों गायब हो गई—इस प्रश्न के उत्तर में हम यह कह सकते हैं कि मध्य-काल में उत्तर भारत विदेशियों के सतत आक्रमणों का शिकार बनता रहा, अतएव हो सकता है कि अन्य वैदिक और संस्कृत ग्रन्थों की तरह भास के ग्रन्थ भी विदेशी आक्रान्ताओं के कोपभाजन बनकर नष्ट कर दिए गए हों। कालिदास, बाण आदि द्वारा उल्लिखित सौमिल्ल, कविपुत्र, भट्टार हरिचन्द्र आदि काव्यकारों की रचनायें भी तो अभी तक अप्राप्य हैं। केरल भारत के अन्तिम छोर का प्रदेश है, अतः अपेक्षाकृत शान्ति-स्थल रहने से और साथ ही हस्त-प्रतियों के देवनागरी के स्थान में मलयालम लिपि में होने से उनका वहाँ सुरक्षित और सुप्राप्य होना स्वाभाविक था। किन्तु भास-प्रणीत कहा जाने वाला राम-जीवन पर आधृत, देवनागरी में लिखा 'यज्ञफल'—नामक

एक और नाटक अब उत्तर भारत में ही मिला है। इसलिए कृतिप्राप्ति पर आधारित भास के दाक्षिणात्य होने का तर्क गिर जाता है। केरल की तरह भास के नाटकों में विवाह के अर्थ में प्रयुक्त सम्बन्ध शब्द प्रायः सभी जगह इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ मिलता है। याज्ञवल्क्य-धर्मशास्त्र की मिताक्षरा में विवाह के लिए 'सम्बन्ध' शब्द दे रखा है। रही बात अकेले राम के ही राज्याभिषेक की, सो तो साधारण-सी है, क्यों कि नाटकीय औचित्य और आवश्यकता हेतु कथा-वस्तु में न्यूनाधिक परिवर्तन करना सभी नाटककारों का अधिकार होता है। इसलिए भास को दाक्षिणात्य कहना गलत है, बल्कि इसके विपरीत, उनके उत्तर भारत के होने के ही प्रमाण मिलते हैं। उन्होंने स्वप्नवासवदत्ता एवं बालचरित नाटकों में 'भरतवाक्य' यों दे रखा है—

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्-विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

इसमें भास ने अपने आश्रयदाता राजसिंह के राज्य की सीमा पूर्व-पश्चिम में समुद्र-पर्यन्त और उत्तर-दक्षिण में हिमालय एवं विन्ध्याचल से घिरी बताई है। भारत के इसी भू भाग को आर्यावर्त या उत्तर भारत कहते हैं। इस अन्तःसाक्ष्य से भास उत्तर भारत के ही सिद्ध होते हैं, दक्षिण के नहीं। इसके अतिरिक्त भास के नाटकों के राम, कृष्ण, कौरव, पाण्डव, वत्सराज, महासेन आदि सभी पात्र, अयोध्या, मथुरा, उज्जयिनी आदि नगरियाँ, नदी-पर्वत और रीति-रिवाज सब उत्तर भारत के हैं। साथ ही उत्तर भारत के स्थानों का वर्णन ऐसा यथातथ और सजीव है कि जिससे हम कह सकते हैं कि वे सब भास ने अपनी आँखों से देख रखे थे। उनका दक्षिण भारत का वर्णन बड़ा सीमित है। ऐसा लगता है कि जैसे भास वहाँ गए ही न हों। वहाँ का होना तो दूर रहा, जितना कुछ भी उनका दक्षिण भारत का ज्ञान है, वह केवल रामायण और महाभारत के आधार पर ही है। इसलिए भास सुतरां उत्तर भारत के वास्तव्य थे।

भास का व्यक्तिगत जीवन – जहाँ तक भास के व्यक्तिगत जीवन का प्रश्न है, इस सम्बन्ध में हमें उनकी कृतियों से कुछ भी सामग्री उपलब्ध नहीं होती

है। नाट्यविधान के अनुसार नाटककार अपने नाटक के प्रस्तावना में अपना परिचय दे दिया करते हैं, किन्तु भास ने अपने नाटकों की प्रस्तावनाओं अथवा आमुखों में ऐसा कुछ नहीं किया है। हो सकता है कि भास के काल में प्रस्तावनाओं में कवि का व्यक्तिगत परिचय देने की प्रथा ही विकसित न पाई हो अथवा भास भी कालिदास की तरह इतने निरभिमानी और विनयशील रहे हों कि उन्होंने स्वयं को प्रकाश में लाना न चाहा हो। इसलिए खेद है कि इस 'प्रथित-यशा' कलाकार के जीवन और व्यक्तिगत वृत्तान्त के विषय में हम निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कह सकते हैं, केवल उनके ग्रन्थों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े विचारों के आधार पर कुछ अनुमान ही कर सकते हैं।

भास वैष्णव सम्प्रदाय के ब्राह्मण थे। उनके हृदय में भगवान् राम और कृष्ण के प्रति दृढ़ भक्ति थी, जिसके कारण उन्होंने इन दोनों देवों को अपनी रचनाओं का चरित्र-नायक बनाया और इतना अधिक मान और गौरव प्रदान किया। भास ब्राह्मणीय अर्थात् श्रौत-स्मार्त धर्म के अनुयायी थे। उनकी वर्णाश्रम-व्यवस्था पर पूरी निष्ठा थी। उन्होंने अपने नाटकों में यत्र-तत्र श्रौत-स्मार्त क्रियाओं, संस्कारों, प्रथाओं और विधि-निषेधों को पूरा महत्त्व दे रखा है। स्पष्टतः वे वैदिक कर्मकाण्ड के प्रबल समर्थक हैं। स्वर्ग-नरक की मान्यता पर भी उनकी पूरी आस्था है। गौ के प्रति उनके हृदय में अपार श्रद्धा है। जो उन्होंने अपने कितने ही भरतवाक्यों (भवन्त्वरजसो गावः') में प्रकट कर रखी है।

भास एक धर्म-भीरु व्यक्ति हैं। वे 'धर्मो रक्षति रक्षितः' वाले सिद्धान्त को मानने वाले हैं। तभी उन्होंने 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' में धर्म-रक्षक उदयन द्वारा पृथ्वी की रक्षा किये जाने पर यौगन्धरायण के मुख से यह कहलवाया है— भूमिर्भर्तारमापन्नं रक्षिता परिरक्षति' (१/९)। कर्णभार नाटक में भास ने यज्ञ और दान की महिमा कर्ण के मुंह सों यों कहलवाई है—

शिक्षा क्षयं गच्छति काल-पर्ययात्,
सुबद्धमूलाः निपतन्ति पादपाः।
जलं जल-स्थानगतं च शुष्यति,
हुतं च दत्तञ्च तथैव तिष्ठति॥ (१।२२)

भास भाग्य-शक्ति को मानते हैं, जो जीवन में सहसा उलट-फेर कर देती है और जिसके आगे मानव की कुछ नहीं चलती। 'चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्य-पंक्तिः (स्वप्नवा० १।४), 'जाग्रतोऽपि बलवत्तरः कृतान्तः' (प्रतिज्ञा० १) आदि भाग्यपरक आभाणक भास के ही चलाये हुए हैं। परन्तु भास ऐसे भाग्यवादी नहीं हैं, जो निठल्ले बैठे रहें और नैराश्यवाद के अवसाद में घुलते रहें। उनका जीवन के पौरुष-पक्ष पर भी दृढ़ विश्वास है कि यदि ठीक तरह से प्रयत्न किया जाय, तो वह क्यों सफल न होगा? यौगन्धरायण के ही मुख से उन्होंने भाग्यशक्ति के साथ-साथ यह भी कहलवाया है—

काष्ठादग्निर्जायते मथ्यमानात्,
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति॥ (प्रतिज्ञा० १।१०)

इस तरह भास जीवन के भाग्य और पौरुष—दोनों पक्षों को सन्तुलित रूप में लेते हैं। उनकी दृष्टि में मनुष्य को अपने जीवन में उत्साह के साथ कर्तव्य-बुद्धि से कर्म करते रहना चाहिये और फल-सिद्धि परमात्मा की इच्छा अथवा नियत पर छोड़ देनी चाहिए। उनका यह भाग्य-पौरुष का समन्वयवाद देखिए—

यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः
को वा न सिध्यति ममेति करोति कार्यम्।
यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणाम्
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः॥ (अवि० ३-१२)

इसकी गीता के 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' से तुलना कीजिए।

कालिदास के समान भास को भी अवश्य किसी राजा का आश्रय प्राप्त था। इस बात का उल्लेख वे स्वयं अपने नाटकों के 'भरतवाक्य'—राजसिंहः प्रशास्तु नः—में किए हुए हैं। राजसिंह भास के आश्रयदाता राजा का व्यक्तिगत नाम रहा हो अथवा उसका राजाओं में सिंह ऐसा विशेषण रहा हो—इस

सम्बन्ध में हम निश्चय नहीं कर सकते हैं। यद्यपि कुछ विद्वान् इसे विशेषण शब्द मानकर उसे राजा नन्द के साथ जोड़ते हैं और कोई केरल देश के पल्लव राजा नरसिंह वर्मा के साथ। राजाश्रय के कारण ही इनका राजकीय जीवन के आकार-प्रकार एवं गति-विधि से पूरा परिचय था। इनके नाटकों में हमें राज-महलों और अन्तःपुरों के वर्णन, राजा-रानियों के भीतरी जीवन का चित्रण तथा मन्त्रियों, सचिवों, सेनापतियों एवं संभ्रान्त नागरिकों का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। राज-संरक्षण प्राप्त हुए रहने से कालिदास की तरह भास का जीवन भी सम्पन्न और सुखमय रहा होगा—इसमें सन्देह नहीं। स्वभाव से भास सरल, विनम्र, विनोदशील और हास्य-प्रिय मालूम पड़ते हैं। इनकी विनोद-प्रिय मनोवृत्ति के कारण ही इनकी कृतियां में हास्य अपनी निर्मल छटा बिखेरे हुए मिलता है और सम्भवतः इनकी इस विशेषता के कारण ही जयदेव कवि ने इन्हें कविता-कामिनी का हास ('भासो हासः) कहा है।

भास सभी विषयों के बड़े विद्वान् थे। क्या वेद, क्या धर्मशास्त्र, क्या इतिहास-पुराण, क्या अर्थशास्त्र और क्या राजनीति तथा कूटनीति—सभी शास्त्रों का उन्होंने गहरा अध्ययन और परिशीलन कर रखा था। साहित्य-शास्त्र के तो वे आचार्य ही थे। यही कारण है कि संस्कृत-जगत् में इनकी विद्वत्ता और कलाकोविदता काफी प्रशंसा अर्जित किए हुए है।

भास की कृतियाँ—गणपति शास्त्री ने 'त्रिवेन्द्रम प्लेज' नाम से जो नाटक प्रकाशित किए हैं, उनकी संख्या तेरह है। उनका रचना-क्रम क्या रहा होगा—इस सम्बन्ध में विद्वान् लोग एक मत नहीं हैं। डॉ० पुसालकर ने उनका क्रम यह रखा है—

(१) दूतवाक्य, (२) कर्णभार, (३) दूतघटोत्कच, (४) ऊरुभंग, (५) मध्यमव्यायोग, (६) पञ्चरात्र, (७) अभिषेकनाटक, (८) बालचरित, (९) अविमारक, (१०) प्रतिमा, (११) प्रतिज्ञायौगन्धरायण, (१२) स्वप्नवासवदत्त और (१३) चारुदत्त।

इनमें से अन्तिम नाटक 'चारुदत्त' अधूरा है और हो सकता है कि बाणभट्ट की तरह बनाते-बनाते भास मृत्युग्रास बन गये हों अथवा हो सकता है कि आधा भाग लुप्त हो गया हो। नाटकों के कथानकों की दृष्टि से प्रतिमा और अभिषेक

नाटक—ये दोनों रामायण पर आधारित हैं। मध्यम-व्यायोग, पञ्चरात्र, दूतवाक्य दूतघटोत्कच, कर्णभार और ऊरुभंग—ये छः महाभारत से सम्बन्ध रखते हैं। बाल-चरित भगवान् कृष्ण के चरित्र पर है, प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्न-वासवदत्त में वत्सराज उदयन का वर्णन है, जिसका उल्लेख बृहत्कथा, कथा-सरित्सागर आदि में भी है और अविमारक एवं चारुदत्त लोक-कथा पर आश्रित हैं। इन सबका संक्षिप्त कथानक नीचे दिया जाता है—

१—दूतवाक्य—इसमें पाण्डवों की ओर से भगवान् कृष्ण सन्धि-प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास जाते हैं। दुर्योधन पहले ही सबको आज्ञा दे देता है कि भगवान् कृष्ण के सभा-भवन में पधारने पर कोई खड़ा होकर उनका स्वागत न करे और स्वयं भी उन्हें बन्दी बनाकर अपमान करने को ठाने हुए रहता है। कृष्ण के प्रवेश करते ही सभी सभासद उनके तेज से प्रभावित होकर तत्काल स्वतः खड़े हो जाते हैं। स्वयं दुर्योधन भी घबरा कर आसन से गिर पड़ता है। कृष्ण पाण्डवों के लिए राज्य का भाग माँगते हैं। दुर्योधन पाण्डवों की निन्दा करता हुआ कहता है कि वे हमारे चाचा पाण्डवों की सन्तानें नहीं हैं, देव-संतानें हैं, इसलिए पैतृक दाय पर उनका कोई अधिकार नहीं। साथ ही वह भगवान् को अपशब्द कह कर उन्हें पकड़ने की आज्ञा देता है, किन्तु उन्हें पकड़ने का किसी का साहस नहीं होता, अन्ततः स्वयं दुर्योधन उन्हें पकड़ने जाता है। कृष्ण अपना विराट रूप दिखाते हैं। सब भौंचक्के रह जाते हैं। कृष्ण पाण्डव-शिविर में वापस आ जाते हैं।

'दूतवाक्य' एक राजनीतिक एकांकी नाटक है और नाट्यविधान की दृष्टि से यह 'व्यायोग' कहा जा सकता है।

२—कर्णभार—इसकी कथावस्तु कर्ण के युद्ध में सेनापतित्व का भार ग्रहण करने से प्रारम्भ होती है। वे शल्य द्वारा संचालित रथ से युद्ध-स्थल में जा रहे होते हैं कि मार्ग में एक ब्राह्मण मिल जाता है जो वास्तव में ब्राह्मण-वेशधारी इन्द्र होता है। ब्राह्मण कर्ण से कहता है कि मैं आपसे कुछ दान माँगने आया हूँ। कर्ण ब्राह्मण को जो कुछ भी माँगने पर देने को तय्यार हो जाता है। ब्राह्मण कर्ण से उसके सहजात कवच और कुण्डल माँग लेता है। कर्ण पहले तो कुछ सकुचाता है, किन्तु बाद में ब्राह्मण को दिए हुए वचन के अनुसार

शरीर में से कवच-कुण्डल काट कर दे देता है। बदले में उसे इन्द्र द्वारा एक शक्ति (प्रक्षेपास्त्र) प्राप्त हो जाती है।

'कर्णभार' कर्ण की दानिता का प्रतिपादक एकांकी है, जो उत्सृष्टिकांक के अन्तर्गत है और दानवीरता का नाटक है।

३—दूतघटोत्कच—अभिमन्यु की मृत्यु के बाद भीमपुत्र घटोत्कच सन्धिदूत बनकर धृतराष्ट्र के पास आता है और अभिमन्यु के वध का बदला लेने हेतु अर्जुन द्वारा जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा से अवगत कराता है। इस पर दुर्योधन ताने कसता है। दोनों गरमागरमी में आ जाते हैं, किन्तु धृतराष्ट्र बीच में पड़कर दोनों को शान्त कर देते हैं। अन्त में घटोत्कच श्रीकृष्ण का सन्देश देता है—"यदि अब भी तुम अपने अपकृत्यों से नहीं हटते तो यम अर्जुन का रूप धारण कर तुम सभी को समाप्त कर देगा।" यह कह कर घटोत्कच अपने शिविर में आ जाता है।

दूतघटोत्कच यद्यपि महाभारत-युद्ध से सम्बन्ध रखता है, परन्तु महाभारत-ग्रन्थ में इसका कथानक नहीं मिलता। यह भी एकांकी है और टेकनीक की दृष्टि से इसमें कुछ लक्षण व्यायोग के घटते हैं और कुछ उत्सृष्टिकांक के, अतः इसे हम मिश्रित रूपक ही कह सकते हैं।

४—'ऊरुभंग'—इसका कथानक यह है—सारी कौरव-सेना के मर जाने पर भीम और दुर्योधन का गदा युद्ध होता है। पहले दुर्योधन के प्रबल गदा-प्रहार से भीम गिरकर बेहोश हो जाता है, किन्तु होश आते ही भीम श्रीकृष्ण के संकेत पर दुर्योधन की जंघा पर जोर का गदा प्रहार करता है जिससे उसकी जंघा टूट जाती है। यह देख एक ओर गलत स्थान पर चोट मारने से बलराम कुपित हो जाते हैं, तो दूसरी ओर श्रीकृष्ण प्रसन्न। बलराम अपने हल की नोक से भीम की छाती चीर देना चाहते हैं कि इतने में श्रीकृष्ण, अर्जुन आदि भीम को अपने घेरे में लेकर युद्ध-स्थल से बाहर निकल जाते हैं। धृतराष्ट्र, गान्धारी, दुर्योधन की पत्नी मालवी और दुर्जय आदि आते हैं और विलाप करने लगते हैं। इतने में अश्वत्थामा भी आ जाता है और क्रोध में धनुष तानकर पाण्डवों को भून डालने के लिए पाण्डव-शिविर में चल पड़ने के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

'ऊरुभंग' एक दुःखान्त नाटक अर्थात् त्रासदी (ट्रेजडी) है और नाट्य-विधान की दृष्टि से उत्सृष्टिकांक जाति का एकांकी है।

५—मध्यमव्यायोग—केशवदास नाम का एक याज्ञिक अपनी पत्नी और तीन पुत्रों के साथ एक जंगल में से गुजर रहा था कि इतने में भीम-हिडम्बापुत्र घटोत्कच राक्षस उस ब्राह्मण के मध्यम पुत्र को अपनी मां के भोजनार्थ ले जाना चाहता है। ब्राह्मण रक्षा के लिए चिल्लाता है। संयोग-वश उन दिनों पाण्डव भी उसी वन में रहते होते हैं। ब्राह्मण की पुकार सुनकर मध्यम पाण्डव भीम आ जाते हैं और घटोत्कच को पराजित कर देते हैं। किन्तु जब उन्हें पता लगता है कि राक्षस अपनी ही पत्नी हिडम्बा का पुत्र है, तो उसके साथ हिडम्बा के पास चल पड़ते हैं। पति को अपने घर आया हुआ देखकर पत्नी बड़ी प्रसन्न होती है। घटोत्कच पिता से क्षमा मांगता है और वृद्ध ब्राह्मण के चरणों में भी झुक जाता है।

'मध्यमव्यायोग' नाम नाटक का इसलिए पड़ा है कि इसमें ब्राह्मण अथवा पाण्डु के मध्यम पुत्र का कथानक है। व्यायोग एकांकी नाटकों का एक भेद होता है। इसमें भीम, घटोत्कच और हिडम्बा तो महाभारत के पात्र हैं, किन्तु ब्राह्मण वाली घटना निरी कवि-कल्पित है।

६ पञ्चरात्र—पाण्डव अज्ञातवास का एक वर्ष विराट राजा के घर में काट रहे हैं। इधर दुर्योधन एक बृहत् यज्ञ करता है। यज्ञ-समाप्ति पर दुर्योधन गुरु द्रोणाचार्य को मुंहमांगी दक्षिणा देना चाहता है। गुरु पाण्डवों के लिए आधा राज्य मांग बैठते हैं। दुर्योधन इस शर्त पर वचन दे देता है कि यदि पाँच रातों के भीतर-भीतर पाण्डवों का पता लग जाय, तो वह उन्हें आधा राज्य दे देगा। उधर देखो तो निमंत्रण मिलने पर भी राजा विराट यज्ञ में सम्मिलित नहीं हुआ था, इसलिए अपना अपमान समझकर दुर्योधन उसके गो-धन पर आक्रमण बोल देता है। छद्मवेषधारी पाण्डव विराट की सहायता करते हैं और कौरवों को खदेड़ देते हैं, लेकिन तब तक अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो जाती है और वे स्वयं ही प्रकट हो जाते हैं। दुर्योधन द्रोणाचार्य को दिये हुए अपने वचन के अनुसार पाण्डवों को आधा राज्य दे देता है।

'पञ्चरात्र' तीन अंकों का नाटक है। दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को आधा राज्य देने की बात भास की अपनी कल्पना है, महाभारतीय नहीं।

७—अभिषेकनाटक—इसके सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे।

८—बालचरित—इसमें भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन है जैसा कि हम श्रीमद्-भागवत में पाते हैं। श्रीकृष्ण का जन्म, उनका वसुदेव द्वारा यमुना पार करके मथुरा से गोकुल ले जाया जाना, वहाँ उनकी बाल-लीला, पूतना, शकट, धेनुक आदि राक्षसों का वध, गोपियों के साथ रासलीला, कालिय नाग का मर्दन, मथुरा में आकर कंस-वध और अन्त में उग्रसेन की कारागार से उन्मुक्ति और राज्याभिषेक के साथ-साथ पुनः वृष्णि-राज्य की स्थापना है।

'बालचरित' पाँच अंकों का नाटक है और वीरता-प्रधान है।

९—अविमारक—इसमें सौवीर राजकुमार अविमारक और राजा कुन्तीभोज की पुत्री कुरंगी की प्रणय-कथा है। एक दिन कुरंगी सखियों के साथ भ्रमण हेतु उपवन में आती है कि सहसा एक पागल हाथी आ पहुँचता है और राजकुमारी पर आक्रमण कर बैठता है। इतने में कहीं से आकर एक नवयुवक उसकी रक्षा करता है। दोनों एक-दूसरे पर अनुरक्त हो बैठते हैं। वह युवा अविमारक ही है। कुरंगी को जब वियोग असह्य हो जाता है, तो उसकी सखियाँ छद्म-वेष में अविमारक को कन्यान्तःपुर में ले आती हैं। वहाँ वह उसी छद्मवेष में एक वर्ष रहता है। इतने में राजा को पता चल जाता है। फलतः युवक को भाग जाना पड़ता है। वह कुरंगी के विरह में आत्मघात करना चाहता है कि इस बीच एक विद्याधर-युगल उसे बचा लेता है और एक ऐसी अंगूठी दे देता है कि जिसे पहनकर वह अदृश्य हो राजकुमारी के पास जा सकता है। उधर कुरंगी का भी वियोग में बुरा हाल हो जाता है और वह प्राणघात करना चाहती है कि इतने में जोर से मेघ-गर्जना होती है जिससे राजकुमारी डर जाती है। इसी समय आकर अविमारक उसे बाहु-पाश में ले लेता है। इसके बाद पता चल जाता है कि अविमारक सौवीर राजकुमार है और यह जानकर कि उसके साथ राजकुमारी का गन्धर्व विवाह हो चुका है, तो राजा कुन्तीभोज उस पर अपनी स्वीकृति दे देता है। राजकुमार का वास्तविक नाम विष्णुसेन है। बचपन में उसने अवि-(भेड़) वेषधारी एक राक्षस का वध किया था, तब अविमारक नाम पड़ा।

'अविमारक'—पाँच अंकों का एक नाटक है और प्रकरण-रूपक के भीतर आता है। यह लोक-कथा पर आधारित है अथवा भास के काल में कोई आख्यायिका-ग्रन्थ रहा हो, जिससे भास ने कथा ले ली हो। नायक का नाम अविमारक होने से नाटक का नाम भी कवि ने अविमारक रखा।

१०—प्रतिमा—यह राम के यौवराज्याभिषेक के प्रसंग से आरम्भ होकर राज्याभिषेक पर समाप्त होता है। कैकेयी के कारण राम को वन जाना पड़ता है और पुत्र—शोक में दशरथ प्राण त्याग देते हैं। एकादशाह के बाद नगर के बाहर अन्य स्वर्गीय इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की प्रतिमाओं के साथ दशरथ की प्रतिमा भी स्थापित की जाती है। इसी बीच पिता की रुग्णता का समाचार पाकर भरत ननिहाल से अयोध्या आ रहे होते हैं, तो प्रतिमा-मन्दिर में पिता की प्रतिमा देखकर शोकविह्वल हो जाते हैं। नगर में प्रवेश करते ही वे रामचन्द्र जी के वनवास का समाचार सुनकर उन्हें अयोध्या लौटा लाने के लिए तपोवन को प्रस्थान करते हैं, किन्तु राम उन्हें चरण-पादुकायें देकर वापस कर देते हैं। एक दिन वन में दशरथ की मृत्यु-तिथि पर राम श्राद्ध करना चाहते हैं कि इतने में रावण संन्यासी के वेष में वहाँ उपस्थित होता है और उन्हें हिमालय के उच्च शिखर पर होने वाले काञ्चन-मृग के मांस पिण्ड से श्राद्ध करने का परामर्श देता है। इतने में वहीं एक काञ्चन-मृग दिखाई पड़ता है और राम उसे मारने चल पड़ते हैं। रावण अपने असली रूप में प्रकट होकर सीता को हर ले जाता है। इधर सुमन्त राम की कुशल जानने के लिए वन में आता है, तो सीता-हरण का समाचार पाकर वापस आ जाता है। भरत विशाल सेना लेकर राम की सहाय-तार्थ वन को चल पड़ते हैं,। इस बीच राम रावण को मारकर सीता को वापस लाते हुए मिल जाते हैं। वन में ही ऋषि-मुनि और प्रजाजन के समक्ष राम का राज्याभिषेक होता है और सभी आनन्द के साथ अयोध्या लौट आते हैं। 'प्रतिमा' राम के जीवन पर आधारित छः अंकों का नाटक है। नाटक की मुख्य बात भरत द्वारा दशरथ की प्रतिमा को देखना है और इसी कारण नाटक का नाम भी 'प्रतिमा' पड़ा. इसमें भास ने राम की मूलकथा में कितना परिवर्तन किया है—यह कथानक से स्पष्ट है।

११—प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण—उदयन वत्सदेश के राजा हैं। उनका पड़ोसी राजा प्रद्योत है, जिसे महासेन भी कहते हैं। वह उदयन को अपनी कन्या

वासवदत्ता ब्याहना चाहता है, किन्तु वह स्वीकार नहीं करता। उदयन को आखेट का शौकीन देखकर महासेन एक नकली हाथी बनवाता है और उसे वत्स-देश की सीमा के पास रखवा देता है। उदयन आखेट करने जाता है और उस हाथी का शिकार करने प्रद्योत की सीमा में घुस जाता है। उसी समय नकली हाथी के पेट में छिपे प्रद्योत के सैनिक बाहर निकलकर उदयन को बन्दी बना देते हैं। वत्सराज के मंत्री यौगन्धरायण को जब इस दुर्घटना का पता चलता है तो तत्काल प्रतिज्ञा कर बैठता है कि यदि मैं अपने स्वामी को बन्धन से न छुड़ाऊँ तो मेरा नाम यौगन्धरायण नहीं। उधर प्रद्योत रानी के साथ वासवदत्ता के विवाह की चर्चा छेड़े हुए था। रानी उदयन के साथ ही कन्या के विवाह का हठ किये रहती है। इतने में सहसा कञ्चुकी राजा को उदयन के बन्दी बनाये जाने का समाचार लाता है जिसे सुनकर प्रद्योत प्रसन्न हो जाता है।

अपनी प्रतिज्ञानुसार यौगन्धरायण उन्मत्तक (पागल) का वेश बनाकर श्रमणक के वेश में रुमण्वान् नामक दूसरे मंत्री और डिंडिम (भिखारी) के वेश में विदूषक को साथ लिये प्रद्योत की राजधानी उज्जयिनी में रहने लग जाता है। वह राजा को छुड़ाने की योजना बना चुका ही होता है कि इस बीच एक दिन उदयन को कारागार के द्वार से यक्षिणी की पूजा करने जाती हुई वासवदत्ता दिखाई पड़ती है। वे मुग्ध हो जाते हैं और उसे भी साथ लेकर ही अपनी उन्मुक्ति चाहते हैं। यौगन्धरायण का तदनुसार अपनी योजना में परिवर्तन करना पड़ जाता है। उदयन के सैकड़ों सैनिक गुप्त वेश में उज्जयिनी पहुँच जाते हैं। प्रद्योत के नलागिरि हाथी को मदिरा पिला कर उन्मत्त कर दिया जाता है। वह किल्ला तोडकर सारी नगरी में उत्पात मचाने लग जाता है। उदयन हाथी वश में करना जानते हैं— यह जान कर प्रद्योत उन्हें नलागिरि को काबू में करने हेतु कारागार से छोड़ देता है। पूर्वनियोजित षड्यन्त्र के अनुसार वासवदत्ता को हरकर उदयन उसी दिन भद्रवती हथिनी पर सवार हो अपने देश सुरक्षित पहुँच जाते हैं। प्रद्योत देखते रह जाता है।

'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' चार अंकों का नाटक है और इसमें यौगन्धरायण द्वारा अपने स्वामी को छुड़ाने की प्रतिज्ञा करने से इसका ऐसा नाम पड़ा।

१२—स्वप्नवासवदत्त—वासवदत्ताहरण के बाद विषयलिप्सा-लिप्त उदयन के देश का कुछ भाग पड़ोसी शत्रु देश ले लेता है। यौगन्धरायण उसे वापस लेने

को चिन्ता में पड़ जाता है एवं तदर्थ एक योजना बना लेता है। एक दिन मृगयार्थ गए हुए उदयन की अनुपस्थिति में वह एक गाँव जलवा देता है और आग में स्वयं को और रानी वासवदत्ता को जला हुआ घोषित करवा देता है। उदयन को रानी के जल जाने का बड़ा दुःख होता है। उधर योगन्धरायण ब्राह्मण के वेश में और वासवदत्ता अवन्तिका के वेश में मगध देश चले जाते हैं। वहाँ की राजकुमारी पद्मावती के पास वासवदत्ता को यौगन्धरायण यह कहकर धरोहर के रूप में रख देता है कि 'यह मेरी प्रोषितभर्तृका बहिन है। इसे कुछ समय तक अपना संरक्षण दीजिए'। उदयन भी प्रसंगवश मगध देश आए हुए हैं। उनकी रानी की मृत्यु सुनकर मगध-नरेश दर्शक अपनी बहिन पद्मावती उन्हें ब्याह देता है। बेचारी वासवदत्ता हृदय पर पत्थर रखे विवाह-मंगल देखती है। उदयन कुछ समय के लिए मगध में ही रहने लगते हैं। एक दिन रानी पद्मावती को शिरोवेदना होती है तो उदयन उसका समाचार जानने के लिए समुद्र-गृह में चले जाते हैं, किन्तु वहाँ रानी को न पाकर उसकी शय्या पर सो जाते हैं। संयोग-वश उसी समय वासवदत्ता भी पद्मावती का हाल पूछने वहाँ आ जाती है और यह समझकर कि पद्मावती सो रही है, राजा के साथ शय्या के एक किनारे लेट जाती है। राजा स्वप्न में वासवदत्ता से बातें करने लगते हैं तो झट वह अपनी गलती समझ लेती है कि वह तो राजा के साथ लेट रही है। शय्या के नीचे लटके हुए पति का हाथ ऊपर तकिये पर रखकर वह तत्काल वहाँ से खिसक जाती है। राजा वासवदत्ता के करस्पर्श से चौंक उठते हैं और उसे पकड़ना ही चाहते हैं कि तब तक वह बाहर हो जाती है। राजा ने स्वप्न ही समझा। कुछ समय बाद दर्शक की सैनिक सहायता से उदयन शत्रु को परास्त करके अपना देश वापस ले लेते हैं। एक दिन वासवदत्ता के माता-पिता उसको धाय के हाथ उसका और उसके पति का वह चित्र भेजते हैं जिसमें उन दोनों का विवाह-संस्कार किया गया था। चित्र देखते ही पद्मावती झट पहचान लेती है कि उसके संरक्षण में रहने वाली ब्राह्मण की बहिन तो चित्र वाली वासवदत्ता ही है। इसी बीच ब्राह्मणवेषधारी योगन्धरायण भी पहुँच जाता है और अपनी धरोहर बहिन वापस माँगता है। धाय योगन्धरायण को पहचान लेती है और इस तरह रानी वासवदत्ता और मन्त्री योगन्धरायण दोनों प्रकट हो जाते हैं।

यौगन्धरायण वत्सराज से और पद्मवती वासवदत्ता से क्षमा माँगते हैं और दोनों रानियाँ प्रेम से रहने लगती है।

स्वप्नवासवदत्त छः अंकों का नाटक है। इसकी मुख्य घटना उदयन द्वारा स्वप्न में वासवदत्ता को देखना है, इसलिए इसका यह नाम पड़ा।

१३—'चारुदत्त'—इसमें दरिद्र चारुदत्त और वसन्तसेना नामक गणिका की प्रणय-कथा है। एक रात शकार और विट द्वारा पीछा की जाती हुई वसन्तसेना अपनी रक्षा हेतु चारुदत्त के घर प्रविष्ट हो जाती है। डर के मारे वह अपना कीमती हार चारुदत्त के पास धरोहर रखकर मैत्रेय के साथ अपने घर लौट आती है। अपनी गरीबी के कारण नौकरी से हटाया हुआ चारुदत्त का पुराना नौकर संवाहक एक दिन वसन्तसेना के यहाँ आ जाता है। उसके पीछे जुआरी लगे हुए थे, जिनका उसको कुछ कर्जा चुकाना था। वसन्तसेना उसका कर्जा दे देती है और उसे फिर चारुदत्त की सेवा में चले जाने का अनुरोध करती है। थोड़ी देर बाद वसन्तसेना का चेट (नौकर) आकर कहता है कि किस तरह उसने हाथी की पकड़ में आए एक बौद्ध भिक्षुक को बचाया जिसके लिए चारुदत्त ने उसे पुरस्कार में अपने शरीर की चादर उतार कर दी है। चारुदत्त की उदारता सुनकर वसन्तसेना उस पर और भी मुग्ध हो जाती है। उधर एक रात सज्जलक नाम का चोर सेंध लगाकर चारुदत्त के घर से गणिका का हार चुरा ले जाता है और उसे गणिका की दासी मदनिका को दे देता है जिसे वह प्रेम करता है। मदनिका गणिका की क्रीतदासी है, इसलिए सज्जलक मूल्य के रूप में चुराया हार देकर उसे उन्मुक्त करके अपने साथ ले जाना चाहता है। वस्तुतः चोरी उसने मदनिका को वसन्तसेना की दासता से उन्मुक्त कराने हेतु ही की थी। मदनिका देखते ही झट अपनी स्वामिनी का हार पहचान लेती है और सज्जलक द्वारा चोरी स्वीकार करने पर वह अपने प्रणयी को सलाह देती है कि तुम मेरी मालकिन का हार यह कह के उसे दे दो कि यह चारुदत्त ने भेजा है। इसी बीच चारुदत्त अपनी पत्नी का हार मैत्रेय के हाथ वसन्तसेना के पास भेज देता है और यह कहलवा देता है कि तुम्हारा धरोहर चारुदत्त जूए में हार गया है। चारुदत्त की ईमानदारी और सज्जनता से वसन्तसेना और भी आकृष्ट हो जाती है और मदनिका सज्जलक को सौंप स्वयं रात में अभिसारिका बनकर चारुदत्त के घर चल पड़ती है।

'चारुदत्त' टेक्नीक की दृष्टि से 'प्रकरण' नामक रूपक के भीतर आता है। अधूरे मग्न पडे हुए इसी कथासूत्र को शूद्रक कवि ने परिवर्धित और परिवर्तित करके अपना दस अंकों का 'मृच्छकटिक' नाटक लिखा है।

भास के नाटकों को संस्कृत-साहित्य के इतिहास में 'नाटकचक्र' कहा जाता है। चक्र समूह को कहते हैं। भास के 'नाटकचक्र' में गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित उपरोक्त तेरह ही नाटक है। अधिक नहीं—यह निश्चय करना कठिन है। हम पीछे कह आए हैं कि कुछ वर्ष पूर्व उत्तर भारत में भी गोंडल-निवासी राजवैद्य कालीदास शास्त्री ने देवनागरी में भास के 'यज्ञफल'—नामक नाटक का पता लगाकर प्रकाशित किया है।

'यज्ञफल'— 'प्रतिमा' और 'अभिषेक' नाटकों की तरह यह नाटक भी राम के जीवन पर आधारित है। इसका कथानक बालकांड से लिया गया है और इसके सात अंक हैं। राजा दशरथ के चार पुत्र उत्पन्न होते हैं। सारे राज्य में आनन्द की लहर फैल जाती है। उनकी बाल्यावस्था में विश्वामित्र पधारते हैं और शिक्षा-दीक्षा का प्रश्न उठाकर राम-लक्ष्मण को जृम्भकास्त्र सिखाने एवं अपने यज्ञ की रक्षा हेतु दशरथ से माँगते हैं। क्षत्रिय होने के कारण विश्वामित्र द्वारा रचे गये यज्ञों के विरुद्ध ब्राह्मणों का दल रावण के नेतृत्व में बाधा डालता है। राम सुबाहु आदि राक्षसों को मारते हैं। यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न होने के बाद विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को जनकपुरी ले जाते हैं, जहाँ राम द्वारा धनुर्भङ्ग होने पर यज्ञफल-स्वरूप राम का सीता के साथ विवाह हो जाता है। 'यज्ञफल' भास की ही कृति है— इस सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। प्रो० झाला इसे भासकृत नहीं मानते। उनका कहना है कि भास के अनुकरण पर यह किसी आधुनिक कवि का लिखा हुआ है। इसके विपरीत, डा० पुसालकर भाषा, शैली आदि के आधार पर इसे भासकृत ही मानते हैं। भास के सम्बन्ध में एक लोक-धारणा यह भी है कि भास ने ३० नाटक लिखे, जिनमें 'मुकुटताडितक' और 'उदात्तराघव' भी आते हैं।[१]

---

१ देखिए कृष्णमाचार्य द्वारा संपादित 'प्रियदर्शिका' की भूमिका, पृ० ३३

'विष्णुधर्म'—भास का काल-निर्धारण करते हुए हमने व्यास और भास के सम्बन्ध में जो दन्त-कथा बताई है, उसका उल्लेख अवनी जयानककृत पृथ्वीराज-विजय की टीका में करते हुए एक टीकाकार ने लिखा है कि भास की जो सर्वोत्तम कृति परीक्षाहेतु अग्नि में डाली गई थी, वह उनका 'विष्णुधर्म' ग्रन्थ था। यह विष्णुधर्म अभी तक अनुपलब्ध है किन्तु उक्त टीकाकार के अनुसार यह कोई काव्य ही कहा जा सकता है। काव्यों की उत्तमताविषयक होड़ में संगति भी बैठ जाती है।

इनके अतिरिक्त संस्कृत-साहित्य में भास-रचित कहे जाने वाले कितने ही पद्य प्रचलित हैं, जो हमें सुभाषित ग्रन्थों एवं अन्य ग्रन्थों में उल्लिखित मिलते हैं। वे भास के किन्हीं ग्रन्थों में से उद्धृत किये गए होंगे, इसलिए भास-साहित्य की इयत्ता निर्धारण करना कठिन है। हम पाठकों के परिचयार्थ तत्तद्-ग्रन्थों में संगृहीत भास के पद्यों को नीचे उद्धृत कर देते हैं—

१—सुभाषितावली—

कठिनहृदये मुञ्च क्रोधं सुख-प्रतिघातकं,
लिखति दिवसं यातं-यातं यमः किल मानिनी।
वयसि तरुणे नैतद् युक्तं चले च समागमे,
भवति कलहो यावत् तावद् वरं सुभगे रतम् ॥ १ ॥

बाला च सा विदितपञ्चशरप्रपञ्चा,
तन्वी च सा स्तनभरोपचिताङ्गयष्टिः।
लज्जां समुद्वहति सा सुरतावसाने,
हा कापि सा किमिव किं कथयामि तस्याः ॥ २ ॥

कृतक-कृतकैर्मायाा-सख्यैस्त्वयास्म्यतिवञ्चिता,
निभृत-निभृतैः कार्यालापैर्मयाप्युपलक्षितम्।
भवतु विदितं नेष्टाहं ते वृथा किमु खिद्यसे,
ह्यहमसहना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम् ॥ ३ ॥

दुःखार्ते मयि दुःखिता भवति या हृष्टे प्रहृष्टा तथा,
दैन्ये दैन्यमुपैति रोष-समये पथ्यं वचो भाषते।

कालं वेत्ति कथाः करोति निपुणा मत्संस्तवे रज्यति,
भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः सेका बहुत्वं गता ॥ ४ ॥

२—शार्ङ्गधर-पद्धति—

कपोले मार्जारः पय इति करांल्लेढि शशिन-
स्तरु-च्छिद्र-प्रोतान् विसमिति करी संकलयति ।
रतान्ते तल्पस्थान् हरति वनिताप्यंशुकमिति,
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥ १ ॥

तीक्ष्णं रविस्तपति नीच इवाचिराढ्यः
शृङ्गं रुरुस्त्यजति मित्रमिवाकृतज्ञः ।
तोयं प्रसीदति मुनेरिव चित्तमन्तः
कामी दरिद्र इव शोषमुपैति पङ्कः ॥ २ ॥

पेया सुरा प्रियतमामुखमीक्षणीयं,
ग्राह्यः स्वभाव-ललितो विकटश्च वेषः ।
येनेदमीदृशमदृश्यत मोक्ष-वर्त्म,
दीर्घायुरस्तु भगवान् स पिनाकपाणिः ॥ ३ ॥

अस्या ललाटे रचिता सखीभिर्विभाव्यते चन्दनपत्रलेखा ।
आपाण्डुर - क्षाम - कपाल - भित्तावनङ्गबाणव्रणपट्टिकेव ॥ ४ ॥

दयिता-बाहुपाशस्य कुतोऽयमपरो विधिः ।
जीवयत्यर्पितः कण्ठे मारयत्यपवर्जितः ॥ ५ ॥

३—सदुक्तिकर्णामृत—

विरहित-वनिता-वक्त्रौपम्यं बिभर्ति निशापतिः,
गलित-विभवस्याज्ञेवाद्य द्युतिर्मसृणा रवेः ।
अभिनव-वधू-रोष-स्वादुः करीषतनूनपा-
दसरल-जनाश्लेषक्रूरस्तुषार-समीरणः ॥ १ ॥

प्रत्यासन्न-विवाह-मङ्गल-विधौ देवार्चनव्यग्रया,
दृष्ट्वाग्रे परिणेतुरेव लिखितां गङ्गाधरस्याकृतिम् ।

उन्माद-स्मित-रोम-लज्जितरसंगीयाः कथञ्चिच्चिरात्,
बद्धः स्त्री-वचनात्प्रिये विनिहितः पुष्पाञ्जलिः पातु वः ॥ २ ॥

दग्धे मनोभवतरौ बाला कुच-कुम्भ-संभृतैरमृतैः ।
त्रिवलीकृतालवाला जाता रोमावली वल्ली ॥ ३ ॥

४—सूक्तिमुक्तावली—

यदपि विबुधैः सिन्धोरन्तः कथञ्चिदुपार्जितं,
तदपि सकलं चारु-स्त्रीणां मुखेषु विलोक्यते ।
सुर-सुमनसः श्वासामोदे शशी च कपोलयो-
रमृतमधरे तिर्यग्भूते विषं च विलोचने ॥ १ ॥

५—नाट्यदर्पण—

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम् ।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥ १ ॥

इस तरह हम देखते हैं कि व्यास-साहित्य की तरह भास-साहित्य भी अपने समय में खूब विशाल रहा होगा जो अब काल-कवलित हो गया है । यही कारण है कि व्यास की तरह भास को भी कहीं-कहीं मुनि कहा गया है ।

नाटक-चक्र भास-कृत नहीं—पश्चिम और भारत के कुछ विद्वान् ऐसे हैं जो भास-कृत तेरह नाटकों को भास-कृत नहीं मानते । उनमें से उल्लेखनीय डा० बर्नेट, प्रो० काणे, पिशरोती और देवधर हैं । इन लोगों का कहना है कि यदि ये नाटक भास-कृत होते, तो इनमें भास का नाम अवश्य लिखा हुआ होता, क्योंकि नाट्य-संविधानानुसार नाटककार को प्रस्तावना में अपना नामादि देना होता है । इसके अतिरिक्त कुछ नाट्य-शास्त्रियों ने अपने लक्षण-ग्रन्थों में भास के नाटकों के जो उद्धरण दे रखे हैं, वे भास-कृत कहे जाने वाले नाटकों में नहीं मिलते हैं । उदाहरण के लिए वे रामचन्द्र के 'नाट्यदर्पण' को लेते हैं । उसमें ग्रन्थकार ने भास-रचित स्वप्नवासवदत्त नाटक से निम्नलिखित पद्य उद्धृत कर रखा है—

"यथा भास-कृते स्वप्नवासवदत्ते शेफालिका-शिलातलमवलोक्य वत्सराजः—

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्मं चेदं शिलातलम् ।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥"

परन्तु यह श्लोक आजकल के भास-रचित कहे जाने वाले स्वप्नवासवदत्त में नहीं मिलता है। गणपति शास्त्री ने स्वप्नवासवदत्ता के द्वितीय संस्करण में अब यह श्लोक छठे अंक में ठूंसा है। इससे सिद्ध होता है कि ये नाटक भास के नहीं हैं। प्रश्न उठता है कि फिर इनका रचयिता कौन है? इसके उत्तर में इनमें से कुछ विद्वानों का कहना है कि इनका रचयिता एक नहीं, बल्कि अनेक हैं और वे हैं केरल प्रदेशीय रंगमञ्च के चाक्यार। जैसे उत्तर भारत में रासधारी-नामक नट भगवान् कृष्ण के चरित को रास-रूप में रंगमञ्च पर अभिनीत करते हैं, ठीक उसी प्रकार केरल के चाक्यारों का भी काम था। केरल में ही नाटकों की हस्त-प्रतिलिपियों का प्राप्त होना भी यही सिद्ध करता है। यदि ये भासकृत होते, तो अन्यत्र भी इनकी प्रतिलिपियाँ मिलती। परन्तु डा० बर्नेट 'नाटकचक्र' को चाक्यारों द्वारा रचित नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि इसका रचयिता पल्लव या पाण्डय राजाओं का कोई सभा-पंडित है। इन राजाओं में नरसिंह वर्मा और तेनमारन इन दो ने अपनी 'राजसिंह' उपाधि धारण कर रखी थी, इनका स्थिति-काल ७०० (ई०) है। यही कारण है कि नाटक-रचयिता पण्डित ने अपने आश्रयदाता केरलीय राजा का नाम अमर करने हेतु अधिकांश भरत-वाक्यों में 'राजसिंहः प्रशास्तु नः' लिखा। इस तरह 'नाटकचक्र' भास-कृत नहीं है।

नाटक-चक्र भासकृत है—उपर्युक्त विद्वानों के विपरीत दूसरा समालोचक-वर्ग 'नाटकचक्र' को भास-कृत ही मानता है। उनमें से विशेष उल्लेख्य हैं 'नाटकचक्र' के सम्पादक स्वयं म० म० पं० गणपति शास्त्री, पराञ्जपे, कीथ और थामस। संक्षेप में इनका तर्क यह है—

१— सूक्ष्म दृष्टि से विचारने पर इन नाटकों का रचयिता एक ही व्यक्ति ठहरता है, विभिन्न नहीं। पहला कारण है सभी नाटकों में बहुत-सी बातों की समानता। सभी में नान्दी नेपथ्य में होती है, जिसका रूप देव-पूजनादि होता होगा और उसके बाद सूत्रधार का प्रवेश होता है जो अपनी पृथक् मंगलकामना करता है, जैसे—(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः) सूत्रधारः—'यो शशिपुत्र-

मख०' । अन्य नाटकों में नान्दी रंगमञ्च पर ही होती है। इसी तरह नाटकों की प्रस्तावना भी सभी में संक्षिप्त है और कर्णभार को छोड़ सर्वत्र 'प्रस्तावना' शब्द के स्थान में 'स्थापना' शब्द प्रयुक्त हो रखा है। सूत्रधार के कई मंगल-पाठ श्लेष-गर्भित हैं और नाटक की कथावस्तु और पात्रों की ओर भी संकेत देते हैं, जिसे नाट्य-भाषा में 'मुद्रालंकार' कहते हैं। इसी तरह भरतवाक्यों में 'महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः' यह प्राय: एक-जैसा मिलता है। नाटकों में कहीं-कहीं पात्रों के नाम एक ही मिलते हैं। प्रतिज्ञा० और दूतवाक्य दोनों में कञ्चुकी का नाम बादरायण है। इसी प्रकार प्रतिज्ञा० स्वप्न०, प्रतिमा और अभिषेक–सर्वत्र प्रतीहारी का नाम विजया है। कितने ही नाटकों में दृश्य, वाक्य और भाव तक एक मिलते हैं। लक्ष्मी का वीरभोग्या होना, मृत्यु के उपरान्त वीरों का यशःशरीर में रहना एवं वीरता के उत्कृष्ट भाव—सभी में एक-जैसे वर्णित हैं। मृत्यु के बाद वाली, दशरथ और दुर्योधन द्वारा पवित्र नदियों का दर्शन और उन्हें लेने हेतु ऊपर से विमान आने के दृश्य समान ही हैं। सूर्यास्त, रात्रि और युद्ध के दृश्य भी मिलते-जुलते हैं। इकट्ठी हुई भीड़ को हटाने के लिए 'उत्सरत आर्याः उत्सरत' और इसी तरह किसी बात की सूचना देने के लिए 'निवेद्यतां, निवेद्यतां महाराजाय' आदि वाक्य सभी नाटकों में ज्यों के ज्यों आए हुए हैं। इसी तरह सामाजिक परिस्थितियाँ, भाषा, शैली, मञ्च-निर्देश (स्टेज डाइरेक्शन), नाटकों के कथावस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध (जैसे-प्रतिमा और अभिषेक), पाणिनि-व्याकरण और भरत नाट्यशास्त्र के नियमों की अवहेलना एवं नाटक का नाम समाप्ति पर देना इत्यादि बातें इन सभी नाटकों में समान रूप से मिलती हैं। इस बड़े भारी साम्य के प्रमाण से यह कैसे कहा जा सकता है कि इन तेरह नाटकों के रचयिता भिन्न-भिन्न हैं, एक नहीं। निश्चयतः सब में एक ही लेखनी ने काम किया है।

२—उपर्युक्त साम्य के आधार पर नाटक चक्र का कर्ता एक ही है और वह भास है। इस सम्बन्ध में इन विद्वानों का पहला प्रमाण कवि राजशेखर का (९०० ई०) निम्नलिखित श्लोक है—

भासनाटकचक्रेऽस्मिन् छेकैः क्षिप्तैः परीक्षितुम् ।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः ॥ (काव्यमी०)

इसमें राजशेखर ने 'नाटकचक्र' का रचयिता भास को मान रखा है। छेकों—विदग्ध विद्वानों—द्वारा भास के इन तेरह नाटकों की अग्नि-परीक्षा ली गई तो स्वप्नवासवदत्ता को आग नहीं जला सकी अर्थात् वह सर्वशुद्ध श्रेष्ठ नाटक सिद्ध हुआ। कीथ के शब्दों में 'अग्नि-परीक्षा' का मतलब है 'समालोचकों द्वारा कठोर परीक्षा' और लक्ष्मी नारायण मिश्र के शब्दों में 'अग्नि-परीक्षा में न जलने का अर्थ सरलता से यह लगाया जा सकता है कि महाकवि भास का कविकर्म इस नाटक में सबसे अधिक सफल है, यह उनके नाटकों में सर्वश्रेष्ठ और संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि है।' राजशेखर ने 'नाटक-चक्र' के अन्तर्गत 'स्वप्नवासवदत्त' को जब भास-रचित मान रखा है, तब 'स्थालीपुलाक' न्याय से शेष नाटक भी स्वतः भास-रचित ही सिद्ध हो जाते है क्योंकि उनमें भी 'स्वप्नवासवदत्त' वाली सभी विशेषतायें हैं।

३—दूसरा प्रमाण बाणभट्ट कवि (६५० ई०) है, जिसने भास के नाटकों की विशेषताओं का इस प्रकार उल्लेख कर रखा है—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव (हर्ष० १।१५)

बाण ने श्लेष-गर्भित भाषा में भास के नाटकों की देवमन्दिरों के साथ तुलना की है और कहा है कि उनका आरम्भ सूत्रकार से होता है, उनमें भूमिकायें—भली-बुरी, ऊँची-नीची अथवा हर्ष-विषाद आदि से पूर्ण स्थितियाँ—हो सकती हैं, सभी पर बाण ने तूलिका फेरी है, कोई अछूती नहीं रखी—यह हम नाटकचक्र में देखते ही हैं।

४—कुछ विद्वान् प्राचीन ग्रन्थकारों द्वारा अपने रीति-ग्रन्थों में उद्धृत भास के स्वप्नवा० के पद्यों अथवा घटनाओं का अद्यतन नाटकचक्र के स्वप्नवा० में न मिलने के कारण उसका भास-रचित न होने का तर्क प्रस्तुत करते हैं, किन्तु वह अनैकान्तिक है, क्योंकि कितने ही रीति-ग्रन्थकारों द्वारा उद्धृत पद्य आजकल के स्वप्नवा० में ज्यों के त्यों मिल जाते हैं। वामन ने अपनी काव्यालंकारसूत्र-वृत्ति में व्याजोक्ति अलंकार के उदाहरण के रूप में भास का यह श्लोक उद्धृत कर रखा है:—

शरच्चन्द्रांशुगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं कृतम् ।। (४।३।२५)

यह वर्तमान स्वप्नवा० में मिलता है। इसी तरह अभिनवगुप्ताचार्य द्वारा अपनी 'अभिनवभारती' में उद्धृत-'क्वचित् क्रीडा यथा वासवदत्तायाम्' यह घटना और 'भावप्रकाशिका' में उद्धृत—'चिरप्रसुप्तः कामो मे' इत्यादि पद्य अद्यतन स्वप्नवा० में अविकल विद्यमान हैं। अन्यों द्वारा उद्धृत किसी श्लोक के न मिलने का कारण पाठभेद हो सकता है जो कि सभी कवियों के नाटकों में मिलता है। स्वयं कालिदास के शकुन्तला नाटक के विभिन्न संस्करणों में अनेक पद्य अथवा घटनायें परस्पर नहीं मिलती हैं। कभी-कभी प्रतिलिपिकार की असावधानी से भी कोई श्लोक अथवा संदर्भ छूट जाता है। इसलिए किसी श्लोक के न मिलने का तर्क अपुष्ट है। नाटकचक्र के केरल में प्राप्त होने से उसके केरलीय कवि या कवियों द्वारा रचित होने के तर्क का हम पीछे खण्डन कर आए हैं। स्पष्टतः नाटकचक्र में जितना चित्रण उत्तर भारत का है, उसकी अपेक्षा दक्षिण भारत का चित्रण नाममात्र ही समझिए। इसलिए नाटकचक्र के कर्ता केरल के नहीं, प्रत्युत उत्तर भारत के भास ही हैं।

नाटकचक्र अंशतः ही भासकृत है—उपरोक्त परस्पर-विपरीत दृष्टिकोणों वाले विद्वानों के दो दलों के अतिरिक्त एक तीसरा दल भी है, जो नाटकचक्र को अंशतः भास-कृत और अंशतः अन्यकृत मानता है। इस दल के प्रमुख हैं—विण्टरनिट्ज, डा० सुखतंकर और म० म० रामावतार शास्त्री। इनका कहना है कि उपरोक्त परस्पर-विरोधी दलों के तर्क निर्णयात्मक नहीं हैं। इसलिए नाटक-चक्र के अन्तर्गत तेरह नाटक अंशतः ही भासकृत हैं। वे अपूर्ण ही उपलब्ध हुये। बाद में किसी केरल कवि अथवा चाक्यारों ने रंगमञ्च के उपयुक्त बनाने हेतु उन उपलब्धांशों की पूर्ति की है। अविकल रूप से वे भासकृत नहीं हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय इसी मध्यममार्ग का समर्थन करते हुए लिखते हैं—'परस्पर-विसंवादी सिद्धान्तों और मान्यताओं के बीच यही बात उपयुक्त प्रतीत हो रही है कि ये नाटक अंशतः भास-रचित हैं। इस मत में उन विद्वानों की राय का भी समावेश हो जाता है, जो यह कहते हैं कि 'ये नाटक भास के नाटकों के संक्षिप्त रूप हैं'। इनके कथन की सार्थकता इतने तक ही है कि इन नाटकों के कुछ अंश

भास-प्रणीत है। इसके विपरीत जो व्यक्ति यह कहते हैं कि ये नाटक भास-प्रणीत बिलकुल नहीं हैं, उनकी बात प्रामाण्य-कोटि में नहीं ली जा सकती।' इस तरह यह तीसरा मत प्रथम और द्वितीय मतों का समन्वयात्मक रूप है।

नाटकचक्र में भास की आत्मा—हमारे विचार से तो नाटकचक्र के सम्बन्ध में पूर्वोक्त विभिन्न दृष्टिकोणों के आलोक में यह अवधारण करना कि यह भास-कृत ही हैं—एक कठिन समस्या है। फिर भी इतना अवश्य है कि यदि ये नाटक अन्यकृत और आधुनिक होते, तो प्रचलित नाट्यविधानानुसार प्रस्तावना में रचयिता अपने नामादि का उल्लेख अवश्य करता या करते, क्योंकि कालिदास से लेकर नाटककारों द्वारा निज परिचय देने की प्रथा यथावत् चली आ रही है। भरत आदि नाट्यशास्त्रियों के लक्षणग्रन्थों के निर्माण से पूर्व ही नाम न देने की बात सम्भव हो सकती है जिसे भास के सम्बन्ध में हम पीछे कह आए हैं। यदि यह माना भी जाय कि रंगमञ्चोपयुक्त बनाने के लिए भास के नाटकों के ये संक्षिप्त रूप हैं, तो यह भी मानना पड़ेगा कि संक्षेपकर्ता ने इनमें भास की आत्मा का हनन नहीं होने दिया है। बाणभट्ट आदि कवियों द्वारा उल्लिखित भास की नाट्यगत विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उनमें चित्रित प्राचीन काल के रहन-सहन, विचारों, मान्यताओं, राजनैतिक, भौगोलिक एवं सामाजिक तथ्यों, परिस्थितियों और वातावरणों के संदर्भ में हमें यह कहते जरा भी संकोच नहीं कि नाटक-चक्र में भास की आत्मा पूर्णतः विद्यमान है, भले ही कलेवर में कुछ अन्तर क्यों न आ गया हो।

भास की भाषाशैली—भास की नाट्यकला संस्कृत-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है। वाल्मीकि और व्यास से दाय रूप में प्राप्त भास की शैली वैदर्भी है जिसने परवर्ती कालिदास आदि का पथ-प्रदर्शन किया। वह माधुर्य और प्रसादगुण-गुम्फित, सर्वसुबोध, अप्रयाससाध्य और मुहावरेदार है। उसमें समासों का प्रायः अभाव है और समास हैं भी तो साधारणतः छोटे हैं, बड़े नहीं। ऐसा मालूम पड़ता है कि पूर्ववर्ती व्यास, भास आदि के भाषा-प्रयोग को लक्ष्य करके ही परवर्ती संस्कृत के रीतिग्रन्थकारों ने वैदर्भी शैली का लक्षण किया—

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका ।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥ (सा० द० ६१३)

वृत्ति का अर्थ यहाँ समास है । भास की भाषा में स्वाभाविकता है, जिससे अनुमान किया जा सकता है कि भास के समय में संस्कृत आम बोल-चाल की भाषा रही होगी । भाषा में अलंकार वही हैं, जो स्वभावतः आ गए । परवर्ती अलंकृत-शैली के कवियों की तरह जान-बूझकर काव्य को अलंकारों से मढ़ना भास की कला ने नहीं सीखा । उनका वाक्य-प्रयोग परिमित और उतना ही सीमित रहता है जितने मात्र से आन्तरिक भावों को अभिव्यक्ति मिल जाय और बिम्ब ग्रहण हो सके । व्यर्थ का वागाडम्बर भास की लेखनी छूती तक नहीं, बल्कि कहीं-कहीं तो उनकी भाषा की समाहार-शक्ति और शब्द-पारिमित्य के कारण भाव और आशय समझने में मस्तिष्क को कुछ जोर लगाना पड़ता है । वास्तव में भास का काल वह सूत्रकाल था जब संस्कृत भाषा अपने सरल, परिमित और ठोस रूप में थी । भास की सरल शैली का उदाहरण देखिए—

सव्येन चापमवलम्ब्य करेण वीर-
मन्येन सायकवरं परिवर्तयन्तम् ।
भूमौ स्थितं रथगतं रिपुमीक्षमाणं
क्रौञ्चं यथा गिरिवरं युधि कार्त्तिकेयम् ॥ (अभिषेक)

साधारणतः वैदर्भी शैली के होते हुए भी अपवाद-स्वरूप भास कहीं-कहीं अलंकृत शैली भी अपना गए हैं—इसके उदाहरण हम आगे अभिषेक के विवेचन में प्रस्तुत करेंगे ।

भास का पात्र-वैविध्य और आदर्शवाद——भास की नाट्यकला की विशेषता उनके पात्रों का वैविध्य और आदर्शवाद है । वाल्मीकि और व्यास से प्रेरणा लेकर भास ने मानव-जीवन का जितना व्यापक चित्र नाटकों में उतारा है, उतना दूसरे नाटककार नहीं उतार सके । इसीलिए बाण ने भास के नाटकों को 'बहुभूमिक' कहा है । ये नाटक ऐसी चित्र वीथी हैं, जहाँ एक ओर, राम, कृष्ण, इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवता हैं, वहाँ दूसरी ओर, सीता, कात्यायनी आदि देवियाँ भी हैं । इसी तरह रावण, घटोत्कच आदि राक्षस मिलते हैं, तो हिडिम्बा आदि राक्षसियाँ भी हैं । दशरथ, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, उदयन, महासेन

आदि राजा हैं तो कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, गान्धारी, अंगारवती रानियाँ भी हैं। दुर्जय, अविमारक आदि राजकुमार हैं तो कुरंगी, वासवदत्ता आदि राजकुमारियाँ भी हैं। यौगन्धरायण, भरतरोहक आदि मंत्री हैं तो शालंकायन जैसे सेनापति भी हैं। कहाँ तक गिनाएँ ! इस 'चित्रवीथी' में निम्नवर्ग के पात्रों—गणिका, चोर, बदमाश, जुआरी, पहलवान आदि के चित्र भी हैं। यहाँ तक कि वानर, नाग, जटायु, गरुड़ आदि पशु-पक्षी भी नहीं छूटने पाए हैं।

मानव-जीवन का व्यापक चित्र खींचने पर भी भास ने अपने पात्रों को नैतिक आदर्श से गिरने नहीं दिया है और जो पहले से गिरा हुआ भी रहा हो, वह भास का प्रश्रय पाकर उनके हाथों उबरा है, और निखरा है। राम-साहित्य में कैकेयी और महाभारत में दुर्योधन—दोनों ही बड़े निन्दित पात्र गिने जाते हैं; परन्तु भास की कैकेयी ब्राह्मण (श्रवण के पिता) के शाप को सत्य करना चाहती है। वह राम के लिए केवल चौदह दिन का वनवास माँगती है, किन्तु मानसिक सन्तुलन खो बैठने के कारण उसके मुँह से सहसा चौदह वर्ष निकल जाता है। इसी तरह 'पञ्चरात्र' में भास का दुर्योधन भी पाँच दिनों के भीतर पाण्डवों का पता लग जाने की शर्त पर गुरु द्रोणाचार्य को यज्ञ दक्षिणा रूप में पाण्डवों को आधा राज्य देना स्वीकार कर लेता है और पता लग जाने पर अपनी प्रतिज्ञानुसार सचमुच उन्हें आधा राज्य दे भी देता है। भाई-भाइयों और गुरु-शिष्यों के मध्य युद्ध भास का आदर्श नहीं है। ऊँचे स्तर के पात्रों की की बात छोड़िए, भास के निम्न पात्र—राक्षस घटोत्कच, गणिका वसन्तसेना, चोर सज्जलक, जुआरी संवाहक आदि भी अपनी नैतिक चेतना नहीं खोए हुए हैं। मूल कथानक में परिवर्तन तक करके भास का लक्ष्य अपने दानवी पात्रों को मानवता के धरातल पर लाकर खड़ा कर देना है। इस प्रकार भास यथार्थ को सामने रखते हुए भी आदर्श को नहीं भूलते हैं।

भास का चरित्र-चित्रण—किसी भी नाटककार द्वारा किये गए सफल चरित्र-चित्रण पर आधारित होती है। शेक्सपियर के नाटकों ने जो विश्वव्यापी गरिमा अर्जित कर रखी है, उसका श्रेय उनमें चित्रित मानव-स्वभाव की सूक्ष्म विविधताओं अथवा सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों को है। इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को ही शब्दान्तर में नाटक का चरित्र-चित्रण तत्त्व कहते हैं। इसी से

कथावस्तु आगे सरकती है और अपने चरम बिन्दु पर पहुँचती है। शेक्सपियर के नाटकों की तरह भास के नाटक भी चरित्र-प्रधान हैं और चित्रण की दृष्टि से भास एक कुशल नाटककार हैं। भास के किसी भी पात्र को ले लीजिए - चाहे वह देव-कोटि का हो, चाहे मानव-कोटि का, अथवा दानव-कोटि का—सभी का स्वभाव और गुण-दोषों का चित्रण उसी कोटि और जाति के अनुरूप मिलेगा। पात्रों का कथोपकथन बड़ा जीवन्त और संक्षिप्त रहता है। उनका एक-एक वाक्य उनके हृदय के स्तरों को उभाड़ता हुआ दर्शकों के सामने रख देता है। कोई भी पात्र व्यर्थ का वाग्विस्तार नहीं करता, न ही कल्पना का रंग चढ़ाना जानता है। सच तो यह है कि समाज के इतने अधिक विविध चरित्रों को रंगमञ्च पर लाकर भास ने मानव-मनोविज्ञान की जैसी मार्मिक व्याख्या की है, उतनी दूसरा क्या कर सकेगा ! हमारे विचार में मानव का समूचा अन्तर्जगत्—क्या तो उसकी ऊँचाई, क्या नीचाई, क्या घात, क्या प्रतिघात, क्या प्रेम, करुणा, क्रोध, उत्साह, वीर विस्मय आदि भाव, क्या कूटवृत्ति छल-छद्म और क्या अन्य—सभी पर जितनी भास की कला-तूलिका चली है, उतनी किसी अन्य कलाकार की नहीं। इस के साथ-साथ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भास के सभी चरित्र भारतीय संस्कृति के जीवन्त प्रतिमायें हैं।

भास का प्रकृति-चित्रण—मानव-प्रकृति की तरह भास का बाह्य प्रकृति का भी बड़ा गहरा अध्ययन है। मानव के समान प्रकृति को भी भास ने विविध रूपों में देखा है और उसके भी बड़े मार्मिक चित्र खींचे हैं, परन्तु भास का प्रकृति-चित्रण परवर्ती कवियों की तरह एक रूढ़-जैसी वस्तु नहीं, बल्कि स्वतन्त्र है और आलम्बन रूप में अधिक, उद्दीपन-रूप में बहुत कम। यह तो स्पष्ट है कि भास मुख्यतः एक नाटककार हैं, काव्यकार नहीं, इस लिए उनके प्रकृति-चित्र कथावस्तु को गतिशील बनाने वाले संक्षिप्त ही होते हैं, भवभूति की तरह कवित्व से बोझिल विस्तृत और उबा देने वाले नहीं। भास के जो भी चित्र होते हैं वे बिल्कुल स्वाभाविक और बिम्बग्राही होते हैं, उदाहरणार्थ अभिषेक में समुद्र का स्वतन्त्र चित्रण देखिये—

क्वचित् फेनोद्गारी, क्वचिदपि च मीनाकुलजलः,
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः, क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः।

क्वचिद् वीचोमालः, क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः,
क्वचिद् भीमावर्तः, क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥ [४।१०]

इसी तरह स्वप्नवा० में तपोवन और सन्ध्याकाल का वर्णन भी देखिए—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः,
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति, प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्त-किरणः,
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ [१–१६]

सूर्यास्त के बाद चन्द्रोदय के चित्र के लिए हम भास का 'चारुदत्त' लेते हैं—

उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्न-खर्जूरपाण्डुः,
युवति-जन-सहायो राजमार्ग-प्रदीपः ।
तिमिर-निचय-मध्ये रश्मयो यस्य गौराः,
हृतजल इव पङ्के क्षीर-धाराः पतन्ति ॥ [१–२९]

भास के नाटकों की अभिनेयता—यह सभी जानते हैं कि वस्तु, चरित्रचित्रण और कथोपकथन आदि तत्त्वों के एक-जैसे होते हुए भी काव्य और नाटक में मौलिक भेद इस बात का है कि जहाँ काव्य श्रव्य अथवा अध्येतव्य होता है, वहाँ नाटक अभिनेय (रंगमञ्च पर खेला जाने वाला) अथवा दृश्य। नाटक का मुख्य लक्ष्य कालिदास के शब्दों में—"नाट्यं भिन्न-रुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्" अर्थात् रंगमञ्च पर कथावस्तु के अभिनय द्वारा विभिन्न रुचियों वाले दर्शकों का दो ढाई घण्टे का सभी तरह का मनोरञ्जन होता है। इस लक्ष्यपूर्ति के लिए अभिनेय वस्तु का संक्षिप्त, गतिशील और बिना गौण बातों में उलझे और इधर-उधर भटके चरम बिन्दु तक पहुँचने वाला होना आवश्यक है। सर्व-सुबोध, स्वाभाविक भाषा में वस्तु का प्रस्तुतीकरण ऐसा होना चाहिए कि जिससे प्रेक्षकों की उत्सुकता उत्तरोत्तर बढ़ती जाय और वे स्तब्धता (Suspense) में पड़े रहें। उसका कोई भी प्रसंग उबा देने वाला नहीं होना चाहिए। इस दृष्टि से भास के नाटकों का मूल्यांकन किया जाय, तो वे संस्कृत के सभी नाटककारों से बाजी मारे हुए हैं। भवभूति आदि की तरह हिन्दी के सुप्रसिद्ध जयशंकर

कथावस्तु आगे सरकती है और अपने चरम बिन्दु पर पहुँचती है। शेक्सपियर के नाटकों की तरह भास के नाटक भी चरित्र-प्रधान हैं और चित्रण की दृष्टि से भास एक कुशल नाटककार हैं। भास के किसी भी पात्र को ले लीजिए - चाहे वह देव-कोटि का हो, चाहे मानव-कोटि का, अथवा दानव-कोटि का— सभी का स्वभाव और गुण-दोषों का चित्रण उसी कोटि और जाति के अनुरूप मिलेगा। पात्रों का कथोपकथन बड़ा जीवन्त और संक्षिप्त रहता है। उनका एक-एक वाक्य उनके हृदय के स्तरों को उभाड़ता हुआ दर्शकों के सामने रख देता है। कोई भी पात्र व्यर्थ का वाग्विस्तार नहीं करता, न ही कल्पना का रंग चढ़ाना जानता है। सच तो यह है कि समाज के इतने अधिक विविध चरित्रों को रंगमञ्च पर लाकर भास ने मानव-मनोविज्ञान की जैसी मार्मिक व्याख्या की है, उतनी दूसरा क्या कर सकेगा! हमारे विचार में मानव का समूचा अन्तर्जगत्—क्या तो उसकी ऊँचाई, क्या नीचाई, क्या घात, क्या प्रतिघात, क्या प्रेम, करुणा, क्रोध, उत्साह, वीर विस्मय आदि भाव, क्या कूटवृत्ति छल-छद्म और क्या अन्य—सभी पर जितनी भास की कला-तूलिका चली है, उतनी किसी अन्य कलाकार की नहीं। इस के साथ-साथ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भास के सभी चरित्र भारतीय संस्कृति के जीवन्त प्रतिमायें हैं।

भास का प्रकृति-चित्रण—मानव-प्रकृति की तरह भास का बाह्य प्रकृति का भी बड़ा गहरा अध्ययन है। मानव के समान प्रकृति को भी भास ने विविध रूपों में देखा है और उसके भी बड़े मार्मिक चित्र खींचे हैं, परन्तु भास का प्रकृति-चित्रण परवर्ती कवियों की तरह एक रूढ़-जैसी वस्तु नहीं, बल्कि स्वतन्त्र है और आलम्बन रूप में अधिक, उद्दीपन-रूप में बहुत कम। यह तो स्पष्ट है कि भास मुख्यतः एक नाटककार हैं, काव्यकार नहीं, इस लिए उनके प्रकृति-चित्र कथावस्तु को गतिशील बनाने वाले संक्षिप्त ही होते हैं, भवभूति की तरह कवित्व से बोझिल विस्तृत और उबा देने वाले नहीं। भास के जो भी चित्र होते हैं वे बिल्कुल स्वाभाविक और बिम्बग्राही होते हैं, उदाहरणार्थ अभिषेक में समुद्र का स्वतन्त्र चित्रण देखिये—

क्वचित् फेनोद्गारी, क्वचिदपि च मीनाकुलजलः,
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः, क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः।

क्वचिद् वीचीमालः, क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः,
क्वचिद् भीमावर्तः, क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥ [४।१०]

इसी तरह स्वप्नवा० मे तपोवन और सन्ध्याकाल का वर्णन भी देखिए—

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः,
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति, प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्त-किरणः,
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥ [१–१६]

सूर्यास्त के बाद चन्द्रोदय के चित्र के लिए हम भास का 'चारुदत्त' लेते हैं—

उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्न-खर्जूरपाण्डुः,
युवति-जन-सहायो राजमार्ग-प्रदीपः ।
तिमिर-निचय-मध्ये रश्मयो यस्य गौराः,
हृतजल इव पङ्के क्षीर-धाराः पतन्ति ॥ [१–२९]

भास के नाटकों की अभिनेयता—यह सभी जानते हैं कि वस्तु, चरित्रचित्रण और कथोपकथन आदि तत्त्वों के एक-जैसे होते हुए भी काव्य और नाटक में मौलिक भेद इस बात का है कि जहाँ काव्य श्रव्य अथवा अध्येतव्य होता है, वहाँ नाटक अभिनेय (रंगमञ्च पर खेला जाने वाला) अथवा दृश्य। नाटक का मुख्य लक्ष्य कालिदास के शब्दों में—"नाट्यं भिन्न-रुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्" अर्थात् रंगमञ्च पर कथावस्तु के अभिनय द्वारा विभिन्न रुचियों वाले दर्शकों का दो ढाई घण्टे का सभी तरह का मनोरञ्जन होता है। इस लक्ष्यपूर्ति के लिए अभिनेय वस्तु का संक्षिप्त, गतिशील और बिना गौण बातों में उलझे और इधर-उधर भटके चरम बिन्दु तक पहुँचने वाला होना आवश्यक है। सर्व-सुबोध, स्वाभाविक भाषा में वस्तु का प्रस्तुतीकरण ऐसा होना चाहिए कि जिससे प्रेक्षकों की उत्सुकता उत्तरोत्तर बढ़ती जाय और वे स्तब्धता (Suspense) में पड़े रहें। उसका कोई भी प्रसंग उबा देने वाला नहीं होना चाहिए। इस दृष्टि से भास के नाटकों का मूल्यांकन किया जाय, तो वे संस्कृत के सभी नाटककारों से बाजी मारे हुए हैं। भवभूति आदि की तरह हिन्दी के सुप्रसिद्ध जयशंकर

'प्रसाद' आदि नाटककारों तक की भी रचनायें 'अध्येतव्य' अधिक बन पड़ी हैं, 'अभिनेतव्य' कम। उनमें पाण्डित्य अधिक है, कला कम। संस्कृत के अन्य श्रेण्य (Classical) नाटकों का यही हाल है। इसीलिए—जैसा हम पीछे संकेत कर आए हैं—विद्वानों का एक दल यह धारणा बनाये बैठा है कि भास के मूल नाटक भी इन्हीं की तरह लम्बे-लम्बे, अप्रासंगिक बातों से भरे होंगे जिन्हें बाद में किसी निपुण कलाकार ने काट-छांट कर वह रंगमञ्चोपयुक्त रूप दे दिया होगा, जो उपलब्ध नाटक-चक्र में हमें मिलता है। वास्तव में यह उनकी भ्रान्त धारणा है, क्यों कि श्रेण्य नाटककारों की रचनायें तो भरत आदि रीति-ग्रन्थकारों के नाट्यनियमों पर दृष्टि रखकर ही की गई हैं। यदि भास के नाटक भी बाद के होते—कटे-छँटे रूप में ही सही—तो उनमें भी नाट्यविधान का पूरा-पूरा पालन होता। इसलिए यह कहना कि भास के मूल-नाटक भी श्रेण्य नाटकों की तरह ही रहे होंगे—यह एक आग्रह ही समझिए। इस सम्बन्ध में हम अधिक न कह कर प्रसिद्ध पाश्चात्य संस्कृत-मनीषी विण्टरनिट्ज के विचार नीचे उधृत कर देते हैं—

"The author (Bhasa) must have been a great poet and above all a dramatic genius...All the classical dramas are more or less book dramas, while these plays are one and all the works of a born dramatist, wonderfully adapted to the stage....Nearly all the plays are works of great poetical merit worthy of the name of Bhasa."

अर्थात् (इन नाटकों का) प्रणेता एक महाकवि और उससे भी ऊपर एक अद्भुत नाट्यकला-विभूति रहा होगा।...सभी श्रेण्य नाटक प्रायः 'अध्येतव्य' पुस्तकें हैं जब कि ये नाटक निरपवाद-रूप से एक जन्म-सिद्ध नाटककार की रचनायें हैं।...लगभग सभी नाटक एक महान् काव्यशक्ति-सम्पन्न की कृतियाँ हैं, जो भास के नाम के अनुरूप हैं।

भास और कालिदास—भास और कालिदास—दोनों निस्सन्देह संस्कृत के दिग्गज कलाकार हैं। सभी संस्कृत कवियों का मूल्यांकन करने के ध्येय से

जयदेव कवि ने कविता को कामिनी का साकार रूप देकर कौन-कौन कवि क्या-क्या स्थान अपनाये हुए हैं—इसका इस तरह चित्र खींच रखा है—

यस्याश्चोरश्चिकुरनिकरः कर्णपूरो मयूरो
भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः ।
हर्षो हर्षो हृदयवसतिः पञ्चवाणस्तु बाणः,
केषां नैषा भवतु कविता-कामिनी कौतुकाय ॥

इसमें भास और कालिदास की तुलना करता हुआ कवि भास को कविता-कामिनी का 'हास' और कालिदास को 'विलास' बतला रहा है। जयदेव का यह मूल्यांकन उतना अयंगत नहीं है, जितना कि छन्दगत। भास-हास, कालिदास-विलास शब्दों में 'आस' का शाब्दिक साम्य लेकर अनुप्रास के प्रवाह में उसी तरह वह गया जैसे कि सूर और तुलसी की तुलना करता हुआ 'सूर-सूर, तुलसी ससी' का निर्णय दे बैठने वाला कोई हिन्दी-समालोचक। भास और कालिदास की तरह चोर, मयूर हर्ष और बाण का मूल्यांकन भी स्पष्टतः आनुप्रासिक ही समझिए। हम पीछे देख आए हैं कि भास ने हास ही नहीं, प्रत्युत अन्तर्जगत् के प्रेम, करुणा, उत्साह, विस्मय आदि अन्य भावों का भी तो समान रूप से चित्रण कर रखा है। अपने विदूषक पात्र को लाकर भास ने जितनी हास को अभिव्यक्ति दे रखी है, क्या वह कालिदास की कला में भी नहीं है? यही बात कालिदास को 'विलास' कहने में भी है। विलास नायिका की चाल-ढाल और स्मित-पूर्ण मुख-मुद्राओं और आँखों की विशेष चेष्टा वाले बाह्य गुण को कहते हैं जिसका पर्याय-शब्द अंग्रेजी में 'ग्रेस' और उर्दू में 'अदा' या 'नाज' है। क्या कालिदास की कला इस शारीरिक गुण तक ही सीमित है? वह तो मानव के अन्तरतम में भी पैठती है, वहाँ की अधिष्ठात्री, विलास-जननी प्रेमवृत्ति की विविध भूमियें और भंगिमाओं को उभाड़ कर हमारे सामने रख देती है। प्रेम तो कालिदास की कला का प्राण-बिन्दु है, जिससे वह जीवित है। निस्सन्देह अपनी उदात्त कल्पना एवं रस की अभिव्यञ्जना में कालिदास भास से कितने ही आगे पहुँच गए हैं। वास्तव में रसवाद के प्रतिष्ठापक भरत

मुनि के बाद कालिदास ही क्या, बल्कि सभी नाटककार अथवा काव्यकार रस-वादी बन कर ही कला के उपासक बने रहे। प्रधान लक्ष्य उन सब का विभावादि-सामग्री से परिपुष्ट भावों की अभिव्यक्ति करके उन्हें रस-रूप में परिणत करते हुए प्रेक्षकों को एक अनिर्वचनीय, 'ब्रह्मास्वादसहोदर' आनन्द में विभोर कर देना रहा। किन्तु भास भरत से पूर्ववर्ती हैं। उनके समय में रसवाद की प्रतिष्ठा नहीं हुई थी। उन्होंने अन्तर्जगत् की वृत्तियों–मनोभावों-को अपने मौलिक और यथावस्थित रूप में ही चित्रित किया है। परवर्ती श्रेण्य कलाकारों की तरह उनके आगे रस-परिपाक का चक्कर नहीं था। यही कारण है कि कालिदास की तरह भास की कला रस-निष्पत्ति में अपेक्षित कल्पना की उड़ानें भरने से रह गई और वास्तविकता की कठोर धरा से ही चिपकी रही। भास को इस कमी को लक्ष्य करके प्रो० पी० पी० शर्मा ने यह ठीक कहा है—

"His imagination does not soar high. There are many leituations in 'Swapnavasavadatta', where Kalidas and Bhavabhuti wowd have eavished their glowing poetry and fine description, but our poet is content with one feeble line or two."

अर्थात् "उन (भास) की कल्पना ऊँची उड़ाने नहीं भरती हैं। 'स्वप्नवासव-दत्त' में ऐसी कितनी ही स्थितियाँ हैं, जहाँ कालिदास और भवभूति होते तो अपनी कविता में सौन्दर्य-चित्रों का तांता बांध देते, किन्तु एक हमारे भी कवि हैं जो एक या दो असशक्त पंक्तियों से ही सन्तोष कर बैठते हैं"।

हो सकता है कि रसाभिव्यक्ति और कल्पना की दृष्टि से कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्र' में 'पुराणमित्येव न साधु सर्वम्' लिखकर भास के नाटकों की ओर ही संकेत किया हो।

हम देख आए हैं कि सूर की तरह कालिदास का कलाक्षेत्र प्रेम तक ही सीमित है। उनके तीनों नाटक शृंगारप्रधान हैं जिनमें प्रेम की पूरी गहराई है। किन्तु तुलसी की तरह भास का क्षेत्र व्यापक है। इस तरह स्पष्ट है कि कालिदास का व्यक्तित्व एकमुखी है जब कि भास का बहुमुखी।

भास और शेक्सपीयर—आश्चर्य है कि तुलनात्मक दृष्टि से भास अपने कालिदास आदि भारतीय नाटककारों की समकक्षता में नहीं आते जितने कि समुद्रपारीण प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपीयर की समकक्षता में। शेक्सपीयर ने कुल मिलाकर सैंतीस नाटक लिखे, जो उपलब्ध और प्रचलित ही हैं, किन्तु उनके एक और नाटक का भी कुछ भाग अब मिला है। भास के भी तेरह नाटक तो प्रकाश में आ ही गए हैं और चौदहवें के सम्बन्ध में भी चर्चा चली हुई है किन्तु जनधारणानुसार भास के भी तीस नाटक लिखे बताए जाते हैं जिन्हें प्रकाश में लाना शोध-विद्वानों का काम अभी शेष रहा हुआ है। मनोविज्ञान के बहुमुखी विश्लेषण में मानव का समूचा चित्र उतारने में भास और शेक्सपीयर—दोनों कलाकारों में होड़-सी है। हम देखते हैं कि कालिदास ने तो सदा मुस्कराती हुई लक्ष्मी के ही दर्शन किए थे, परन्तु भास को दरिद्रता-पिशाची के कुटिल कटाक्षों का भी अनुभव था, जिसकी मार्मिक अभिव्यक्ति उन्होंने 'चारुदत्त' में की है। शेक्सपीयर की तरह भास ने वध और मृत्यु तक के चित्र खींच रखे हैं। जिन पर भारतीय नाट्य-शास्त्रियों ने प्रतिबन्ध लगा रखा है। भास का 'ऊरुभङ्ग' स्वयं एक स्वतन्त्र दुःखान्त नाटक (ट्रेजेडी) है। शेक्सपीयर की सब से बड़ी विशेषता है परस्पर विसंवादी चरित्रों पर आधारित कथावस्तु के आलोक में जीवन के अन्तर्द्वन्द्व और घात-प्रतिघातों द्वारा चरित्र-चित्रण इस बात को भी हम भास में खूब मुखरित हुआ पाते हैं। षड्यन्त्रों की रचना और कूट-प्रयोग भी दोनों में बराबर हैं। भास के काल तक सिद्धान्त-रूप में रस की उद्भावना न होने के कारण उनके नाटक मनोभावों को उद्बुद्धमात्र और बुद्धिगोचर ही रख देते हैं, रस-रूपता में नहीं पहुँचाते। यही हाल शेक्सपीयर के नाटकों का भी है, वस्तुतः पाश्चात्य देशों का कला का आदर्श ही चरित्रचित्रण और जीवन की आलोचनामात्र होता है, जब कि भारतीय आदर्श होता है रसास्वाद—हृदय की एक विचित्र आनन्दानुभूति। इसी लिए हमारे यहाँ रस को काव्य की आत्मा कहा गया है।

अब हम भास और शेक्सपीयर के मध्य वैषम्य पर भी संक्षेप में थोड़ा सा विचार करना चाहते हैं। हम संकेत कर आए हैं कि नाटक का लक्ष्य कथावस्तु को बिना इधर-उधर भटके सीधी राह लक्ष्य-बिन्दु पर पहुँचना होता है। इस

दृष्टि से शेक्सपीयर के नाटकों को आकलन करें, तो उनमें कितने ही ऐसी गौण दृश्य है जहाँ कथा-वस्तु रुक-रुक कर सरकती है। कितने ही स्थल लम्बे-लम्बे भाषणों, संवादों और कवित्व भार से दबे हुए हैं किन्तु भास के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं। उनके नाटकों का प्रत्येक शब्द और वाक्य कथा-वस्तु को लक्ष्य-बिन्दु तक सरकाने में पूरी पूरी प्रयोजनीयता रखता है। इस दृष्टि से भास शेक्स-पीयर से आगे बढ़े हुए हैं।

अभिषेक नाटक का संक्षिप्त कथानक। प्रथम अंक—पत्नी छीनकर बाली द्वारा निर्वासित सुग्रीव की राम से भेंट होती है और दोनों परस्पर सहायता हेतु वचनबद्ध हो जाते हैं। राम द्वारा सात साल वृक्षों को एक ही बाण से बींधने पर सुग्रीव पूरा आश्वस्त हो जाता है कि वे वाली को अवश्य मार देंगे। तदनन्तर राम लक्ष्मण को साथ लिये सुग्रीव हनूमान्-सहित बाली से लड़ने किष्किन्धा पहुँच जाता है और भाई को ललकारने लग जाता है। तारा के रोकने पर भी वाली क्यों चुप रहता? वह भी युद्धार्थ निकल आता है और छिपकर राम द्वारा एक ही बाण से मार दिया जाता है। बाण पर राम-नाम अंकित देखकर बाली राम को पूछता है कि 'धर्मात्मा होकर आपने किस अपराध से मुझे मारा?' 'तुमने छोटे भाई की पत्नी के साथ अभिगमन किया है, इस अपराध से मारा' राम के इस उत्तर से बाली निरुत्तर हो जाता है। वह राम से क्षमा मांगकर एवं अपने पुत्र अंगद और कुलक्रमागत हेममाला सुग्रीव को सौंपकर सदा के लिये आँखें मीच लेता है। राम लक्ष्मण को सुग्रीव का राज्याभिषेक करने की आज्ञा देते हैं।

द्वितीय अंक-- सीता के अन्वेषण हेतु सुग्रीव सभी दिशाओं में अपने सेना-नियों को भेजता है। हनूमान् सहित अंगद के नेतृत्व में दक्षिण दिशा में गया हुआ सैन्यदल समुद्र-तट पर पहुँच जाता है। सम्पाति से रावण द्वारा सीता-हरण का पता लगाने पर हनूमान् समुद्र लाँघकर लंका पहुँच जाते हैं। वे सारे घाट-बाट छान मारते हैं, पर सीता को नहीं पाते हैं। अन्त में प्रमदवन में प्रविष्ट हो अशोक-वनिका में वे सीता को देख लेते हैं। इतने में रात के समय परिजन-सहित रावण आ पहुँचता है। हनूमान् अशोक वृक्ष के खोखर में छिप जाते हैं और देखते रहते हैं कि किस तरह रावण सीता को प्रलोभन देता है कि वह राम

का ध्यान छोड़ उससे प्रेम कर ले। इसी सिलसिले में सुबह हो जाती है और रावण स्नानार्थ चला जाता है। इतने में हनूमान् खोखर में से उतरकर सीता को अपना परिचय देते हैं। आरम्भ में सीता का उन पर सन्देह होता है, किन्तु हनूमान् द्वारा सुग्रीव और राम की मैत्री का वृत्तान्त सुनाने पर उन्हें विश्वास हो जाता है कि वह आर्यपुत्र का ही दूत है। उन्हें राम द्वारा शीघ्र ही उन्मुक्त किये जाने का आश्वासन देकर हनूमान् लंका में अपने आगमन के प्रमाण रूप में रावण का सारा प्रमदवन नष्ट-ध्वस्त कर देते हैं।

तृतीय अंक—प्रेमदवन के विध्वंस का समाचार रावण के पास पहुँचता है। वह वानर को पकड़ने हेतु सैनिकों और फिर पुत्र अक्षय को भेजता है। हनूमान् द्वारा उन सबके मार दिये जाने पर अन्त मे स्वयं इन्द्रजित् आता है और उन्हें बांधकर पिता के आगे पेश कर देता है। रावण के पूछने पर हनूमान् अपना परिचय देते हैं और फटकारते हुए उसे राम का सन्देश देते हैं कि वह शीघ्र सीता को लौटा दे, अन्यथा उसकी खैर नहीं। रावण क्रुद्ध हो उठता है और हनूमान् को मार डालने की आज्ञा दे देता है, किन्तु विभीषण के यह कहने पर कि दूत अवध्य हुआ करता है वह हनूमान् की पूँछ पर आग लगाकर लंका से बाहर कर देने की आज्ञा दे देता है। इसके बाद राम की वीरता का परिचय देते हुए विभीषण भाई को समझाते हैं कि यदि वे अपने को विनाश से बचाना चाहते हैं तो वे राम की पत्नी को लौटा दें, किन्तु रावण क्यों मानता? वह शत्रु का पक्ष ग्रहण करने के अपराध में विभीषण को देश से निकाल दिये जाने की आज्ञा दे देता है। विभीषण राम की शरण लेने चल पड़ते हैं।

चतुर्थ अंक—हनूमान् द्वारा सीता का पता लगाकर वापस आते ही लंका पर चढ़ाई के लिए सेना को तय्यार हो जाने की आज्ञा दे दी जाती है। उसे साथ लेकर राम समुद्र-तट पर पहुँचते हैं, किन्तु आगे समुद्र पार करने की समस्या खड़ी हो जाती है। इतने में आकाश से विभीषण उतरते हुए दिखलाई पड़ते हैं। सब घबरा उठते हैं कि यह कौन-सा राक्षस आ रहा है। किन्तु हनूमान् विभीषण को पहचान लेते हैं। लक्ष्मण विभीषण की अगवानी करके उन्हें सम्मान के साथ राम के पास लिवा लाते हैं। समुद्र पार करने के प्रश्न पर विभीषण राम को सलाह देते हैं। कि वे दिव्यास्त्र फेंक कर उसे सुखा दें।

'ठीक बात है' राम के ऐसा सोचते ही वरुणदेव स्वयं उपस्थित हो जाते हैं और राम से क्षमा मांगते हुए जल के बीच एक गलियारा बनाकर उन्हें सेना-सहित पार जाने देते हैं। समुद्र पार कर लंका में राम सुवेल पर्वत पर अपना शिविर स्थापित करते हैं। सैनिकों की गिनती होने पर दो अपरिचित वानर अधिक निकलते हैं, जिन्हें नील राम के आगे पेश कर देता है। विभीषण झट उन्हें पहचान लेते हैं कि वे तो वानर-रूप में रावण के परम विश्वस्त शुक और सारण नाम के दो मन्त्री हैं और राम से उन्हें कठोर दण्ड देने का अनुरोध करते हैं, किन्तु अपना सारा शिविर दिखा कर और रावण को यह सन्देश देने को कहकर कि तुम्हारा युद्धातिथि मैं आ गया हूँ राम उन दोनों को छोड़ देने की आज्ञा दे देते हैं।

पंचम अंक—युद्ध छिड़ जाता है। काञ्चुकीय की सूचनानुसार रावण के बड़े-बड़े सेनानी तथा कुम्भकर्ण भी युद्ध में मार दिए जाते हैं और अब इन्द्रजित् भी युद्धार्थ चल पड़ा है। काञ्चुकीय विद्युज्जिह्व को राम और लक्ष्मण के कृत्रिम शिर लाने हेतु रावण की आज्ञा सुनाता है। इस बीच रावण दोबारा सीता के पास आकर प्रणय-निवेदन करता है। सीता उसे बुरी तरह फटकार ही रही थी कि इतने में विद्युज्जिह्व राम-लक्ष्मण के शिर लाकर रावण सौंप देता है कि ये दोनों भाई इन्द्रजित् द्वारा मार दिये गये हैं। शिरों को देखकर सीता को मूर्छा आ जाती है। सचेत होते ही वह रावण से याचना करने लगती है कि अपनी तलवार से मेरा भी शिर काट दे। इतने में एक राक्षस समाचार लाता है कि इन्द्रजित् युद्ध में मार दिया गया है। सुनते ही रावण मूर्छित हो जाता है और होश में आते ही पुत्र-शोक में विविध विलाप करने लगता है। सीता पर क्रोध से आग-बबूला बना हुआ वह उसे ही अपनी सारी विपत्तियों की जड़ समझकर मार डालना चाहता है, किन्तु उसी समय एक राक्षस उसे रोक देता है कि स्त्रीवध सर्वथा वर्जित है। तदनन्तर रावण रथ में चढ़कर स्वयं युद्ध हेतु चल पड़ता है।

षष्ठ अंक—राम और रावण के मध्य भीषण युद्ध आरम्भ हो जाता है। गगन में देव और विद्याधर-गण उसे देखने आ जाते हैं। तीन विद्याधर युद्ध का वर्णन करते हैं कि किस तरह दोनों ओर से बाणों की वर्षा हो रही है। रावण

को रथ में आरूढ़ और राम को पैदल ही लड़ते देख इन्द्र उनके लिए अपना रथ भेज देता है। अन्त में राम एक ब्रह्मास्त्र फेंककर रावण का काम तमाम कर देते हैं और उसके स्थान में विभीषण को लङ्का का राजा घोषित कर देते हैं। अशोक वाटिका से छूट कर सीता अपने पति से मिलने आती है, तो राम उससे मिलना यह कह कर अस्वीकार कर देते हैं कि वह रावण के महल में रही है और पवित्र इक्ष्वाकुवंश को कलंकित कर बैठी है। पति का अपने प्रति सन्देह जानकर सीता अपना सतीत्व प्रमाणित करने हेतु अग्निपरीक्षा देती है। अग्निदेव बिना कोई क्षति पहुँचाये उन्हें लेकर राम के पास आते हैं और उन्हें नारायण के रूप में संबोधित करते हुए निवेदन करते हैं—"भगवन् ! सीता देवी परम पवित्र है और तीनों लोकों को पवित्र करने वाली है। इन्हें आप मनुष्य-रूप में अवतीर्ण साक्षात् लक्ष्मी समझिए'। सब अचम्भित हो जाते हैं। राम कहते हैं— 'अग्निदेव ! मैं सीता की पवित्रता को पहले से ही जानता हूं। केवल लोगों को विश्वास दिलाने हेतु मैंने अग्निपरीक्षा ली है"। अग्निदेव ! विमान में स्वर्ग से पधारे राजा दशरथ तथा ऋषि-देव गणों की उपस्थिति में राम का राजतिलक करते हैं। इन्द्र की आज्ञानुसार भरत, शत्रुघ्न तथा अयोध्या की प्रजा को वहाँ उपस्थित हुआ देख राम परम प्रसन्न हो जाते हैं। इसके बाद भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

कथानक का स्रोत और उसमें परिवर्तन—अभिषेक नाटक का कथानक भास ने बाल्मीकि-रामायण के किष्किन्धा काण्ड, सुन्दर काण्ड और युद्ध काण्ड से लेकर उसे बड़े प्रभावोत्पादक और नये ढङ्ग से प्रेक्षकों के आगे रखा है। अधिकतर बातें रामायण के मूल में आई हुई हैं। उसमें साधारणतः कवि ने विशेष परिवर्तन नहीं किया है। हाँ, कहीं-कहीं नाटकीय दृष्टि से प्रेक्षकों में उत्सुकता और स्तम्भ—सस्पेन्स—उत्पन्न करने हेतु वह न्यूनाधिक परिवर्तन और नवीनता अवश्य ला दी है। (१)रामायण में बाली और सुग्रीव के मध्य हुए युद्ध में सुग्रीव को पहली बार बाली के हाथों बुरी तरह मार खाकर लहू-लुहान हो भाग जाना पड़ता है। वास्तव में दोनों भाइयों के स्वरूप में एक-जैसा होने के कारण राम विवेक नहीं कर सके कि कौन बाली है और कौन सुग्रीव, इसलिए मारें तो किसको मारें। बाद में चिह्नस्वरूप गजपुष्पी लता सुग्रीव के गले में

डालकर दोबारा उसे लड़ने भेजा। परन्तु भास ने बात ही बदल दी। सुग्रीव बाली की मार खाकर गिर पड़ता है और राम चुपचाप देखते रहते हैं। राम की इस उदासीनता पर प्रेक्षक स्तब्ध रह जाते हैं। स्वयं हनूमान् भी स्तब्ध होकर जब राम को शपथ की याद दिलाते हैं, तब जाकर वे—'हनूमान् ! अलमलं सम्भ्रमेण। एतदनुष्ठीयते' कहकर बाली पर बाण-प्रहार करते हैं।

इसके अतिरिक्त समुद्र-मंथन में बाली के योग का प्रसंग छेड़ कर भास उसकी बलशालिता को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावोत्पादक बना देते हैं। बाली द्वारा उठाए गये अपने प्रच्छन्न वध और राम द्वारा बाली पर लगाये अनुज-वधू के अभिमर्शन के आरोप पर भास द्वारा दिए गये पुष्ट तर्क पर बाली को कहना पड़ता है 'अनुत्तरा वयम्।'

(२) कथा-वस्तु में परस्पर विश्वास दिलाने हेतु हनूमान् द्वारा सीता को राम की अँगूठी और राम को सीता की चूड़ामणि के आदान-प्रदान की घटना को त्याग कर भास ने नयापन दिखाया है। कारण यह है कि भास द्वारा चित्रित सीता एक बड़ी समझदार महिला हैं। वह बातचीत से ही हनूमान् और उनके द्वारा कही बातों की विश्वसनीयता जाँच लेती है। अतः उन्हें अभिज्ञान की आवश्यकता ही नहीं होती। इसी तरह राम को बिना सीता की चूड़ामणि के हनूमान् की बातों पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं दिखाई देता, क्योंकि हनूमान् राम के विश्वासभाजन पहले ही बन चुके थे।

(३) भास ने तीसरा परिवर्तन राम द्वारा समुद्र पार करने की घटना में किया है। प्रचलित कथानुसार नल-नील द्वारा समुद्र पर बनाए पुल से सेना सहित राम समुद्र पार करते हैं परन्तु भास ने समुद्र पार करने का दूसरा ही प्रकार बताया है : वह है वरुण द्वारा समुद्र का जल दो भागों में विभक्त करके बीच में सूखी जमीन में से होकर जाने के लिए गलियारा का निर्माण। प्रेक्षकों को स्तम्भ (सस्पेन्स) में रखने हेतु यह निस्सन्देह भास का नयापन है, किन्तु अभिनेयता की दृष्टि से भास भूल गए कि रंगमञ्च पर इस घटना को दिखाना संभव हो सकेगा भी या नहीं।

(४) भास का कथा-वस्तु में अन्तिम परिवर्तन राम द्वारा रावण-वध के बाद समुद्र के किनारे पर ही अग्निदेव द्वारा राजा दशरथ और ऋषि-देवगणों की

उपस्थिति में राम का राज्याभिषेक है। अभिषेक महान् हर्ष का क्षण हुआ करता है। इसमें भरत, शत्रुघ्न और अयोध्या की प्रजा के सम्मिलित हुए बिना हर्ष अधूरा रहता है, इसलिए भास उन्हें भी वहाँ लाकर हर्ष को परिपूर्णता दे देते हैं। हमारे विचार से भास ने यह परिवर्तन संक्षेप की दृष्टि से किया होगा। वैसे रामायण के अनुसार रावण को मार कर राम उसके पुष्पक विमान में चढ़कर विभीषण सुग्रीव, हनुमान् आदि सहित अयोध्या आते हैं। बीच में भरत-मिलाप होता है। तदनन्तर अयोध्या में राम का राज-तिलक सम्पन्न होता है।

नाटक का नामकरण—अपनी उपादेयता में नाटक का नाम विशेष महत्व रखता है। नाटक का ऐसा नाम-करण होना चाहिए जिससे नाटक की कथा-वस्तु का चित्र खिंच जाय। इसी बात को ध्यान में रखकर भास ने अविमारक और चारुदत्त इन दो नाटकों को छोड़ कर शेष सभी के नाम उनकी मुख्य घटना के आधार पर ही रखे हैं। इस तरह इनके नाम घटनाप्रधान हैं, जिससे नाम पढ़ते ही प्रेक्षकों अथवा पाठकों में उसे देखने या पढ़ने की उत्सुकता और अभिरुचि उत्पन्न हो जाय। 'स्वप्नवासवदत्त' में मुख्य घटना उदयन को स्वप्न में वासवदत्ता का दिखलाई देना 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' में मंत्री यौगन्धरायण की अपने स्वामी वत्सराज उदयन को प्रद्योत के बन्धन से उन्मुक्त करने की प्रतिज्ञा करना एवं 'पञ्चरात्र' में दुर्योधन द्वारा पांच रात्रियों में पाण्डवों का पता लगने पर उन्हें राज्य का आधा भाग दे देना। इसी तरह ऊरुभंग, कर्णभार, प्रतिमा आदि नाटकों के नाम भी घटनाप्रधान ही हैं। प्रस्तुत नाटक का 'अभिषेक' नाम भी भास ने इसमें प्रतिपादित अभिषेक की मुख्य घटना को लेकर ही रखा है। इसमें अभिषेक एक नहीं, तीन हैं। प्रारम्भ में बालीवध के बाद राम द्वारा लक्ष्मण को दी जाने वाली—'लक्ष्मण ! सुग्रीवस्याभिषेकः क्रियताम्' इस आज्ञा अनुसार लक्ष्मण द्वारा सुग्रीव का अभिषेक होता है। मध्य में रावण द्वारा लंका से निर्वासित विभीषण के राम-शिविर में पहुँचने पर राम की इस आज्ञा से कि ''अद्य प्रभृति मद्वचनात् लंकेश्वरो भव' विभीषण का वाचनिक अभिषेक होता है। अन्त में रावण-वध के बाद अग्निदेव द्वारा राजा दशरथ, ऋषि-देवगण, और भरत, शत्रुघ्न एवं अयोध्या की प्रजा की उपस्थिति में राम का अभिषेक होता है। इसलिए नाटक में कथावस्तु के अभिषेक-प्रधान होने के कारण इसका 'अभिषेक' नाम अर्थवान् है।

नाटक की समीक्षा—अन्य नाटकों की तरह भास का यह अभिषेक नाटक भी पौराणिक नाटक है। इसके प्रणयन में कवि को प्रणुदन वाल्मीकि-रामायण से मिला है। उसी की तरह इसकी भाषा सरल-सुबोध, स्वाभाविक है। च्युत-संस्कृति-पूर्ण, अनुष्टुप्छन्दबहुल, "च-तु-हि-कुक्षिम्भरा" शैली भी वैसी-जैसी ही है। अन्य नाटकों की अपेक्षा इसमें पद्यों का प्राचुर्य है। अन्तिम षष्ठ अंक तो प्रायः पद्यमय है। जिसमें कुल मिलाकर इसमें ३५ पद्य हैं, अतएव वह किसी भव्य काव्य का एक सर्ग जैसा है। कथा-वस्तु रामायण के आधार पर होने पर भी भास ने उसे नाटकीय रूप देने में सराहनीय कौशल दिखाया है। नाटकोचित कथोपकथन, और उसके छोटे-छोटे वाक्य कार्य-व्यापार को तेजी से बिना किसी घुमाव-फिराव के सीधा फलागम की ओर ले जाते हैं। बीच में न कहीं किसी प्रकार की जटिलता है न विघ्न-बाधा अथवा व्यर्थ का वाग्विस्तार। प्रेक्षकों में उत्सुकता और स्तम्भ (सस्पेन्स) बनाये रखने के लिए मूल-कथानक में परिवर्तन करके जो-जो नवीनताएँ कवि ने उद्भावित की हैं उनका उल्लेख हम पीछे कर आये हैं। चरित्र सभी पात्रों का प्रायः अच्छा उभरा है। किन्तु कल्पना का अभाव अन्य नाटकों जैसा इसमें भी है। साधारणतः वैदर्भी शैली के होने पर भी कहीं-कहीं भास यहां परवर्ती श्रेण्य कलाकारों की तरह अलंकृत शैली भी अपना गये हैं, जिसमें कलाकार का रुझान प्रयाससाध्यता, कृत्रिमता, दीर्घ समास और अलंकारों की ओर रहता है एवं प्रतिपाद्य विषय की अपेक्षा प्रतिपादन-प्रकार को महत्त्व दिया जाता है। उदाहरण के लिए सूत्रधार का दीर्घ समास और अनुप्रास वाला पहला मंगल-श्लोक ही देखिए—

> यो गाधिपुत्र-मख-विघ्नकराभिहन्ता,
> युद्धे विराध-खर-दूषण-वीर्यहन्ता।
> दर्पोद्यतोल्वण-कवन्ध-कपीन्द्र-हन्ता,
> पायात् स वो निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता।

चारों पादों में अन्तिम 'हन्ता' शब्द अन्त्यानुप्रास की छटा दिखा रहा है। यही बात प्रथम अंक के सातवें श्लोक में भी है—

> संप्राप्ता हरिवर-बाहु-सम्प्रगुप्ता
> किष्किन्धा तव नृप ! बाहु-सम्प्रगुप्ता।

श्लेषानुप्राणित रूपकालंकार भी देख—

तोर्त्वा चैवमनल्प-सत्त्व-चरितं दोर्भ्यां प्रतिज्ञार्णवम् । (६।१९)

प्रतिज्ञा के पक्ष में—'अनल्पानि सत्त्वस्य = बलस्य चरितानि = कर्माणि यस्याम् (जिसमें वीरता के बहुत से काम हैं) और अर्णव के पक्ष में—अनल्पानां सत्त्वानां = जीवानां चरितं = सञ्चरणं यस्मिन् (जिसमें बहुत से जानवर घूम रहे हैं)।

दीर्घ समासों के लिए तो कितने ही अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं, जैसे—

गर्भागार-विनिष्कुटेषु बहुशः शालाविमानादिषु
स्नानागार-निशाचरेन्द्र-भवन-प्रासाद-हर्म्येषु च
पानागार-निशान्त-देश विवरेष्वाक्रान्तवानस्म्यहं । (२।४)

पद्य ही नहीं, गद्य में भी कवि ने कहीं-कहीं अलंकृत शैली का प्रयोग कर रखा है, जैसे—

एष खलु सीतापहरणजनितसन्तापस्य रघुकुलदीपस्य सर्वलोकनयनाभिरामस्य रामस्य च···सुविपुलग्रीवस्य सुग्रीवस्य च···सर्ववानराधिपतिं" हेममालिनं वालिनं हन्तुं समुद्योगः" (प्र० अं०) "भो भो रजनीचरवीराः । समरमुखनिरस्तनिकुम्भकुम्भकर्णेन्द्रजिद्विकलबलजलधिजनितभयचकितविमुखाः ! चपलपलायनमनुचितमविरतममरसमराणि जितवताम्···विश्वविजयविख्यातविशदबाहुशालिनि" । (पं० अं०)

भास ने यह अलंकृत शैली अपने अन्य नाटकों में भी कहीं-कहीं प्रयुक्त कर रखी है। किन्तु यह अपवाद-स्वरूप है। साधारणतः इनकी शैली सरल-सुबोध और स्वाभाविक ही है।

नाटक के नायक राम धीरोदात्त नायक हैं, जिन्हें भास ने भगवान विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया है। प्रतिनायक रावण है जो धीरोद्धत है। नायिका सीता हैं। मुख्य भाव वीरता है। गौणरूप से करुणा, भय और विस्मय भी अनुगत हैं। रावण का सीता के प्रति एकपक्षीय प्रेम शृंगाराभास की कोटि में आता है। कहीं-कहीं रंगमञ्चीय त्रुटियों के रहते

हुए भी संविधान (टेक्नीक) की दृष्टि से यह नाटक अच्छा है। यद्यपि अपने सजातीय कथानक वाले 'प्रतिमा' नाटक से निम्न कोटि का ही है।

चरित्र-चित्रण—राम नाटक के नायक हैं। वे एक वीर पुरुष हैं—'उदोर्ण-सत्त्व' और 'दृढ़व्रत'। सुग्रीव को अपनी शक्ति का प्रमाण देने हेतु वे एक ही बाण से सात साल वृक्षों का भेदन कर देते हैं। उनका एक ही बाण महाबली वाली को धराशायी कर देता है। आकाश से उतरते हुए विभीषण को देख सभी वानर और स्वयं वानरराज सुग्रीव भी भय-भीत हो उठता है कि कहीं यह राक्षस कोई अनर्थ न कर बैठे। हनुमान् भी राम की रक्षा हेतु वानर-वीरों को सतर्क कर देते हैं। परन्तु राम जरा भी विचलित नहीं होते और हनुमान् को कहते हैं—'राक्षस इति हनूमन् ! अलमलं संभ्रमेण' अर्थात् हनुमान् ! राक्षस आगया, तो क्या हो गया ? घबराने की कोई बात नहीं। यही बात रावण के शुक और सारण नामक दो राक्षस-गुप्तचरों के सम्बन्ध में भी है। विभीषण उन्हें यथोचित दण्ड देने के लिए राम से अनुरोध करते हैं, किन्तु राम का वीरोचित उत्तर देखिए—'अनयोः शासनादेव न मे वृद्धिर्भविष्यति अर्थात् 'इन्हें दण्ड देकर मेरी कोई वृद्धि नहीं हो जाएगी।' राम तत्काल उन्हें छोड़ देने की आज्ञा दे देते हैं। यह कितनी बड़ी निर्भीकता है उनके चरित्र की। समुद्र लंका जाने का मार्ग रोके हुए है। दिव्यास्त्र द्वारा उसे सुखा डालने के उनके संकल्पमात्र की देरी होती है कि तत्काल वरुणदेव हाथ जोड़कर उनके आगे खड़ा हो जाता है और पार जाने हेतु उनके लिए बीच-ही-बीच गलियारा का निर्माण कर देता है। रावण के भीषण बाणों के टुकड़े-टुकड़े करके राम महाबलशाली राक्षस-राज रावण का अपने एक ही ब्रह्मास्त्र से काम-तमाम कर देते हैं।

राम निस्सन्देह युद्धवीर हैं, परन्तु वे न युद्ध के लिए युद्ध करते हैं, न विजय के लिए विजय। वे जन-मंगल, धर्म और मर्यादा-पालन हेतु युद्ध करते हैं। वाली ने राम का क्या बिगाड़ा था ? कुछ भी नहीं। फिर भी वे उसका वध करते हैं, क्यों कि उसने अपनी अनुज-वधू रुमा का अभि-मर्शन करके धर्म की मर्यादा भंग की है। रावण को उसके गुप्तचरों के हाथ भी तो वे यही सन्देश भेजते हैं—'मम दारापहारेण स्वयं ग्राहित-विग्रहः'

अर्थात् 'मेरी पत्नी का अपहरण करके तूने स्वयं मुझे विग्रह (युद्ध) का निमन्त्रण दिया है, सो मैं आ गया हूँ।' राम में राज्य की कोई निजी महत्त्वाकांक्षा नहीं रहती है। राज्य-विस्तार चाहते, तो रावण का वध करने के बाद उसके स्थान में उसी के भाई विभीषण का क्यों अभिषेक करते? लंका का राज्य अयोध्या-राज्य से मिला कर स्वयं को लंकाधिपति भी घोषित कर देते, लेकिन नहीं। दूसरे का राज्य हथियाना धर्म-विरुद्ध है। इस तरह राम युद्धवीर के साथ-साथ धर्मवीर भी हैं।

धर्मवीर सदा दृढ़व्रत हुआ करता है। ज्येष्ठ भाई के अत्याचार से परिपीड़ित सुग्रीव राम की शरण में आ जाता है, तो शरणागत की रक्षा और सहायता करना राम अपना धर्म समझते हैं। यही बात हम विभीषण के सम्बन्ध में भी देखते हैं। उसी के शब्दों में राम 'दृष्टधर्मार्थतत्त्वोऽयं साधुः संश्रित-वत्सलः' अर्थात् धर्मार्थ-तत्व के द्रष्टा, साधु और शरणागतवत्सल हैं। हनुमान् से यह सुनते ही कि विभीषण शरण में आया हुआ है, राम तत्काल लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं—'सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः' यद्यपि सुग्रीव अनुरोध करता ही रहा कि राक्षस मायावी हुआ करते हैं, इसलिए सोच-विचार कर ही आने दीजिए। यह है राम की दृढ़ धर्म-निष्ठा और धर्मवीरता।

राम धीरोदात्त नायक होने के कारण बड़े गम्भीर स्वभाव के हैं। उनके हृदय की थाह कौन ले सकता है? रावण-वध के बाद प्रसन्नता से फूली न समाती पति से मिलने आती हुई सीता को सुनकर राम उसे उन्हें अपना मुँह दिखाने से तत्काल रोक देते हैं इस विचार से कि वह रावण के घर रही है, इसलिए वह पवित्र इक्ष्वाकुवंश के लिए कलंक-रूप है। वे सीता की अग्निपरीक्षा लेते हैं और स्वयं प्रकट होकर अग्निदेव द्वारा सब के सामने उन्हें पवित्र प्रमाणित कर देने पर ही स्वीकार करते हैं। व्यक्तिगत रूप से सीता की पवित्रता में राम का पूरा विश्वास रहता है, फिर भी लोगों को विश्वास दिलाने हेतु पत्नी की अग्निपरीक्षा लेकर अग्निदेव को यह उत्तर देते हैं—

जानताऽपि च वैदेह्याः शुचितां धूमकेतन !
प्रत्ययार्थं हि लोकानामेवमेव मया कृतम् ॥

वे अपने उदात्त आचरण द्वारा लोगों के लिए आदर्श स्थापित करने वाले महापुरुष हैं, अग्निदेव के शब्दों में 'पुरुषोत्तम' हैं और वरुणदेव के अनुसार 'जगत्-कल्याण हेतु नर-रूप में अवतरित नारायण हैं।'

रावण—रावण नाटक का प्रतिनायक है और वैधानिक दृष्टि से 'धीरोद्धत' है, जिसे साहित्यिकों ने छली-कपटी, अभिमान और दर्प से भरा, आत्मश्लाघी और प्रचण्ड स्वभाव का बताया है। रावण में ये सभी बातें मिलती हैं। वह स्त्रीलंपट है और छल-बल से सीता को हर लाता है और छल-बल से ही उसे अपनी ओर आकृष्ट भी करना चाहता है। वह अनुनय-विनय करता है, अपनी वीरता का बखान करता है कि मैं 'त्रैलोक्यविजयी' हूँ, मेरे आगे युद्ध में कोई भी नहीं टिक सकता है; धन-सम्पत्ति, विशाल राज्यलक्ष्मी का प्रलोभन देता है और डराता है, धमकाता है। जब सीता सभी तरह उसके प्रणय-निवेदन को ठुकरा देती है, तो अन्ततोगत्वा वह अपनी आसुरी माया को प्रयोग में लाता है। राम-लक्ष्मण के कृत्रिम सिर बनवा कर मँगाता है और उन्हें सीता को दिखाते हुए कहता है कि ये हैं उन दोनों भाइयों सिर, जिन्हें इन्द्रजित् ने युद्ध में मार गिराया है, देखूँ अब कौन तुम्हें छुड़ाता है, अब भी मान जाओ'। अकस्मात् उसी क्षण राम-लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित् के मारे जाने का समाचार उसे मिलता है, तो क्रोध से आग-बबूला हो उठता है और सीता को काटकर उसकी आँतों की माला सिर में पहन बदला चुकाना चाहता है। देखिए, उसमें कितना प्रचंड क्रोध और क्रूरता भरी रहती है। रावण सही अर्थ में पक्का राक्षस है।

रावण अभिमान और दर्प का पुतला है। उसे पूर्ण विश्वास है कि 'त्रैलोक्य-विजयी' होने के कारण वह हर किसी को पल भर में नष्ट-ध्वस्त कर सकता है। हनुमान् और विभीषण द्वारा वर्णित राम के शौर्य-बल का उपहास उड़ाता है, अपने को 'लंबी सटाओं वाला सिंह' और राम को 'मृग' अथवा अपने को 'सुमहान् गज' और राम को 'शृंगाल' कहता हुआ 'गतायुष' बोल देता है। प्रमदवन के विध्वंस में देवताओं की शरारत समझ कर उन्हें धूल में मिला देने की डींग हाँकने लगता है। इन्द्रजित् के वध के बाद रथारूढ़ हो

सीता को यह धमकी देता हुआ युद्धार्थ चल पड़ता है कि 'आज अपने तीक्ष्ण बाणों से राम की छाती को छलनी बना देता हूँ'। कितना अभिमानी और आत्मश्लाघी है रावण! वह किसी से नहीं डरता। थोड़ा-सा डर उसे यदि है, तो कैलाश-आक्रमण के समय नन्दि द्वारा दिये गये शाप का ही कि 'वानर ही तुम्हारे राक्षसकुल का विध्वंस करेंगे' अन्यथा वह बड़ा निर्भीक है।

अभिमान और दर्प के मूल में सदा अज्ञान (अथवा मूर्खता) रहती है। काम-वासना ने रावण की मति भ्रष्ट कर रखी है। राम जैसे साधु पुरुष की सती-साध्वी पत्नी सीता को हर लाकर बलात् अपनी पत्नी बनाना चाहना मूर्खता की हद है। भाई विभीषण कितना ही समझाता है कि सीता राम को लौटा दीजिये, परन्तु मूर्ख अनसुनी कर देता है; उल्टा उसे शत्रुपक्षीय समझकर देश से निर्वासित कर देता है। बड़े-बड़े सेनानी खो देता है, भाई-बन्धु खो देता है और अन्त में महाबली पुत्र इन्द्रजित् भी खो बैठता है, तिस पर भी दुष्ट नहीं चेतता। ऐसी 'विप्रतिपत्ति'—दुर्मति किसी को भी डुबो देती है, रावण ही को क्या?

उक्त दुर्गुणों के होते हुये भी ब्राह्मण होने के नाते रावण के मन में कभी-कभी सद्विचार उठ ही जाते हैं। हनुमान् की धृष्टता पर क्रुद्ध हो उन्हें मार डालने को आज्ञा देता-देता रुक जाता है इस विचार से कि 'दूतवधः खलु वचनीयः' अर्थात् दूत-वध निन्दनीय है। शत्रु का पक्ष लेने वाले अपने भाई विभीषण को चाहता तो मरवा सकता था, क्योंकि राजद्रोह में मृत्युदंड देते ही हैं, किन्तु वह उसे देश-निकाला मात्र दण्ड देता है। सीता को अपनी सारी विपत्तियों की जड़ समझकर उसे मार डालने हेतु उठाए हुए खड्ग को राक्षस-भृत्य के यह कहने पर कि 'अवश्य स्त्रीवधो न कर्तव्यः' रोक देता है। रावण एक अच्छा शासक भी है। उसके शासकत्व में लंका पुरी बड़ी उन्नति पर है। हनुमान् के शब्दों में "वहाँ का तोरण सोने का बना हुआ है, स्थान-स्थान में मणियों और विद्रुमों से जड़ित वृक्ष शोभित हो रहे हैं; विचित्र ढंग के बने हुए सात-सात मंजिलों वाले महल चमक रहे हैं। सारी लंका इन्द्रपुरी-जैसी दिखाई देती है।" रावण के महल तो और भी अधिक समृद्धावस्था में हैं। उसके प्रमदवन को भी देख कर हनुमान् भौचक्के रह जाते हैं। लंका की सारी प्रजा प्रसन्न है।

रावण एक दृढ़-निश्चयी वीर भी है। वह रण-क्षेत्र में किसी को भी परास्त कर देने की अपनी क्षमता में पूरा विश्वास रखता है। रण में भाई-बन्धुओं के मृत्यु-ग्रास बन जाने पर भी उसका उत्साह-भंग नहीं होता। लंका की राजलक्ष्मी जाती हुई देखकर उसे ललकारने लगता है–'तू जा कहाँ रही है? बल से ही मैंने कुबेर से छीना था और बल से ही अब राम को मार गिराकर तुझे पकड़ लूँगा'। वह युद्ध से घबराता नहीं है। एक निर्भीक वीर योद्धा की तरह राम के साथ युद्ध हेतु रण-क्षेत्र में उतर जाता है और खूब युद्ध करता-करता वीरगति को प्राप्त हो जाता है। किन्तु करम के आगे घुटने नहीं टेकता। वह पूरा युद्धवीर है।

लक्ष्मण—नाटक में लक्ष्मण का सम्बन्ध यद्यपि अन्त तक बना हुआ है, तथापि उनका चरित्र कवि के हाथों विशेष रूप से उभरने नहीं पाया है। उनकी राम पर अपार श्रद्धा-भक्ति है। अपनी ही तरह वे किसी भी भाई की अपने बड़े भाई के प्रति आदर-सम्मान की भावना रखने के समर्थक हैं और इसीलिए वे सुग्रीव के सम्बन्ध में कहते हैं कि वह सज्जनता का बर्ताव छोड़कर ('सतां विहाय वृत्तम्') बड़े भाई वाली से लड़ने जा रहा है। लक्ष्मण राम के पक्के आज्ञानुवर्ती हैं। भाई की आज्ञा पर वे ननु-नच करना जानते ही नहीं। शत्रु का भाई होते हुए भी विभीषण के शिविर में पहुँचते ही राम उन्हें आज्ञा देते हैं–'वत्स लक्ष्मण ! सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः' लक्ष्मण आँख मीचकर–'यदाज्ञापयति आर्यः' कहकर तत्काल विभीषण को आदर-सम्मान के साथ लिवा लाते हैं, इसी तरह रावण-वध के बाद प्रसन्न हुई सीता पति से मिलने आ रही होती है कि राम लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं कि उस कलंकिनी को मेरे पास आने से रोक दो और पहले उसकी अग्नि-परीक्षा लो कि वह पवित्र है या नहीं। लक्ष्मण आज्ञा सुनते ही स्तब्ध रह जाते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि सीता पवित्र और निष्कलंक हैं। उनकी अग्नि-परीक्षा कैसी? वे मन में तर्क करते हैं और हनुमान् से परामर्श करते हैं किन्तु अन्त में भावना पर कर्तव्य विजय पाता है और लक्ष्मण के मुँह से बरबस निकल पड़ता है –'विफलो तर्कः। अथवा वयमार्यस्याभिप्रायमनुवर्तितारः'।

विभीषण—रावण का छोटा भाई विभीषण राक्षस-कुल में उत्पन्न हुआ भी वैसा ही साधु और धर्मात्मा व्यक्ति है जैसे राक्षस-कुल में उत्पन्न प्रह्लाद। उसमें राक्षसी स्वभाव की कोई भी बात हम नहीं पाते। वह बिलकुल मानवी

विचार-धारा का है। सत्य, न्याय और धर्म का प्रबल समर्थक है। प्रमद-वन नष्ट करने के कारण रावण हनुमान् को मृत्यु-दण्ड देना चाहता है, किन्तु यह विभीषण ही है जो भाई को 'सर्वापराधेष्ववध्याः खलु दूताः' कहकर रोक देता है। इतना ही नहीं; वह भाई को सलाह देता है कि वह अपहरण करके लाई हुई राम की पत्नी लौटा दें। धोखा देकर परस्त्री-हरण वह न्याय और धर्म के विरुद्ध समझता है। इस तरह भाई-भाई में बड़ा सिद्धान्त-भेद रहता है। रावण शत्रुपक्षीय समझकर उसे देश से निर्वासित कर देता है। वह सहर्ष देश-निर्वासित स्वीकार कर लेता है लेकिन अपने न्याय और धर्म के सिद्धान्त का बलिदान नहीं करता। वह सत्य और धर्म के अवतार को शरण चला जाता है और उनका परम मित्र बन जाता है। मित्र की तरह समय-समय पर उन्हें अच्छा ही परामर्श देता रहता है। समुद्र राम का मार्ग रोके हुए है। वे विभीषण को पूछते हैं कि अब क्या करना चाहिए ? वह अन्यायी रावण को संरक्षण देने वाले समुद्र के विरुद्ध दिव्यास्त्रों के प्रयोग की सलाह देता है और वास्तव में वह ठीक ही निकलता है क्योंकि दिव्यास्त्र-प्रयोग करने के संकल्प-मात्र से राम को समुद्र तत्काल मार्ग दे देता है। विभीषण सही बात कहने में बिलकुल नहीं झिझकता। रावण-वध के बाद राम सीता को रावण के घर रहने के कारण दूषित समझते हुए स्वीकार नहीं करते हैं, तभी विभीषण राम को सीता की पवित्रता का आश्वासन देता है और उनसे अनुरोध करता है कि उसे स्वीकार किया जाय। विभीषण दयालु और संवेदनशील व्यक्ति है। उसे लंका की प्रजा से बड़ा अनुराग है और दुष्ट भाई के हाथों नष्ट होते हुए राक्षस-कुल को बचाने हेतु ही वह राम का आश्रय लेता है, व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु नहीं। उसके साधु स्वभाव के कारण ही राम उसे आरंभ में कह बैठते हैं—'अद्यप्रभृति लङ्केश्वरो भव'।

बाली—नाटक की कथावस्तु के साथ बाली का सम्बन्ध यद्यपि प्रथम अंक तक ही सीमित रहता है, तथापि वह अपने ऊर्जस्वल व्यक्तित्व से प्रेक्षकों को बड़ा प्रभावित कर देता है। वह किष्किन्धा का राजा है और महाबली है। समुद्र-मंथन के समय वह अपने अतुल बल से पहले भी कभी सभी देवों और दानवों को अचम्भित किये हुए है यहाँ सुग्रीव की गर्जना सुनकर पत्नी द्वारा

रा के जाने पर भी उसके साथ युद्ध करता हुआ—राम के शब्दों में—सभी कुछ फूंक डालने वाले प्रलयानल की तरह दिखाई देता है।' सुग्रीव को कहे हुए उसके ये शब्द कि 'मेरी दृष्टि के सामने आते ही तू जीता नहीं जा सकता है भले ही इन्द्र और विष्णु तेरी रक्षा हेतु क्यों न आ जायँ, उसके पराक्रम का चित्र खींच देते हैं, राम एक ही बाण से उसे मारते तो अवश्य हैं किन्तु छिपकर मारते हैं, आमने-सामने होकर नहीं जो राम के उज्ज्वल यश-शशिपर एक धब्बा ही है।

वानर होते हुए बाली एक समझदार व्यक्ति है। राम के साथ हुआ उसका विवाद उसकी तर्क-शक्ति का परिचय दे देता है। उसे भले-बुरे की पूरी पहचान है। वह राम द्वारा किया हुआ अपना प्रच्छन्न वध एक अधर्म-कृत्य बताता हुआ उन्हें खूब फटकारता है, किन्तु बाद में राम के युक्ति-युक्त उत्तर से सन्तुष्ट हो—'अनुत्तरा वयम्' कहता हुआ एक साधु पुरुष की तरह क्षमा मांग लेता है और अपने अपराध हेतु दिया हुआ दण्ड सहर्ष स्वीकार कर लेता है। अन्त में प्राण छोड़ने से पूर्व वह सुग्रीव को भी क्षमा कर देता है और अपना पुत्र अङ्गद संरक्षण हेतु उसे सौंपता हुआ एवं कुलक्रमागत हेममाला भी देता हुआ अपनी सदाशयता का परिचय दे देता है।

सुग्रीव—वैसे तो आरम्भ से लेकर अन्त तक कथानक से सुग्रीव का सम्बन्ध बना रहता है, किन्तु उसका चरित्र विशेष रूप से उभर नहीं पाया है। वह बड़ा बुद्धिमान और दूरदर्शी है। बाली से परिपीड़ित और संत्रस्त हुआ वह सहायता हेतु राम की शरण जाता है, किन्तु उनके साथ मित्रता करने से पूर्व अपने सामने राम द्वारा एक ही बाण से सात साल वृक्षों को बिंधवाकर उनके बल और पराक्रम की अच्छी तरह परीक्षा ले लेता है। बाली-वध के बाद वह किष्किन्धा का राजा बन जाता है। वह राम का निष्ठावान् मित्र और परम भक्त है। उसमें पूरी राजनैतिक पटुता दिखाई देती है। तभी तो विभीषण के लङ्का को छोड़कर राम-शिविर में आते ही राम को सलाह देता है कि बिना सोचे-समझे उसे एकदम प्रश्रय देना ठीक नहीं, क्योंकि राक्षस लोग छली और छल-युद्ध-निपुण हुआ करते हैं। राम उसकी सलाह नहीं मानते हैं—यह दूसरी बात है।

हनुमान्—हनुमान नाटक में प्रमुख पात्रों में से हैं। उनका चरित्र बड़ा उदात्त और उज्ज्वल अंकित हुआ है। वे अतुलित-बल-धाम, महापराक्रमी और

पक्की निष्ठावाले व्यक्ति हैं। वे सुग्रीव के मन्त्री हैं और विपत्ति में भी अपने स्वामी का साथ देते हैं। यह हनुमान् ही हैं जिनसे माध्यम के सुग्रीव की राम के साथ मैत्री-सन्धि होती है। सुग्रीव को बाली को बुरी तरह मार खाता हुआ देखकर भी चुप हुए राम को हनुमान् ही उन्हें अपनी पूर्व शपथ की याद दिलाते हैं और उनसे बाली-वध हेतु अनुरोध करते हैं। सीता के अन्वेषण में प्रमुख हाथ हनुमान् का ही होता है वे इतने महान् साहसी हैं कि समुद्र को लांघ जाते हैं सीता की ढूंढ़ में सारी लङ्का छान लेना और अन्त में रावण के प्रमदवन की अशोकवाटिका में उनका पता लगाना इन्हीं का काम है। अशोक वृक्ष के कोटर में छिपकर वे सीता के प्रति रावण द्वारा किए जा रहे प्रणय-निवेदन, उन्हें दिए जा रहे प्रलोभनों और राम के सम्बन्ध में कही जा रही अनर्गल बातों को सुनकर हनुमान् अत्यधिक क्रुद्ध हो उठते हैं, किन्तु सन्तुलन संभाले रहते हैं। वे चाहते तो उसी क्षण वहीं पर रावण का काम-तमाम कर देते। एक बार उनके मन में ऐसा विचार आता भी है, किन्तु वे बड़ी समझदारी दिखाते हैं कि ऐसा करने से राम का काम ही कहीं बिगड़ न जाय। समझदारी से ही वे सीता का विश्वास भी प्राप्त कर लेते हैं।

हनुमान् बड़े निर्भीक हैं। चाहते तो गुप्तचरों की तरह सीता का पता लगा कर चुपके से राम को सूचना दे सकते थे. किन्तु नहीं; रावण को भी लङ्का में अपनी उपस्थिति और शक्ति का प्रमाण देना चाहते हैं। उसके सारे प्रमदवन नष्ट-ध्वस्त करके उनके पकड़ने हेतु रावण द्वारा भेजे हुए उनके सैन्य सहित सभी सेनानियों को और उसके पुत्र अक्षय को भी समाप्त कर देते हैं। अन्त में स्वेच्छा से इन्द्रजित् के बन्धन में आ जाते हैं इस विचार से कि इस बहाने रावण को भी देख लूं कि वह कैसा है और उससे दो बातें भी कर लूं। रावण की सभा में उस राक्षसराज को मुँह-तोड़ जवाब देना हनुमान्—जैसे महाबली के ही बल-बूते का काम है। सभा में ही उनका विभीषण से परिचय होता है जो रावण को उन्हें वध-दण्ड देने से रोकता है। रावण दण्ड के रूप में उनकी पूँछ जलवा देता है, किन्तु अपनी जलती हुई पूँछ से किस तरह वे रावण की सारी लङ्का को भी जला देते हैं—यह घटना भास छोड़ गए हैं।

हनुमान् राम के सच्ची निष्ठा वाले परम भक्त हैं। वे आंख मींचकर उनकी आज्ञा पर चलने वाले सेवक हैं। राम सीता की अग्नि-परीक्षा लेने हेतु

लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं। तो वे जरा सकुचाने लगते हैं कि उनकी अग्नि-परीक्षा क्यों ली जाय जब कि वे स्वभावतः पवित्र और शुद्ध-चरित्र हैं। वे इस सम्बन्ध में विचार करने के लिए हनुमान् को कहते हैं किन्तु उनका यही उत्तर होता है कि इस पर विचार करने को क्या बात है, जैसी प्रभु की आज्ञा है, वैसे ही हमें करना चाहिये। देखिये हनुमान् को राम में कितनी अटूट श्रद्धा भक्ति है। यही कारण है कि हनुमान् आज तक भी देवता के रूप में पूजे जा रहे हैं और हमेशा के लिए पूजे जायेंगे।

सीता—सारे नाटक में वह केन्द्र-बिन्दु, जिसके इर्दगिर्द सारा घटना-चक्र घूम रहा है, सीता ही है। उसी के कारण राम की सुग्रीव से मैत्री-सन्धि होती है; समुद्र पार किया जाता है और अन्त में रावण-वध होता है। सीता नाटक की नायिका है। उसका चरित्र एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रित हुआ है। उसका अपने पति के प्रति मन-वचन-कर्म से सच्चा और अटूट अनुराग रहता है, किन्तु नाटक में वह रावण के यहाँ बन्दी बनी विरहिणी के रूप में आती है। राक्षसराज द्वारा अपहरण से लेकर अग्नि-परीक्षा तक बेचारी के माथे पर दुःख ही दुःख लिखा रहता है। वह भयानक राक्षसियों से घिरी हुई रहती है; उनके द्वारा विविध प्रकार से डराई, धमकाई और सताई जाती है। दुष्ट अपहर्ता राक्षसराज उसके प्रणय-निवेदन करता है नाना प्रलोभन देता है और नाना त्रास भी दिखाता है, किन्तु वह अपने पति-व्रत में अडिग रहती है, भले ही कुछ भी हो जाय।

सीता एक सती नारी है। वह रात-दिन पति का ही ध्यान, चिन्तन और शुभ कामना करती रहती है। पति के साथ वह अपना ऐसा ऐकात्म्य बनाये रहती है कि पति के मंगल में अपना मंगल और पति के दुःख में अपना दुःख समझती है। अपने वियोग में पति को 'अनशनसंतप्त और हीयमान' शरीर का समाचार हनुमान् से पाकर बड़ी दुःखी होती है, साथ ही अपने प्रति उनका अनुक्रोश (दया) देखकर सन्तोष भी अनुभव करती है। वह बड़े कोमल हृदय की है, हनुमान् को समझा देती है कि तुम आर्यपुत्र के आगे मेरे दुःखों का चित्र न खींचना, अन्यथा मेरे कारण उनका दुःख और

बढ़ जाएगा। पति-भक्ति के आगे वह रावण की विशाल शक्ति, धन-सम्पत्ति और राजलक्ष्मी तक को लात मार देती है। उस दुष्ट मायावी द्वारा मंगवाए राम-लक्ष्मण के कृत्रिम सिरों को देखकर मूर्छित हो जाती है और सचेत होते ही उसे कहने लगती है कि तू मेरा भी सिर काट दे। रावण-वध के बाद उसके दुःखों का अन्त हो जाना चाहिए था किन्तु नहीं। राक्षसराज के गृह में रहने के कारण पति अब उसका मुंह नहीं देखना चाहते हैं। अन्त में बेचारी को अपनी पवित्रता प्रमाणित करने हेतु अपने आप को अग्नि में झोंकना पड़ता है। तब जाकर वहीं पति उसे स्वीकार करते हैं। यह जीवन की कैसी विडम्बना है!

अग्निदेव सीता को बिना जलाए और अन्य क्षति पहुँचाये राम को सौंप देते हैं यह कहते हुए कि यह जगत्पावनी देवी है। आप मनुष्य-देह में अवतरित विष्णु हैं और यह आपसे कभी पृथक् न होने वाली भगवती लक्ष्मी हैं। हमारे विचार से अग्निदेव के कह देने से ही सीता देवी नहीं हैं। नाटक में वह मानुषी व्यक्तित्व और मानुषी भावनाओं को लिये हुए एक मानुषी हैं। लक्ष्मी देवी होने के नाते अग्नि ने उसे नहीं जलाया—ऐसी बात नहीं, प्रत्युत वह इसलिये नहीं जला सके कि वह परम पवित्र और निष्पाप है। उसकी इस परम पवित्रता, निष्पापता और मन, वचन, कर्म से पति के प्रति अविचल निष्ठा ने उस मानुषी को देवीत्व प्रदान किया है और जगद्-वन्द्य बनाया है।

—मोहनदेव पंत

नाटक के पात्र

पुरुष—

१. राम—दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र।
२. लक्ष्मण—राम का छोटा भाई।
३. बाली—सुग्रीव का बड़ा भाई और किष्किन्धा का राजा।
४. सुग्रीव—बाली का छोटा भाई।
५. अङ्गद—बाली का पुत्र।
६. हनुमान्—सुग्रीव का मंत्री।
७. नील—एक वानर-अधिकारी।
८. बलाध्यक्ष—वानर-सेनापति।
९. विलमुख—एक वानर योद्धा।
१०. ककुभ—एक वानर-अधिकारी।
११. वानर-काञ्चुकीय—सुग्रीव का कञ्चुकी।
१२. रावण—लङ्काधिपति।
१३. विभीषण—रावण का छोटा भाई।
१४. विद्युज्जिह्व—एक राक्षस।
१५. शंकुकर्ण—एक रावण का सेवक।
१६. शुक, सारण—रावण के मंत्री।
१७. राक्षस-काञ्चुकीय—रावण का कञ्चुकी।
१८. तीन विद्याधर।
१९. अग्निदेव।
२०. वरुणदेव।

स्त्रियाँ—

१. सीता—रामपत्नी।
२. तारा—बाली-पत्नी।
३. राक्षसियाँ।
४. विजया—रावण की प्रतीहारी।

———

भासनाटकचक्रे

अभिषेकनाटकम्

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

नत्वा सारस्वतं ज्योतिः पादपद्मं गुरोस्तथा ।
टीकेयमभिषेकस्य क्रियते 'छात्रतोषिणी' ॥

टीका—नान्द्यन्ते-नान्द्याः – आरम्भे देवादिपूजनस्तुत्यादिरूप-मङ्गलाचरणस्य अन्ते-समाप्तौ (ष० तत्पु०) प्रविशति-प्रवेशं करोति । सूत्रधारः-नाटकस्य पात्रविशेषः ।

टिप्पणी —नान्दी नाटक के प्रारम्भ में की जाने वाली देवादिपूजन-स्तुति-रूप मङ्गलाचरण को कहते हैं । इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'नन्दन्ति देवताः अत्रेति √नन्द्+घञ्+ङीप् 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' से धातु के अ को आ हो जाता है । भारतीय प्रथानुसार किसी भी कार्य को आरम्भ करने से पूर्व उसकी सफलता हेतु एवं विघ्नों के निराकरण के लिए देवताओं की पूजा एवं प्रार्थना की जाती है । यही प्रवृत्ति नाटक में भी काम करती है । साहित्यदर्पणकार ने नान्दी का लक्षण इस तरह किया है—

'आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति कथ्यते ॥'

(नान्दी के अन्त में सूत्रधार प्रवेश करता है ।)

यो गाधिपुत्रमखविघ्नकरामिहन्ता
युद्धे विराधखरदूषणवीर्यहन्ता ।

देवगण, ब्राह्मणों और राजादि की आशीर्वादयुक्त स्तुति इसके द्वारा की जाती है, इसलिए इसे नान्दी कहते हैं। किन्तु ध्यान रहे कि इस नाटक में नान्दी वह श्लोक नहीं, जिसे सूत्रधार रंगमञ्च पर कह रहा है। भास के नाटकों की यह विशेषता है कि उनमें नान्दी अन्य नाटकों की तरह नटों द्वारा दर्शकों के सामने रंगमञ्च पर नहीं की जाती है। सूत्रधार अपने कलाकरों के साथ पर्दे के पीछे पहले नान्दो कर लेता है, तब रंगमञ्च पर उपस्थित होकर दर्शकों के लिए मंगल-कामना करता है। इस तरह भास के नाटकों में नान्दी-पाठ नाटकों के भाग नहीं होते हैं। वे सूत्रधार से आरम्भ होते हैं। इसीलिए बाण ने इनके नाटकों की इस विशेषता के सम्बन्ध में लिखा है—'सूत्रधारकृतारम्भैः नाटकैः।

सूत्रधारः—सूत्रं धारयतीति (सूत्र+√धृ+णिच्+अण्) (कर्मण्यण्) सूत्रधारः। इस व्युत्पत्ति से सूत्रधार नाटक का वह प्रधान पात्र होता है, जो नाटक का सूत्र पकड़े हुए रहता है। उसका लक्षण यह है—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो मतो बुधैः॥

अर्थात् नाटक खेलने के लिए अपेक्षित सामग्री को सूत्र कहते हैं। रंगमञ्च, पर्दे, कलाकार और उनकी वेश-भूषा आदि सब सूत्र के अन्तर्गत हैं। इन सभी का उत्तरदायित्व सँभालने वाला प्रधान नट सूत्रधार होता है। इसे हम नाटक का प्रबन्धक (मैंनेजर) अथवा निर्देशक (डाइरेक्टर) कह सकते हैं। हमारा विचार है कि सूत्रधार शब्द का प्रचलन आरम्भ में कठपुतली का सूत्र (डोरी) पकड़कर नचाने वाले से हुआ होगा, क्योंकि नाट्य-कला के विकास में कठपुतली का नाच आदि-अवस्था होगी।

सूत्रधार—जो विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डालने वालों (=राक्षसों) का वध करनेवाले, युद्ध में विराध, खर और दूषण को मारने वाले, अभिमान में फूले हुए, बलशाली कबन्ध और कपोन्द्र (बाली) के विनाशक, (और राक्षसों के अधीश (रावण) के कुल का संहार करनेवाले हैं, वे (राम) तुम्हारी रक्षा करें॥ १॥

दर्पोद्धतोल्बणकबन्धकपीन्द्रहन्ता
पायात् स वो निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता ॥ १ ॥

टीका—य इति—अन्वयः—यः गाधि····न्ता, युद्धे विराध···न्ता, दर्पो···न्ता, निशि···न्ता, (अस्ति) सः वः पायात् ।

यः–जो, गाधि०–गाधेः–चन्द्रवंशीयस्य क्षत्रियविशेषस्य पुत्रः–सुतः विश्वामित्रः इत्यर्थः तस्य मखे–यज्ञे (ष० तत्पु०) विघ्नकराणाम्–विघ्नविधायकानाम् अभिहन्ता–वधकर्ता (ष० तत्पु०) विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न करने वालों (राक्षसों) का वधकर्ता युद्धे–रणे विराध०–विराधश्च खरश्च दूषणश्चेति विराधखरदूषणाः [द्वन्द्वः] तेषां वीर्यस्य (ष०तत्पु०) हन्ता–विनाशकः (ष०तत्पु०) (विराध, खर और दूषण के शौर्य का विनाशक), दर्पो०–दर्पेण–अभिमानेन उद्यतौ–उद्गूर्णौ (तृ० तत्पु०) च उल्बणौ–बलशालिनौ च (कमंधा०) कबन्धः–राक्षसविशेषश्च कपीनां–वानराणाम् इन्द्रः–स्वामी वालीत्यर्थः (ष० तत्पु०) च (द्वन्द्वः) तयोः हन्ता–विनाशकः (ष० तत्पु०) (अभिमान में तने हुए और बलशाली कबन्ध एवं वानरों के स्वामी (बाली) का विनाशक), निशिचराणाम्–राक्षसानाम् इन्द्रः–अधीशः रावणः इत्यर्थः (ष० तत्पु०) तस्य कुलस्य–वंशस्य अभिहन्ता–ध्वंसकः (ष० तत्पु०) (राक्षसों के स्वामी (रावण) के कुल का ध्वंस करनेवाला) (अस्ति–है) सः–(वह राम) वः–युष्मान् पायात्–रक्ष्यात् (तुम्हारी रक्षा करे) । अत्र हन्तेति श्लोक-पादस्य अन्ते आवृत्तत्वात् अन्त्यानुप्रासः । वसन्ततिलका वृत्तम्–'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' ॥ १ ॥

व्याकरण—विघ्नः–विहन्यते अनेन इति वि+√हन्+क्त । विघ्नकराः–विघ्नं कुर्वन्तीति विघ्न+√कृ+अच् । अभिहन्ता–अभितः–परितः हन्तीति अभि+√हन्+तृच् । युद्धम्–√युध्+क्त (भावे) । वीर्यम्–वीरस्य भावः इति वीर+यत् । उद्यतः–उत्+√यम्+क्तः । पायात्–√पा+आशीर्लिङ् । निशिचराः–निशि चरन्तीति निशा+चर्+अच् (अलुक् स०) ।

टिप्पणी—गाधि–ये चन्द्रवंशीय राजा थे । इनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये इन्द्र के अवतार थे । विश्वामित्र इनके पुत्र थे, जो अपने यज्ञ में विघ्न

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अयं किन्तु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते ! अङ्ग ! पश्यामि ।

डालने वाले राक्षसों के विनाश हेतु राजा दशरथ से राम-लक्ष्मण को माँग लाए थे। विराध, खर, दूषण और कवन्ध ये सब राक्षस थे, जिन्हें राम ने अपने वनवास-काल में मार दिया था। खर रावण का सौतेला भाई था। दूषण रावण का एक सेनापति था। कवन्ध पूर्व जन्म में कोई देवयोनि था, जो इन्द्र के शाप के कारण राक्षस-योनि में पड़ा हुआ था। वहाँ अत्याचार करने लगा, तो इन्द्र ने वज्र से इसका सिर इसके शरीर के भीतर घुसा दिया था जिससे वह कवन्ध ही कबन्ध रह गया था। कवन्ध घड़ को कहते हैं। वह मरा नहीं था, क्योंकि ब्रह्मा ने उसे दीर्घायु होने का वर दे रखा था। राम के हाथ से मुक्ति पाकर फिर वह देवयोनि में चला गया।

टीका—आर्याः–श्रेष्ठाः च ते मिश्राः–पूज्याश्च तान् (कमधा०) (आप पूज्य महानुभावों को विज्ञापयामि–निवेदयामि (निवेदन करता हूँ)। परिक्रम्य–परिभ्रम्य, अवलोक्य–दृष्ट्वा। विज्ञापने—निवेदने व्यग्रे–व्यासक्ते श्रूयते–आकर्ण्यते। अङ्ग ! सम्बोधने। नेपथ्ये–कुशीलव-कुटुम्बस्य स्थले।

व्याकरण—आर्य श्रेष्ठ जन को कहते हैं क्योंकि वह अर्तुम्–सद् आचरितुं योग्यः (√ऋ+ण्यत्) अच्छा आचरण करने योग्य होते हैं अथवा वह अर्यन्ते–सेव्यत्वेन गम्यन्ते इति अर्थात् सेवा किये जाने योग्य होते हैं। मिश्राः मिश्र शब्द पूज्यार्थ में आता है। यह बड़े पुरुषों के नाम के अन्त में जुड़ता है, और नित्यबहुवचनान्त ही रहता है जैसे—आर्यमिश्राः, मण्डनमिश्राः इत्यादि, देखिए—'पूज्ये मिश्र-पदं नित्यं बहुवचनान्तम्।' यहाँ आर्यमिश्र शब्द दर्शकों के लिए प्रयुक्त हुआ है अर्थात् आप पूज्य महानुभावों को। विज्ञापयामि–वि+√ज्ञा+णिच्+लट्। परिक्रम्य–परि+√क्रम्+ल्यप्। विज्ञापन–वि+√ज्ञा+णिच्+ल्युट् (भावे) श्रूयते—√श्रु+लट् (कर्मवाच्य)।

टिप्पणी—नेपथ्ये—नाट्यशास्त्र के अनुसार 'कुशीलव-कुटुम्बस्य स्थलं

इस प्रकार पूज्य महानुभावों से निवेदन करता हूँ। (घूमकर और देखकर) अरे ! यह क्या ? मेरे निवेदन में व्यस्त होते ही (कुछ) शब्द-जैसा सुनाई दे रहा है। अच्छा देखता हूँ।

(नेपथ्ये)

सुग्रीव ! इतः इतः !

(प्रविश्य)

पारिपार्श्विकः—भाव !

कुतो न खल्वेष समुत्थितो ध्वनिः
प्रवर्तते श्रोत्रविदारणो महान् ।
प्रचण्डवातोद्धतभीमगामिनां
वलाहकानामिव खेऽभिगर्जताम् ॥ २ ॥

नेपथ्यमुच्यते' अर्थात् नट-परिवार का स्थान नेपथ्य कहा जाता है । यहां कलाकार अपना वेश-धारण (मेक-अप) किया करते हैं। वैसे जवनिका और रंगभूमि को भी नेपथ्य कहते हैं, किन्तु यहाँ प्रसावन-गृह लिया जाता है। इसे अंग्रेजी में Green Room कहते हैं। 'अये ! किन्तु खलु'''शब्द इव श्रूयते' इस उक्ति द्वारा रंगमंच पर पात्रों का प्रवेश कराने की प्रक्रिया भास के बहुत से नाटकों में पाई जाती है।

पारिपार्श्विक—परितः पार्श्वे भवतीति (परि+पार्श्व+ठक्) यह भी नाटक का पारिभाषिक शब्द है। यह उस नट के लिए प्रयुक्त होता है जो सहायता देने के लिए बराबर सूत्रधार के इर्द-गिर्द रहा करता है। इसे हम सहायक प्रबन्धक (असिस्टेण्ट मैनेजर) कह सकते हैं। भाव भी नाटक का शब्द है। यह विद्वान् के अर्थ में प्रयुक्त होता है ('भावो विद्वान्' इत्यमरः)।

टीका—कुतो—अन्वयः—प्रचण्ड'''नाम्, खे अभिगच्छताम्, वलाहकानाम् इव श्रोत्रविदारणः एषः महान् ध्वनिः कुतः नु खलु समुत्थितः प्रवर्तते ।

प्रचण्ड—प्रकर्षेण चण्डाः—भीषणा इति प्रचण्डाः (प्रादि तत्पु०) ये वाताः—वायवः (कर्मधा०) तैः उद्धताः—उत्थापिताः (तृ० तत्पु०) भीमं—भीषणं यथा स्यात्तथा गच्छन्तीति गामिनश्च (कर्मधा०) तेषाम् (बड़ी तेज हवाओं से उठाये और भयंकर रूप से जा रहे) खे—आकाशे अभिगर्जताम्—अभितः—परितः

(नपथ्य में)

सुग्रीव ! इधर, इधर ।

(प्रवेश करके) पारिपार्श्विक—'विद्वद्वर्य !

सूत्रधारः—माष ! किं नावगच्छसि। एष खलु सीतापहरणजनित-सन्तापस्य रघुकुलप्रदीपस्य सर्वलोकनयनाभिरामस्य रामस्य च, दाराभि-

---

गर्जनं कुर्वताम् (चारों ओर गर्जते हुए) बलाहकानाम्—मेघानाम् इव—सदृशः (मेघों का-सा) श्रोत्रयोः—कर्णयोः विदारणः—भेदकः (ष० तत्पु०) (कानों को फाड़ देने वाला) एषः अयम् महान् ध्वनिः—विपुलः शब्दः (बड़ा भारी शब्द) कुतः—कस्मात् स्थानात् (कहाँ से) नु—इति पृच्छायाम् खलु—निश्चयेन समुत्थितः—उत्पन्नः (उत्पन्न हुआ) प्रवर्तते—प्रसरतीत्यर्थः (फैल रहा है)। अत्र समुत्थितध्वनेः मेघध्वनिना सादृश्यप्रतिपादनात् उपमा। वंशस्थं वृत्तम्—'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।'

व्याकरण—उद्धत—उद्+√हन्+क्त। भीमगामिनाम्—भीम+√गम्+इन् (उपपद तत्पु०)। बलाहकानाम्—वारीणां (जलानां) वाहक इति। पृषोदरादित्वात् साधुः, अभिगर्जताम्—अभि+√गर्ज्+शतृ (ष० बहु०) श्रोत्रम्—श्रूयते अनेन इति√श्रु+ष्ट्रन् (करणे)। विदारणः—विदारयतीति वि+√दृ+ल्युट् (कर्तरि)। कुतः—किम्+तस् (अपादाने)। प्रवर्तते—प्र+√वृत्+लट्।

टीका—मार्ष !—मारिष ! आर्य ! इत्यर्थः। अवगच्छसि—जानासि। सीता०—सीतायाः अपहरणम्—रावणकृतम् अपनयनम् (ष० तत्पु०) तेन जनितः—उत्पादितः (तृ० तत्पु०) सन्तापः—दुःखम् (कर्मधा०) यस्य तथाभूतस्य (बहुव्री०) (सीता के अपहरण से उत्पन्न किये हुए दुःख वाले) रघु०—

बड़ी तेज हवाओं से उड़ाये (और) भयंकररूप से जा रहे (तथा) आकाश में गर्जते हुए मेघों का-सा कानों को फाड़ देने वाला यह महान् शब्द सचमुच कहाँ से उत्पन्न हुआ फैल रहा होगा ॥ २ ॥

सूत्रधार—आर्य ! क्या नहीं जानते ? सीता के (रावण द्वारा) अपहरण से उत्पन्न हुए सन्ताप वाले, रघुकुल के प्रदीप, सभी लोगों के नयनों को आनन्द देने वाले राम की तथा स्त्री (तारा) के साथ अभिगमन करने के कारण देश से निकाले हुए, सब वानरों और भालुओं के राजा, सुन्दर, विस्तीर्ण, विशाल गर्दन वाले सुग्रीव की—जिन्होंने एक-दूसरे का उपकार करने की प्रतिज्ञा कर रखी है—सारे वानरों के स्वामी, सोने का कण्ठा पहने बाली को मारने की तय्यारी हो रही है।

मर्शननिर्विषयीकृतस्य सर्वहर्यृक्षराजस्य सुविपुलमहाग्रीवस्य सुग्रीवस्य च परस्परोपकारकृतप्रतिज्ञयोः सर्ववानराधिपतिं हेममालिनं वालिनं हन्तुं समुद्योगः प्रवर्तते । तत एतौ हि,

---

रघूणाम्–रघुवंशीयानां नृपाणाम् यत् कुलम्–वंशः (ष० तत्पु०) तस्य प्रदीपस्य–प्रदीपवत् प्रकाशस्येत्यर्थः (ष० तत्पु०) (रघुवंश के दीपक) सर्व०–सर्वे च ते लोकाः–जनाः (कर्मधा०) तेषां नयनानां–नेत्राणाम् (ष० तत्पु०) अभिरामः–रमणीयः आनन्ददायक इत्यर्थः तस्य (ष० तत्पु०) रामस्य–रामचन्द्रस्य, दारा०–दाराणां–स्त्रियाः बालिपत्न्याः इत्यर्थः स्त्रीवाचको दारशब्दः पुल्लिङ्गो नित्यबहुवचनान्तश्च । अभिमर्शनम्–आधर्षणम् अभिगमनमित्यर्थः (ष० तत्पु०) तेन निर्विष०–विषयो देशः निष्क्रान्तो विषयात् इति निर्विषयः (प्रादितत्पु०) अनिर्विषयः निर्विषयः सम्पद्यानः कृतः इति निर्विषयीकृतः तस्य, बहिष्कृतस्येत्यर्थः (तृ० तत्पु०) (स्त्री) (तारा) के साथ अभिगमन करने का कारण देश से बाहर निकाले हुए) सर्व०–सर्वे च ते हरयः–वानराश्च ऋक्षाः–भल्लूकाश्च (द्वन्द्वः) इति सर्वहर्यृक्षाः (कर्मधा०) तेषां राजा–अधिपः तस्य (ष० तत्पु०) सुविपुल०–सु–सुष्ठु विपुला–विस्तृता महती–विशाला च ग्रीवा–गलः (कर्मधा०) यस्य तथाभूतस्य (बहुव्री०) (सुन्दर, विस्तीर्ण और विशाल गले वाले) सुग्रीवस्य= वालिनः अनुजस्य, परस्प०– परः परः इति परस्परः–अन्योन्यः य उपकारः–हितानुष्ठानम् (कर्मधा०) तस्मिन् कृता–विहिता (सप्त० तत्पु०) प्रतिज्ञा–दृढसंकल्पः (कर्मधा०) याभ्यां तयोः (बहुव्री०) (एक-दूसरे का उपकार करने में दृढ़-संकल्प) सर्व० सर्वे च ते वानराः–कपयः (कर्मधा०) तेषाम् अधिपतिम्–अधीशम् (ष० तत्पु०) (सभी वानरों के स्वामी) हेम०–हेम्नः–सुवर्णस्य माला–हारः (ष० तत्पु०) अस्य अस्तीति० माली तम् (सोने का कण्ठा पहने) वालिनं–सुग्रीवस्य अग्रजम् हन्तुम्–मारयितुम् समुद्योगः–समुद्यमः (तय्यारी) प्रवर्तते–प्रारभ्यते (हो रही है) । ततः–तस्मात् कारणात् एतौ–इमौ हि–निश्चयेन ।

व्याकरण—अभिमर्शनम्–अभि+√मृश्+घञ् (भावे) । निर्विषयीकृतस्य–निर्+विषय+च्वि (अभूत-तद्भावे) √कृ+क्तः । परः परः इस विग्रह में पूर्वपद को सु । उपकारः–उप+√कृ+घञ् (भावे) । प्रतिज्ञा–प्रति+√ज्ञा+अङ्+टा प्

इदानीं राज्यविभ्रष्टं सुग्रीवं रामलक्ष्मणौ ।
पुनः स्थापयितुं प्राप्ताविन्द्रं हरिहराविव ॥ ३ ॥
(निष्क्रान्तौ)
स्थापना ।

(भावे)। हन्तुम्—√ हन्+तुम्। समुद्योगः—सम्+उत् √युज्+घञ् (भावे)।

टिप्पणी—बाली सुग्रीव—रामायण के अनुसार ये दोनों इन्द्रपुत्र थे। बाली महाबली था। कहते हैं कि एक बार उसके साथ लड़ने को आए हुए रावण तक को भी उसने अपनी कांख में दबा दिया था। एक समय दुन्दुभि के पुत्र मायावी ने किष्किन्धा पर आक्रमण कर दिया था। बाली और सुग्रीव दोनों भाई उसे मारते-मारते दूर तक ले गये। अन्त में मायावी एक गुफा में घुस गया। सुग्रीव को बाहर ही ठहरने को कहकर बाली भी गुफा के भीतर घुस गया। एक वर्ष हो गया, पर बाली बाहर नहीं निकला। सुग्रीव ने एक दिन गुफा से खून की धार बहती देखी, तो यह समझकर कि भाई को मायावी ने मार दिया है, सुग्रीव ने गुफा के मुँह पर एक विशाल शिला रख दी। वह किष्किन्धा लौट आया और राजगद्दी पर बैठ गया। उसने भ्रातृ-जाया तारा भी रखली। वास्तव में खून तो राक्षस का था, जिसे बाली ने मार दिया था। बाली जब घर आया, तो सुग्रीव पर क्रोध से आग-बबूला हो बैठा। उसने उसे मार-पीट कर किष्कन्धा से निकाल दिया और उसकी पत्नी रुमा अपने लिए रख ली। सुग्रीव बेचारा ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगा जहाँ राम से उसकी भेंट हो गई। दोनों एक-जैसी स्थिति में थे। राम की पत्नी सीता को रावण हर ले गया था तो सुग्रीव की पत्नी रुमा बाली ने छीन ली। राम को अयोध्या से निर्वासित किया गया था, तो सुग्रीव को किष्किन्धा से। इसलिए दोनों ने एक-दूसरे की सहायता की। राम ने बाली का वध करके सुग्रीव को उसकी पत्नी और राज्य दिलाया, उधर सुग्रीव ने भी सीता का पता लगाकर राम को दिला दिया। राम को भी बाद में राज्य मिल गया।

टीका—इदानीमिति—अन्वयः—इदानीम् हरि-हरौ राज्य-विभ्रष्टम् इन्द्रम्

इसीलिए ये दोनों राम और लक्ष्मण इस समय राज्य से च्युत हुए सुग्रीव को फिर (गद्दी पर) उसी तरह बिठाने पहुँचे हैं जैसे इन्द्र को फिर (गद्दी पर)

इव रामलक्ष्मणौ राज्य-विभ्रष्टं सुग्रीवं (पुनः) राज्ये स्थापयितुं प्राप्तौ (स्वः)।

इदानीम् – अस्मिन् समये हरिः–हरिः–विष्णुश्च हरः–शिवश्चेति हरिहरौ (द्वन्द्व) राज्यात्–राज्याधिकारात् विभ्रष्टम्–विच्युतम् (पं० तत्पु०) (राज्य से हटाये) इन्द्रम्–पुरन्दरम् इव राम०–रामश्च लक्ष्मणश्च राम-लक्ष्मणौ (द्वन्द्वः) राज्य-विभ्रष्टम् सुग्रीवम् पुनः–मुहुः स्थापयितुम्–(राज्ये) आरोपयितुम् (फिर गद्दी पर बिठाने हेतु) प्राप्तौ–आगतौ (पहुँच गए हैं)। अत्र रामलक्ष्मणयोः हरिहराभ्यां सुग्रीवस्य च इन्द्रेण सादृश्यप्रतिपादनात् उपमा। अनुष्टुप् छन्दः।

व्याकरण—इदानीम्–इदम्+दानीं "इदम इश्"। राज्यम्–राज्ञः भावः कर्म वेति राजन्+यत् नलोपः। विभ्रष्ट–वि+✓भ्रंश्+क्तः। स्थापयितुम्–स्था+णिच्+तुम्। प्राप्त–प्र+आप्+क्तः। निष्क्रान्तौ–निस्+✓क्रम्+क्तः।

टिप्पणी—हरिहराविव–यहाँ भास ने राजा नहुष की ओर संकेत किया हुआ मालुम पड़ता है। वृत्रासुर के वध से अपने ऊपर लगी ब्रह्महत्या (वृत्र ब्राह्मण था) का प्रायश्चित्त करने जब इन्द्र चला गया तो स्वर्ग में खाली पड़े राजसिंहासन पर सभी देवताओं द्वारा राजा नहुष को बैठा दिया गया। राज्य पाते ही वह अत्याचार करने लगा। बाद में वह इन्द्राणी को भी चाहने लगा। अन्त में एक दिन अगस्त्य ने उसे शाप दे दिया—"जा, मर्त्यलोक में सर्प बन जा"। उसके बाद इन्द्र लौट आया और अन्य देवताओं सहित विष्णु और शिव उसे फिर गद्दी पर बिठाने आ गये थे।

'स्थापना'—स्थापना नाट्यशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। इसके पर्यायवाची शब्द 'प्रस्तावना' और 'आमुख' हैं। नाटक में नान्दी के पश्चात् इसका स्थान आता है। 'स्थापना' वास्तव में नाटक में कथावस्तु का द्वार है, उसका श्रीगणेश है। इसमें सूत्रधार नटी और पारिपार्श्वक आदि के साथ वार्तालाप करता हुआ दर्शकों का नाटक और उसके रचयिता का परिचय देकर कथावस्तु के प्रारम्भ के लिए उचित वातावरण बनाकर और उसे आरम्भ करके

बिठाने विष्णु और शिव (पहुँचे थे)।

(दोनों चले गए)।

स्थापना

(ततः प्रविशति रामो, लक्ष्मणसुग्रीवौ, हनुमांश्च ।)

रामः—सुग्रीव ! इत इतः ।

रंगमञ्च से हट जाता है। साहित्यदर्पणकार ने प्रस्तावना का लक्षण यह किया है—

"नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव च ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैः वाक्यैः स्वकीयोत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिः मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥"

भास ने अपने तेरह नाटकों में से ग्यारह में प्रस्तावना के लिए स्थापना शब्द का प्रयोग कर रखा है। स्थापना इसे इसलिए कहते हैं कि—'स्थाप्यते प्रस्तूयते कथावस्तु अस्याम्' इति (√स्था+णिच्+युच्+टाप्) अर्थात् इसमें कथावस्तु की स्थापना की जाती है, किन्तु भास के नाटकों में स्थापना बड़ी संक्षिप्त रहती है। वह कहीं भी अपना नाम तक भी नहीं देता, व्यक्तिगत परिचय की तो बात दूर रही। इसका एक कारण यह हो सकता है कि भास इतना प्राचीन है कि उसके समय में नाट्य का ऐसा संविधान ही नहीं रहा होगा कि स्थापना के भीतर नाटककार के नाम आदि दिए जाएँ अथवा वह इतना विनम्र तथा निरभिमानी रहा हो कि उसने अपना व्यक्तिगत परिचय देना उचित न समझा हो।

प्रस्तावना के पाँच प्रकार होते हैं। यहाँ उसका 'प्रयोगातिशय' नाम का प्रकार है। इसमें सूत्रधार द्वारा रङ्गमञ्च पर आते हुए नाटक के किसी अथवा किन्हीं पात्र विशेषों का निर्देश किया जाता है। इसके लिए देखिये दशरूपक—

'एषोऽय'मित्युपक्षेपात् सूत्रधार-प्रयोगतः ।
पात्र-प्रवेशो यत्रैव प्रयोगातिशयो मतः ॥

प्रस्तावना के अन्य चार प्रकारों के नाम ये हैं—कथोद्घात, प्रवर्तक, अवलगित और उद्घात्य।

(तदनन्तर राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान् प्रवेश करते हैं।)

राम—सुग्रीव ! इधर इधर ।

मत्सायकान्निहतभिन्नविकीर्णदेहं
शत्रुं तवाद्य सहसा भुवि पातयामि ।
राजन् ! भयं त्यज ममापि समीपवर्ती
दृष्टस्त्वया च समरे निहतः स वाली ॥ ४ ॥

टीका--मत्सायकेति- अन्वयः-(अहम्) अद्य सहसा मत्सायकात् निहत····देहम् तव शत्रुम् भुवि पातयामि । राजन् त्वम् भयं त्यज समरे च निहतः सः वाली मम अपि समीपवर्ती सन् त्वया दृष्टः । अद्य-अस्मिन् दिवसे सहसा-एकदैव (तत्काल) मम सायकः-बाणः तस्मात् (ष० तत्पु०) (मेरे-अपने बाण से) निहत०-निहतः-मारितः भिन्नः-छिन्नः विकीर्णः-इतस्ततः प्रसृतः देहः-शरीरं (कर्मधा०) यस्य तम् (बहुव्रा०) (मारे, छिदे और बिखरे हुए शरीर वाले) तव शत्रुम्-वैरिणम् वालिनमित्यर्थः भुवि-पृथिव्याम् पातयामि-पतितं करोमि (गिरा देता हूँ) । राजन्-नृप सुग्रीव इत्यर्थः । भयं-भीतिम् त्यज-मुञ्च समरे-युद्ध निहतः-मारितः (मारा हुआ) स वाली मम अपि समीपवर्ती-समीपे वर्तते इति (उपपद तत्पु०) समीपस्थितः (समीप में स्थित) त्वया दृष्टः-अवलोकितः (तुमने देख लिया) । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४ ॥

व्याकरण—मत्सायकात्—'मत्सायकेन' यों करण में तृतीया होनी चाहिए थी । भास ने हेतु में पञ्चमी की हुई प्रतीत होती है अर्थात् मेरे बाण के-मेरे बाण बाण-प्रहार के कारण । सायकः—स्यति—छिनत्तीति√सो+√ण्वुल्+युक् । निहत—नि+√हन्+क्त । भिन्न—√भिद्+क्त । विकीर्ण—वि+√कॄ+क्त । पातयामि—√पत्+णिच्+लट् । दृष्ट—√दृश्+क्त । यहाँ यद्यपि बाली अभी न तो मारा गया है और न मारा हुआ भूमि पर पड़ा देखा गया है, तथापि उसका मारा जाना बिल्कुल निश्चित ही है । अतः आशंसा में यहाँ भूतकाल का प्रयोग

आज अपने बाण से तत्काल मारे, छिदे और बिखरे शरीर वाले तेरे शत्रु (बाली) को मैं पृथिवी पर गिरा देता हूँ । हे राजा ! भय छोड़ो ।

युद्ध में मारा हुआ वह बाली मेरे भी समीप पड़ा तुम्हारा देखा हुआ (समझो) ॥ ४ ॥

सुग्रीवः—देव ! अहं खल्वार्यस्य प्रसादाद् देवानामपि राज्यमाशङ्के, किं पुनर्वानराणाम् । कुतः,

मुक्तो देव ! तवाद्य वालिहृदयं भेत्तुं न मे संशयः
सालान् सप्त महावने हिमगिरेः शृङ्गोपमाञ्छ्रीधर ! ।
भित्त्वा वेगवशात् प्रविश्य धरणीं गत्वा च नागालयं
मज्जन् वीर ! पयोनिधौ पुनरयं सम्प्राप्तवान् सायकः ॥ ५ ॥

किया गया है, देखिए पाणिनि 'आशंसायां भूतवच्च' ३।३।१३२। हिन्दी में भी हम देखते हैं कि जब किसी का काम भविष्य में बनना निश्चित हो जाता है, तो हम उसे कह देते हैं—'तेरा काम बन गया है।'

टीका—खलु–निश्चयेन, आर्यस्य–भवतः प्रसादात्–अनुग्रहात्, आशङ्के–आशंसे, सम्भाव्यं मन्ये इत्यर्थः ।

मुक्तेति — अन्वयः—हे देव ! श्रीधर ! (त्वया) मुक्तः तव अयम् सायकः महावने हिमगिरेः शृङ्गोपमान् सप्त सालान् भित्त्वा, वेगवशात् धरणीं प्रविश्य, नागालयं च गत्वा पयोनिधौ मज्जन् पुनः अद्य वालिहृदयम् भेत्तुम् प्राप्तवान् (इति) मे न संशयः (अस्ति) ।

श्रीधर !–श्रियाः–लक्ष्म्याः धर !–धारक ! लक्ष्मीपते ! इत्यर्थः रामस्य विष्णोः अवतारत्वात् (हे भगवान् विष्णु) मुक्तः–क्षिप्तः (फेंका हुआ) शरः–बाणः महावने–महत्–विशालं च तत् वनम्–अरण्यम् तस्मिन् (कर्मधा०) महारण्ये हिमगिरेः–हिमपूर्णः गिरिः हिमगिरिः (मध्यमपदलोपी स०) तस्य शृङ्गोपमान्–शृङ्गः–शिखरः उपमा–सादृश्यं (तृ० तत्पु०) येषां तान् (बहुव्री०) (चोटियों के समान) सप्त–सप्तसंख्यकान् सालान्–एतन्नामकवृक्षविशेषान् भित्त्वा–छित्त्वा (भेदन करके) वेगः–जवः तस्य वशात्–कारणात् (ष० तत्पु०) धरणीम्–पृथ्वीम् प्रविश्य–प्रविष्टो भूत्वा (पृथिवी में घुसकर) नागालयम्–नागानाम्–सर्पाणाम् आलयम्–गृहम् पातालमित्यर्थः (ष० तत्पु०) गत्वा–यात्वा

सुग्रीव — महाराज ! आपके अनुग्रह से मैं देवताओं के भी राज्य की आशा करता हूँ, वानरों (के राज्य) की तो बात ही क्या, क्योंकि— हे देव लक्ष्मी-पति ! आपका छोड़ा हुआ बाण महावन में हिमालय के शिखरों–जैसे सात साल

हनुमान्—

तव नृप ! मुखनिःसृतैर्वचोभि-
विगतभया हि वयं विनष्टशोकाः ।

पयोनिधौ-समुद्रे मज्जन्-मज्जनं कुर्वन् (डूबता हुआ) पुनः-मुहुः अद्य-अस्मिन् दिने वालि-हृदयम्-वालिनः हृदयम्-अन्तःकरणम् (ष० तत्पु०) (बाली के हृदय को) भेत्तुम्-छेत्तुम् (भेदन करने के लिए) प्राप्तवान्-आगतवान् मे न संशय -सन्देहः (मुझे सन्देह नहीं)। अत्र एकस्य सायकस्य सालभेदनाद्यनेक-क्रियाभिः सम्बन्ध-प्रतिपादनात् दीपकालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दः, तल्लक्षणं यथा —'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ५ ॥

व्याकरण —श्री—श्रयतीति√श्रि+क्विप् दीर्घश्च । धरः-धरतीति√धृ+अच् । मुक्तः-√मुच्+क्तः । भित्त्वा-√भिद्+क्त्वा । धरणी-धरति जीवादीन् इति√धृ+इनिः+ङीप् । प्रविश्य—प्र+√विश्+ल्यप् । गत्वा —√गम्+क्त्वा । पयोनिधिः—पयसां—जलानां निधिः –निधीयते अत्र इति नि+√धा+किः । मज्जन्—मज्ज+शतृ । भेत्तुम्-√भिद्+तुम् । प्राप्तवान्-प्र+√आप्+क्तवत् । संशयः —सम्+√शी×अच् (भावे) ।

टिप्पणी — सप्तसालान्—बाली महाबलशाली था । सुग्रीव को सन्देह था कि राम बाली को क्या मार सकेंगे । इसने उनके बल की परीक्षा लेनी चाही । महावन में एक स्थान में सात साल के वृक्ष टेढ़ी-मेढ़ी पंक्ति में खड़े हुए थे । उसने राम से आग्रह किया कि वे एक बाण से उनका भेदन करके दिखा दें । राम ने तत्काल अपना बाण छोड़ा और एकदम सातों साल वृक्षों को भेद डाला । बाण वृक्ष-भेदन करके, जमीन के भीतर घुसकर, पाताल तक पहुँच गया और फिर राम के पास आ गया, देखिए वाल्मीकि रामायणः—"सायकस्तु मुहूर्तेन सालान् भित्त्वा महाजवः । निष्पत्य च पुनस्तूर्णं तमेव प्रविवेश ह । (किष्कि० २२।४) इस घटना को देखकर सुग्रीव आश्चर्य-चकित रह गया और राम के चरणों में गिर पड़ा ।

वृक्षों को भेदकर, तेजी से पृथ्वी में घुसकर, पाताल में जाकर और समुद्र में डूबता आज, हे वीर ! बाली का हृदय भेदन करने के लिए (आपके पास) प्राप्त हो रहा है—इसमें मुझे सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥

रघुवर ! हरये जयं प्रदातुं
गिरिमभिगच्छ सनीरनीरदाभम् ॥ ६ ॥

लक्ष्मणः—आर्य ! सोपस्नेहतया वनान्तरस्याभितः खलु किष्किन्धया भवितव्यम् ।

टीका—तवेति—अन्वयः—हे नृप ! मुखविनिःसृतैः तव वचोभिः वयं हि विगतभयाः विनष्टशोकाः च (स्मः) हे रघुवर ! हरये विजयं प्रदातुम् सनीरनीरदाभम् गिरिम् अभिगच्छ ।

हे नृप—हे राजन् ! मुख०—मुखात्-वक्त्रात् निःसृतैः-निर्गतैः (पं० तत्पु०) (मुँह से निकले) तव—ते वचोभिः—वचनैः वयम् हि—निश्चयेन विगतः०--विगतम्-अपेतम् भयम्—भीतिः (कर्मधा०) येषां ते (बहुव्री०) (भय-रहित) विनष्ट०—विनष्टः—ध्वस्तः शोकः—दुःखं (कर्मधा०) येषां ते (बहुव्री०) (शोक मिटाये)। हे रघुवर ! रघुषु—रघुवंशीय-नृपेषु वरः—श्रेष्ठः तत्सम्बुद्धौ (स० तत्पु०) (रघुवंशीय राजाओं में श्रेष्ठ !) हरये—वानराय सुग्रीवाय इत्यर्थः जयम्—विजयं प्रदातुम्—वितरितुम् सनीर० सनीरेण—जलेन सह वर्तमानः सनीरः (बहुव्री०) सनीरश्चासौ नीरदः—मेघः (कर्मधा०) तस्य आभा—कान्तिः (ष० तत्पु०) इव आभा (उपमान तत्पु०) यस्य तम् (बहुव्री०) जलवाले मेघ की-सी कान्तिवाले) गिरिम्—पर्वतम् अभिगच्छ—अभियाहि (चलिए)। अत्र गिरेः सनीरनीरदेन साहश्यप्रतिपादनात् उपमालंकारः। नीर-नीरेत्यत्र लाटानुप्रासः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—अयुजियुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' ॥ ६ ॥

व्याकरण—विनिःसृतैः—वि+निस्√सृ+क्त। वचोभिः—उच्यते इति √वच्+असुन् (उणादि)। विगत—वि+√गम्+क्तः। भयम्—√भी+ अच्। विनष्ट—वि+√नश्+क्तः। विजयः—वि+√जी+अच् (भावे)। प्रदातुम्—प्र+√दा+

हनूमान्—हे नृप ! मुख से निकले आपके वचनों से हम सचमुच निर्भय (और) शोक-रहित हो गये हैं। हे रघुवर ! वानर (सुग्रीव) को विजय देने हेतु सजल मेघ की-सी कान्तिवाले पर्वत की ओर चलिए ॥ ६ ॥

लक्ष्मण—आर्य ! वन के मध्य भाग में आर्द्रता (नमी) आने के कारण किष्किन्धा समीप में ही होनी चाहिए ।

सुग्रीवः — सम्यगाह कुमारः ।

तुम् । नीरदः—नीरं (जलं) ददातीति नीर+√दा+कः आभा-आङ्+√मा+अङ्+टाप् ।

टीका — उपस्नेह—क्लेदः आर्द्रता इति यावत् तेन सहितम् सोपस्नेहम् (ब० व्री०) तस्य भावः तत्ता तया (गीलापन होने के कारण) वनस्य—अरण्यस्य-अन्तरम्—मध्यभागः तस्य (ष० तत्पु०) (वन के मध्यभाग के) अभितः समीपे किष्किन्धया—किष्किन्ध-देशस्य नगर्या भवितव्यम्—भवनीयम् (किष्किन्धा नगरी होनी चाहिए) सम्यक्—साधु आह—कथयति ।

व्याकरण -- उपस्नेह—उप+√स्निह्+घञ् (भावे) । भवितव्यम्—√भू+तव्य । आह—√ब्रू+लट् (अनियमित प्रयोग) ।

टिप्पणी — सोपस्नेहतया—हवा में अथवा वृक्षों में गीलापन होने के कारण । यह प्रयोग भास ने अपने अन्य नाटकों मे भी किया है, जैसे 'प्रतिमा' —'सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्यया भवितव्यम्', 'चारुदत्त'—'सोपस्नेहतया गृहविशिष्ट इवायं भवनविन्यासः' ।

टीका — संप्राप्तेति—अन्वयः—हे नृप ! तव बाहुसंप्रगुप्तैः (अस्माभिः) हरि···प्ता किष्किन्धा संप्राप्ता, हेनृवर ! त्वं तिष्ठ, अहं नादेन नृलोकम् विसंज्ञम् प्रचलमहीधरम् (च) करोमि ।

हे नृप !—हे राजन् राम इत्यर्थः । तव बाहुभ्याम्—भुजाभ्याम् सम्प्रगुप्तैः—संरक्षितैः (अस्माभिः) (तृ० तत्पु०) (आपकी भुजाओं द्वारा रक्षित हम) हरिषु—वानरेषु वरः—श्रेष्ठः बालीत्यर्थः (स० तत्पु०) तस्य बाहुभ्याम् संप्रगुप्ता—पालिता (तृ० तत्पु०) (वानराज (बाली) की भुजाओं द्वारा रक्षित) किष्किन्धा संप्राप्ताः—(किष्किन्धा पहुँच गए) । हेनृषु—नरेषु वर !—श्रेष्ठ ! (स० तत्पु०) त्वं तिष्ठ—स्थितिं कुरु अहं नादेन—गर्जनेन (मैं गर्जना द्वारा) नृणां—मनुष्याणां लोकम्—जगत् (मनुष्य-लोक को) विसंज्ञम्—वि विगता संज्ञा—चेतना (प्रादितत्पु०) यस्य तम् (ब० व्री०) (बेहोश) प्रचल०—प्रचलाः प्रकर्षेण चञ्चलाः कम्पमानाः इत्यर्थः महीधराः—पर्वताः (कर्मधा०) यस्मिन् तम् करोमि—विदधे अर्थात्

सुग्रीव—कुमार ठीक ही कहते हैं ।

सम्प्राप्ता हरिवरबाहुसम्प्रगुप्ता
किष्किन्धा तव नृप ! बाहुसम्प्रगुप्ता ।
तिष्ठ त्वं नृवर ! करोम्यहं विसंज्ञं
नादेन प्रचलमहीधरं नृलोकम् ॥७॥

अहं तथा गर्जामि यथा सर्वोऽपि नरलोकः विचेतनः स्यात् पर्वताश्च कम्पेरन् । अत्र 'बाहुसंप्रगुप्ता' इत्येतस्य द्वितीयपादान्तेऽपि आवृत्तत्वात्, अन्त्यानुप्रासः, किन्तु बाहुसंप्रगुप्तैः इति पाठ-परिवर्तने नास्ति अन्त्यानुप्रासः । प्रहर्षिणी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा —'–याश्चाभिर्मनजरगाः प्रहर्षणीयम् ॥ ७ ॥

व्याकरण —नृपः–नृन्–नरान् पातीति नृ+√पा+कः । संप्रगुप्त—सम्+प्र+√गुप्+क्तः । संप्राप्त–सम्+प्र+√आप्+क्तः । तिष्ठ–√स्था+लोट् मध्य० ए० । नादः–√नद्+घञ् । संज्ञा–सम्+√ज्ञा+अङ्+टाप् । प्रचल–प्र+√चल्+अच् (कर्तरि) । महीधरः–धरतीतिधरः√धृ+अच् मह्याः धरः इति (ष० तत्पु०) ।

टिप्पणी–बाहुसंप्रगुप्ता–यहाँ भास ने 'अनुप्रास-प्रभावेण भूपः कूपे निपातितः' वाली बात कर दी है । स्त्रीलिंग दोनों 'संप्रगुप्ता' शब्द 'किष्किन्धा' से संगत नहीं हो सकते हैं क्योंकि एक ही काल में किष्किन्धा वालि और राम दोनों से 'संप्रगुप्ता' नहीं हो सकती । व्याकरण की दृष्टि से या तो दूसरे को तृतीया में रखना चाहिए अर्थात् 'तव बाहुसंप्रगुप्तैः (अस्माभिः) किष्किन्धा संप्राप्ता' या उसे प्रथमाबहुवचनान्त ('०संप्रगुप्ताः') करके 'वयम्' का विशेषण बना देना चाहिए और ऊपर '०संप्रगुप्ताम्' 'किष्किन्धाम्' इस तरह द्वितीया कर देनी चाहिए । अर्थात् ०गुप्ताः (वयम्) ०गुप्तां किष्किन्धां संप्राप्ताः । साहित्यिक सौन्दर्य पर व्याकरण का बलिदान ठीक नहीं होता । यह च्युतसंस्कृति दोष कहलाता है । इसका एक ही समाधान हो सकता है और वह यह कि श्लोक ४ में आए हुए 'दृष्ट' शब्द की तरह यहां 'गुप्त' शब्द को आशंसा में भूतकाल का प्रयोग माना जाय अर्थात् बाली के मारे जाने के बाद जिस किष्किन्धा का राजतिलक मुझे मिलेगा, उसकी आप द्वारा भविष्य में रक्षा की जाने की

हे नृप ! आप की भुजाओं से रक्षित हम कपिवर (बाली) की भुजाओं से रक्षित किष्किन्धा पहुँच गए हैं ।

राम—भवतु, गच्छ ।

सुग्रीव:—यदाज्ञापयति देव: । (परिक्रम्य) भो: !

अपराधमनुद्दिश्य परित्यक्तस्त्वया विभो ! ।
युद्धे त्वत्पादशुश्रूषां सुग्रीवः कर्तुमिच्छति ॥ ८ ॥

मुझे पूरी आशा (आशंसा) है । सुग्रीव राजा बन जाने पर हमेशा के लिए राम का संरक्षण चाह रहा है । किन्तु यह समाधान दूर की खींचातानी है ।

नादेन—सुग्रीव की ऐसी भीषण गर्जना थी कि लोगों के होश तो उड़ते ही थे, पर्वत तक भी हिल उठते थे । कानों के पर्दे फाड़ देने वाली उसकी ऐसी गर्जना का उल्लेख कवि ने पीछे दूसरे श्लोक में भी कर रखा है ।

टीका—अपराधमिति-अन्वय:—हे विभो ! अपराधम् सुग्रीव: अनुद्दिश्य त्वयाहं परित्यक्त: युद्धे त्वत्पादशुश्रूषाम् कर्तुम् इच्छति । हे विभो !–प्रभो ! भ्रात: इत्यर्थ: अपराधम्–दोषम् अनुद्दिश्य–न निरूप्य (अपराध न बताकर) त्वया अहम् परित्यक्त:–उज्झित: सुग्रीव: युद्धे–त्वत्पा०–तव पादौ चरणौ त्वत्पादौ (ष० तत्पु०) तयो: शुश्रूषाम्–सेवाम् (ष० तत्पु०) (आपके चरणों की सेवा) कर्तुम् विधातुम् इच्छति–अभिलषति । अनुष्टुप् छन्द: ॥ ७ ॥

व्याकरण—आज्ञापयति=आ+ज्ञा+णिच्+लट् । विभु:=विभवति=प्रभवतीति वि+√भू+डु । अपराध:=अप+√राध्+घञ् । अनुद्दिश्य=न उत्+√दिश्+ल्यप् । परित्यक्त:=परि+√त्यज्+क्त: । शुश्रूषा–श्रोतुम् इच्छा इति√श्रु+सन्+अ+टाप् । कर्तुम्=√कृ+तुमुन् ।

टिप्पणी—अपराधमनुद्दिश्य—सुग्रीव के हृदय में यह बात बैठी हुई है कि उसके भाई ने उसे बिना किसी अपराध के ही देश से निकाला है । जब बड़े

हे नर-श्रेष्ठ ! आप ठहरिए । मैं (अपनी) गर्जना द्वारा मनुष्य लोक को अचेत और हिलते हुए पर्वतों वाला बना देता हूँ ॥ ७ ॥

राम—अस्तु, चलो ।

सुग्रीव—जैसी आप आज्ञा करते हैं (घूमकर)

हे प्रभो ! बिना अपराध बताए तुमने मेरा परित्याग किया है । (अत:) सुग्रीव युद्ध में तुम्हारे चरणों की सेवा करना चाहता है ॥ ८ ॥

(नेपथ्ये)

कथं कथं सुग्रीव इति ।

(ततः प्रविशति वाली, गृहीतवस्त्रया तारया सह ।)

वाली—कथं कथं सुग्रीव इति ।

तारे ! विमुञ्च मम वस्त्रमनिन्दिताङ्गि !
प्रस्रस्तवक्त्रनयने ! किमसि प्रवृत्ता ।

भाई को उसने मृत समझ लिया था, तभी वह राजगद्दी पर बैठा, जिस पर मन्त्रियों की पूरी सहमति थी । भ्रातृजाया को रखना भी कोई अपराध नहीं, क्योंकि वानर पशु होते हैं, जिनका कोई नैतिक विधान नहीं होता है । शुश्रूषा—शुश्रूषा शब्द का मुख्य अर्थ सुनने की इच्छा होता है । सुनने के लिए चाहे जाने वाली गुरु अथवा स्वामी आदि की आज्ञा भी होती है, जिसे पाकर भक्त उनका कार्य करने लगता है और उनका कार्य करना उनकी सेवा हुई, इसलिए शुश्रूषा शब्द अब सीधा सेवा के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है । किन्तु यहाँ यह लाक्षणिक है । युद्ध में चरणों की सेवा करना मुद्गर से चरणों को तोड़ना है ।

टीका—गृहीत०-गृहीतम्-आलम्बितम् वस्त्रं-वसनं (कर्मधा०) यया तथाभूतया (ब० व्री०) (आँचल पकड़े हुए) ।

तारे-अन्वयः—हे अनिन्दिताङ्गि तारे ! मम वस्त्रम् विमुञ्च । हे प्रस्रस्त-वक्त्रनयने ! किम् प्रवृत्ता असि ? अद्य तं सुग्रीवं समरे विनिपात्यमानम्, शोणित··· भ्रम् पश्य ।

अनिन्दि०—अनिन्दितानि-न निन्दितानि-गर्हितानि प्रशस्तानि इत्यर्थः (नञ् तत्पु०) अङ्गानि-अवयवाः (कर्मधा०) तस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (ब० व्री०) (हे सुन्दर अंगोंवाली !) तारे ! मम वस्त्रम्-वसनम् विमुञ्च-त्यज (आँचल छोड़ दे) प्रस्रस्त०-वक्त्रम्-मुखम् च नयने-नेत्रे च तेषां समाहारः

(नेपथ्य में) किस तरह, किस तरह ? क्या यह सुग्रीव है ?

(तदनन्तर (पति का) आँचल पकड़े हुए तारा के साथ वाली प्रवेश करता है) ।

वाली—किस तरह, किस तरह ? क्या यह सुग्रीव है ?

ओ सुन्दर अंगों वाली तारा ! मेरा वस्त्र छोड़ दे ।

ओ (भय से) उतरे हुए चेहरे और आँखों वाली ! (यह) क्या कर रही

सुग्रीवमद्य समरे विनिपात्यमानं
तं पश्य शोणितपरिप्लुतसर्वगात्रम् ॥ ९ ॥

तारा—पसीअउ पसीअउ महाराओ। अप्पेण कारणेण ण आगमिस्सइ सुग्गीओ। ता अमच्चवग्गेण सह सम्मन्तिअ गन्तव्वं। [प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। अल्पेन कारणेन नागमिष्यति सुग्रीवः। तदमात्यवर्गेण सह संमन्त्र्य गन्तव्यम्।]

वक्त्रनयनम् (समाहारद्वन्द्वः) प्रस्रस्तम्-शिथिलं वक्त्रनयनं (कर्मधा०) यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ (ब० व्री०) (हे ढोले पड़े मुख और नयनों वाली !) किं प्रवृत्ता कुर्वती असि ((यह) क्या कर रही हो ?) अद्य-अस्मिन् दिवसे तं सुग्रीवम् समरे-युद्धे विनिपात्यमानम्-विनाश्यमानम् (मारा जाता हुआ) शोणित०-शोणितेन-रुधिरेण परिप्लुतम्-परिपूर्णम् (तृ० तत्पु०) सर्वम्-निखिलम् गात्रम्-शरीरम् (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) (खून से भरे सारे शरीर वाला) पश्य-अवलोकय। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ६ ॥

व्याकरण—निन्दित-√निंद्+क्तः। विमुञ्च-वि+√मुच्+लोट् मध्य० ए०। प्रस्रस्त-√प्रस्रंस+क्तः प्रवृत्ता+प्र√वृत्+क्त+टाप्। विनिपात्यमानम्-वि+नि+√पत+णिच्+शानच्। परिप्लव-परि+प्लु+क्तः। पश्य-√दृश्+लोट् मध्य ए०।

टिप्पणी—वस्त्रं विमुञ्च—तारा नहीं चाहती थी कि उसका पति सुग्रीव से लड़ने जाय। उसे कुछ सन्देह हो गया था कि जरूर दाल में कुछ काला है, अतः उसने पति का वस्त्र पकड़ लिया और उसे खींचकर भीतर ले जा रही थी।

टीका—प्रसीदतु-प्रसन्नो भवतु, कृपां करोत्वित्यर्थः। अल्पेन-लघुना कारणेन-हेतुना न आगमिष्यति-आयास्यति। तत्र महता कारणेन भवितव्यम् इति भावः। तत्-तस्मात् कारणात् अमात्यानाम्-मन्त्रिणाम् वर्गेण-दलेन सह

हो ? आज (तू) उस सुग्रीव को युद्ध में मारा जाता हुआ (और) खून से भरे हुए शरीर वाला देख। ९ ॥

तारा—प्रसन्न हूजिए महाराज ! प्रसन्न हूजिए। सुग्रीव छोटे-मोटे कारण से नहीं आएगा। इसलिए मन्त्रि-मंडल के साथ मंत्रणा करके जाना चाहिए।

वाली—आः,

शक्रो वा भवतु गतिः शशाङ्कवक्त्रे !
शत्रोर्मे निशितपरश्वधः शिवो वा ।
नालं मामभिमुखमेत्य सम्प्रहर्तुं
विष्णुर्वा विकसितपुण्डरीकनेत्रः ॥ १० ॥

संमन्त्र्य–सम्यक् मन्त्रणां कृत्वा गन्तव्यम्–यातव्यम्–सुग्रीवेण सह युद्धं कर्तुमिति शेषः । आः–इति क्रोधे ।

शक्र इति–अन्वयः—हे शशाङ्कवक्त्रे ! शक्रो वा निशितपरश्वधः शिवो वा विकसित...त्रः विष्णुः वा मे शत्रोः गतिः भवतु, (कोऽपि) अभिमुखम् एत्य माम् प्रहर्तुम् न अलम् । शशाङ्क–शशाङ्कः–चन्द्रः तद्वत् वक्त्रं–मुखं (उपमान-तत्पु०) यस्याः तत्सम्बुद्धौ (ब० व्री०) (हे चन्द्रमुखी !) शक्रः–इन्द्रः वा–अथवा निशित०–निशित–तीक्ष्णः परश्वध०–परशुः ('द्वयोः कुठारः स्वधितिः परशुश्च परश्वधः' इत्यमरः) (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) शिवः–महादेवः (तेज कुल्हाड़े वाले महादेव) वा–अथवा विकसि०–विकसितम्–प्रफुल्लितम् यत् पुण्डरीकम्–कमलम् (कर्मधा०) तत् इव नेत्रे–नयने (उपमान तत्पु०) यस्य सः (ब० व्री०) विष्णुः (खिले हुए कमल-जैसे नेत्रों वाले विष्णु भगवान्) मे–मम शत्रोः–अरेः (शत्रु सुग्रीव के) गतिः–शरणम् आश्रय इति यावत् भवतु–जायताम् (आश्रय होवे) (तेषु कोऽपि) अभिमुखम्–मुखम् अभि इति (अव्ययी० स०) सम्मुखम् अग्रे इत्यर्थः एत्य–आगत्य माम् संप्रहर्तुम्–आहन्तुम् (मुझ पर प्रहार करने के लिए) न अलम्–न समर्थः (सक्षम नहीं) । अत्र वक्त्रस्य शशाङ्केन नेत्रस्य च पुण्डरीकेण साम्यप्रतिपादनात् उपमा, प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥१०॥

व्याकरण—शशाङ्कः–शशः–मृगविशेष इत्यमरः (खरगोश) अङ्कः–चिह्नं यस्य सः । निशित–नि+√शो (तनूकरणे) क्तः । एत्य–आ+इ+ल्यप् । संप्रहर्तुम्–सम्+प्र+√हृ+तुमुन् ।

वाली—ओह !

हे चन्द्रमुखी ! या तो इन्द्र या तेज कुल्हाड़ी वाले महादेव या फिर खिले हुए कमल-जैसे नयनों वाले विष्णु मेरे शत्रु (सुग्रीव) के (क्यों न) आश्रय (=सहायक) हो जायँ, सामने आकर मुझ पर प्रहार करने की क्षमता नहीं रखता ॥ १० ॥

तारा—पसीअउ पसीअउ महाराओ। इमस्स जणस्स अणुग्गहं दाव करेउं अरिहदि महाराओ। [प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। अस्य जनस्यानुग्रहं तावत् कर्तुमर्हति महाराजः।]

वाली – श्रूयतां मत्पराक्रमः।

तारे! मया खलु पुरामृतमन्थनेऽपि
गत्वा प्रहस्य सुरदानवदैत्यसङ्घान्।
उत्फुल्लनेत्रमुरगेन्द्रमुदग्ररूप-
माकृष्यमाणमवलोक्य सुविस्मितास्ते ॥ ११ ॥

टिप्पणी – अभिमुखमेत्य–बाली महाबली था। साथ ही उसे अपने महाबल का बड़ा अभिमान भी था। उसका इन्द्र आदि तक को भी चुनौती देने का कारण यह था कि ब्रह्मा ने उसे वर दे रखा था कि आमने-सामने की लड़ाई में तुम्हें कोई नहीं मार सकेगा। कहते हैं कि जो भी लड़ने उसके सामने आता, वह उसका बल छीन लेता था। यही कारण था कि रामने उसका 'प्रच्छन्न वध' किया।

टीका—अस्य जनस्य–मम इत्यर्थः, अनुग्रहं–कृपाम् कर्तुम् अर्हति–कर्तुम् योग्यः अस्ति। श्रूयताम्=आकर्ण्यताम् मम पराक्रमः=शौर्यम् मत्पराक्रमः (ष० तत्पु०)।

तारे इति—अन्वयः—हे तारे! पुरा अमृत-मन्थने अपि गत्वा सुर....न् प्रहस्य मया आकृष्यमाणम् उत्फुल्ल-नेत्रम् उदग्ररूपम् उरगेन्द्रम् अवलोक्य ते सुविस्मिताः खलु (जाताः)। हे तारे! पुरा=प्राचीनसमये। अमृतस्य=

तारा—प्रसन्न हूजिए महाराज! प्रसन्न हूजिए। महाराज इस समय इस जन (=मुझ) पर अनुग्रह करने योग्य हैं।

वाली—मेरा पराक्रम सुन—

हे तारा! पहले अमृत-मंथन (के समय) पर भी जाकर देवता, राक्षस और दैत्यगणों पर हँसकर मेरे द्वारा खींचे जाते हुए शेषनाग को देखकर—जिसकी आंखें फटी-सी हो रही थी और चेहरा उत्तेजित हो उठा था—वे सब बहुत चकित हो गए थे ॥ ११ ॥

तारा—पसीअदु पसीअदु महाराओ। (प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः)

वाली – आः, मम वशानुवर्तिनी भव। प्रविश्य त्वमभ्यन्तरम्।

तारा—एषा गच्छामि मन्दभाआ। (निष्क्रान्ता) (एषा गच्छामि मन्दभागा।)

सुधायाः मन्थने=मथने अपि (अमृतमंथन पर भी) गत्वा=यात्वा सुर०—सुराः=देवाश्च दानवाः=राक्षसाश्च दैत्याः=दैतेयाश्चेति ०दैत्याः (द्वन्द्वः) तेषां सङ्घान्=समूहान् (ष० तत्पु०) (देवताओं, राक्षसों, और दैत्यों के गणों को) प्रहस्य=उपहासास्पदीकृत्य (उपहास का पात्र बनाकर अर्थात् उनपर हँसकर) मया आकृष्यमाणम्=घृष्यमाणम् (मेरे द्वारा खीचे जाते) उत्फुल्ल०—उत्फुल्ले=विस्फारिते नेत्रे=नयने (कर्मधा०) यस्य तम् (ब०व्री०) (विफरी-सी, फटी-सी आँखों वाले) उदग्र० – उदग्रम्=बलात् आकर्षण उत्तेजितं भीषणमिति यावत् रूपम्=रूपम् (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) (भीषण रूप वाले) उरगाणां=सर्पाणाम् इन्द्रम्=अधीशं शेषनागमित्यर्थः (शेषनाग को) अवलोक्य=दृष्ट्वा ते=सुर...सङ्घाः सुविस्मिताः=अत्यन्तं चकिताः खलु=निश्चयेन (वे सचमुच बड़े चकित रह गए)। वसन्ततिलकावृत्तम्, लक्षणं पूर्वं दत्तमेव ॥ ११ ॥

व्याकरण— मन्थनम्=√मन्थ्+ल्युट् (भावे) दानवाः=दनोः अपत्यानि पुमांसः इति दनु+अण्। दैत्याः=दितेः अपत्यानि पुमांसः इति दिति+ण्य। दिति अथवा दनु दक्षप्रजापति की पुत्री थी जो कश्यप को ब्याही गई थी। उसी से दैत्य अथवा दानव हुए। दोनों पर्याय शब्द हैं। एक ही पर्याप्त था। सङ्घः=सम्+√हन्+अप् टिलोपः घत्वम्। प्रहस्य=प्र+√हस्+ल्यप्। आकृष्यमाणम्=आ+√कृष्+शानच् (कर्मवाच्य)। प्रफुल्ल=प्रफुल्लतीति प्र+√फुल्ल+अच् (कर्तरि)। उरगेन्द्रः=उरगाणाम् इन्द्रः, उरगः=उरसा=वक्षसा गच्छतीति उरस्×√गम्×डः सलोपश्च। अवलोक्य=अव×√लोक्+ल्यप्। सुविस्मिताः=सु×वि×√स्मि+क्तः।

टीका— हं=क्रोधोक्ती। वशम्=अधीनताम् अनुवर्तते इति वशवर्तिनी (उपपदतत्पु०) ममाज्ञापालिकेत्यर्थः (मेरी आज्ञा पर चलने वाली) अभ्यन्तरम्=

तारा—प्रसन्न हूजिए महाराज! प्रसन्न हूजिए।

वाली—हूश्! मेरी आज्ञाकारिणी बनो। तुम भीतर जाओ।

तारा—यह मंदभागिनी मैं (भीतर) जाती हूँ।

बाली—हन्त प्रविष्टा तारा । यावदहं सुग्रीवं भग्नग्रीवं करोमि ।
(द्रुतमुपगम्य) सुग्रीव ! तिष्ठ तिष्ठ ।

इन्द्रो वा शरणं तेऽस्तु प्रभुर्वा मधुसूदनः ।
मच्चक्षुष्पथमासाद्य सजीवो नैव यास्यसि ॥ १२ ॥

अन्तरम् अभिगतम् इति (प्रादितत्पु०) अन्तः इत्यर्थं (भीतर) प्रविश=प्रवेशं कुरु मन्दभागा=मन्दः=अप्रबलः भागः=भाग्यं (कर्मधा०) यस्याः सा । (ब० व्री०) (मन्दभागिनी) । हन्त । इति हर्षे । भग्नग्रीवम्—भग्ना=खण्डिता ग्रीवा=गलः (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) (टूटी हुई गर्दन वाला) द्रुतम्=शीघ्रम् उपगम्य समीपे गत्वा ।

इन्द्र इति । अन्वयः—इन्द्रः वा प्रभुः मधुसूदनः वा ते शरणम् अस्तु मच्चक्षुष्पथम् आसाद्य (त्वं) सजीवः न यास्यसि । इन्द्रः वा प्रभुः=ईशः मधुसूदनः= विष्णुः (क्या तो इन्द्र और क्या भगवान् विष्णु) ते=तव शरणम्=आश्रयः संरक्षकः इत्यर्थः अस्तु=भवतु (तेरा संरक्षक हो जाय) मम चक्षुः=नयनम् (ष० तत्पु०) तस्य पन्थानम्=मार्गम् गोचरमित्यर्थः (ष० तत्पु०) (मेरी दृष्टि के सामने) समासे पथिन् शब्दोऽकारान्तो भवति । आसाद्य=प्राप्य (प्राप्त होकर) सजीवः= जीवः=जीवनम् तेन सहितः (ब० व्री०) (जीता) न एव यास्यसि=गमिष्यसि अर्थात् त्वम् मम हस्तेन मरिष्यसि । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १२ ॥

व्याकरण—प्रभुः=प्रभवतीति प्र√भू+डु । मधुसूदनः=मधुम् (राक्षस-विशेषम्) सूदयति=हन्तीति मधु+√सूद्+ल्युट् (कर्तरि) आसाद्य=आ+√सद् णिच्+ल्यप् । जीवः=(जीवनम्)√जीव्+घञ् (भावे) ।

टीका—नियुद्धम=द्वन्द्वयुद्धम् बाहुयुद्धमिति यावत् । 'नियुद्धं बाहुयुद्धेऽथ' इत्यमरः ।

संदष्टेति-अन्वयः—वानरः सन्दष्टोष्ठः, चण्डसंरक्तनेत्रः उद्वृत्तदंष्ट्रः सन्, मुष्टिम् गाढम् कृत्वा, भीमम् गर्जन् युद्धे (जगत्) सन्दिधक्षुः संवर्त्ताग्निः यथा एव

बाली—अच्छा हुआ, तारा (भीतर) चली गई है । अब मैं सुग्रीव को टूटी हुई गर्दन वाला बना देता हूँ । (शीघ्र समीप जाकर) सुग्रीव ! ठहर, ठहर !

इन्द्र अथवा भगवान विष्णु तेरे आश्रय (क्यों न) हों, मेरे आँखों के सामने आया हुआ तू जीता नहीं जाएगा ॥ १२ ॥

इत इतः ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः ।

(उभौ नियुद्धं कुरुतः ।)

रामः—एष एष वाली,

सन्दष्टोष्ठश्चण्डसंरक्तनेत्रो मुष्टिं कृत्वा गाढमुद्वृत्तदंष्ट्रः ।

गर्जन् भीमं वानरो भाति युद्धे संवर्त्ताग्निः सन्दिधक्षुर्यथैव ॥ १३ ॥

भाति। वानरः=कपिः बालीत्यर्थः सन्द० संदष्टः=दन्तैः खण्डितः ओष्ठः=दन्तच्छदः येन सः (ब० व्री०) (दांतों से ओंठ काटे हुए) चण्ड० चण्ड=क्रोधः तेन संरक्ते= लोहिते (तृ० तत्पु०) नेत्रे=नयने (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (क्रोध से लाल हुई आँखों वाला) उद्वृ०-उद्वृत्ता=बहिर्निःसृता दंष्ट्रा=दन्तविशेषः दाढ़ इति भाषायां प्रसिद्धा (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (बाहर निकली दाढ़ वाला) मुष्टिम्=बद्धपाणिम् गाढम्=कठोरं कृत्वा=विधाय (मुट्ठी को खूब कस कर) भीमम्=भीषणं यथा स्यात्तथा गर्जन्=गर्जनं कुर्वन् (भीषण गर्जना करता हुआ) युद्धे=रणे सन्दि०=(जगत्) सन्दग्धुमिच्छुः (संसार को फूंक डालना चाहती हुई) संवर्त्ताग्निः=संवर्त्तः प्रलयः तस्य अग्निः (ष० तत्पु०) यथा=इव एव (प्रलय काल की अग्नि की तरह ही) भाति=भ्राजते (चमक रहा है) । वानरस्य संवर्त्ताग्निना साम्यप्रतिपादनात् उपमा । शालिनी वृत्तम्, तल्लक्षणं 'मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः' ॥१३॥

व्याकरण—संदष्ट=सम् + √दंश्+क्तः । उद्वृत्त–उत् + √वृत् = क्तः । कृत्वा=√कृ+क्त्वा । गर्जन्=√गर्ज्+शतृ । सन्दिधक्षुः=सम्+√दह्+सन्+उ । भाति=√भा×लट् प्रथ० ए० ।

इधर, इधर ।

सुग्रीव —जैसी महाराज आज्ञा करते हैं ।

राम—यह है बाली, यह ?

वानर (बाली) दांतों से ओंठ काटे, क्रोध में आंख लाल किये, दाढ़ (बाहर) ऊपर किये (और) भयंकर-रूप से गर्जता हुआ युद्ध में (जगत को) भस्म कर देने वाली प्रलय की अग्नि की तरह ही चमका रहा है ॥ १३ ॥

लक्ष्मणः—सुग्रीवमपि पश्यत्वार्यः,

विकसितशतपत्ररक्तनेत्रः कनकमयाङ्गदनद्धपीनबाहुः ।
हरिवरमुपयाति वानरत्वाद् गुरुमभिभूय सतां विहाय वृत्तम् ॥ १४ ॥

टिप्पणी—संवर्त्ताग्नि—जब प्रलय-काल आता है, तब समुद्र के भीतर से आग निकलती है जो सारे समुद्रों को सुखाकर जगत् के सभी पदार्थों को भस्म कर डालती है। इसे बड़वानल भी कहते हैं।

टीका—विकसितेति-अन्वयः—विकसित० कनक, (सुग्रीवः) वानरत्वात् सताम् वृत्तम् विहाय, गुरुम् अभिभूय हरिवरम् उपयाति। विकसित०—विकसितम्=प्रफुल्लम् यत् शतपत्रम् कमलम् (कर्मधा०) इव रक्ते=रक्तवर्णे (उपमान-तत्पु०) नेत्रे=नयने (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (खिले हुए कमल की तरह लाल-लाल आंखों वाला) कनक०=कनकस्य=सुवर्णस्य विकारः इति कनकमयम् यत् यत् अङ्गदम्=केयूरम् (कर्मधा०) तेन नद्धः=बद्धः (तृ० तत्पु०) पीनः=स्थूलः मांसलः इति यावत् बाहुः=भुजः (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (जिसकी हृष्ट-पुष्ट भुजा सोने के बाजूबन्द से बँधी हुई थी)। वानरत्वात्=कपित्वात् पशुत्वादित्यर्थः (वानर होने के कारण) सताम्=सत्पुरुषाणाम् वृत्तम्=आचारम् विहाय=त्यक्त्वा गुरुम्=श्रेष्ठम् ज्येष्ठभ्रातरं बालिनमिति यावत् अभिभूय=पराभूय अवज्ञां कृत्वेत्यर्थः (श्रेष्ठ की अवज्ञा करके) हरिवरम्=हरिषु=वानरेषु वरम्=श्रेष्ठम् वानरराजं बालिनमित्यर्थः उपयाति=अभियाति आक्रामतीति यावत् (वानरराज पर आक्रमण कर रहा है)। अत्र नेत्रयोः शतपत्रेण सादृश्यप्रतिपादनात् उपमा, सद्वृत्तहानेः वानरत्वकारणत्वात् काव्यलिङ्गं च। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ १४ ॥

व्याकरण—विकसित=वि+√कस्+क्त। शतपत्रम्=शतं पत्राणि यस्य तत् (सौ पँखुड़ियों वाला=कमल) कनकमयम्=कनक=मयट्। नद्ध=√नह्+

लक्ष्मण—आप सुग्रीव को भी देखिए।

खिले हुए कमल की तरह लाल-लाल आँखों तथा सोने के बाजूबन्दों से बँधी मोटी-मोटी भुजाओं वाला (वह) वानर होने के कारण सज्जनों का आचरण त्यागकर (अपने) श्रेष्ठ (भाई) का अपमान करके वानरराज (बाली) पर आक्रमण कर रहा है ॥ १४ ॥

वालिना ताडितः पतितः सुग्रीवः ।

हनूमान्—हा ! धिक् । (ससम्भ्रमं राममुपगम्य) जयतु देवः । अस्यैषावस्था ।

बलवान् वानरेन्द्रस्तु दुर्बलश्च पतिर्मम ।
अवस्था शपथश्चैव सर्वमार्येण चिन्त्यताम् ॥ १५ ॥

क्त । वानरत्वात्=वानर+त्व । वृत्तम्+√वृत्+√क्त विहाय=वि+√हा+ल्यप् । अभिभूय=अभि+√भू+ल्यप् । उपयाति=उप+या=लट् ।

टिप्पणी—गुरुमभिभूय वृत्तम् – लक्ष्मण को यह बड़ा बुरा लगा कि सदाचार के विरुद्ध छोटा भाई सुग्रीव बड़े भाई को ललकारे । सज्जन लोग बड़े भाई को पिता-तुल्य समझते हैं, देखिये मध्यमव्या०—'ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः कथितो ब्रह्मवादिभिः ।' किन्तु लक्ष्मण इस आचार-भंग का कारण उनका वानरत्व मानते हैं । वानर पशु ही ठहरे । पशुओं में सदाचार का प्रश्न ही नहीं उठता ।

टीका—ताडितः=आहतः (मारा हुआ ।) ससंभ्रमम्=संभ्रमः=वेगः अथवा आकुलत्वम् तेन सहितं यथा स्यात् तथा (ब० व्री०) (घबराहट के साथ) उपगम्य=उपेत्य (पास जाकर) अस्य=सुग्रीवस्य एषा=इयम् अवस्था=दशा (इसकी यह हालत है ।)

बलवानिति – अन्वयः – वानरेन्द्रः तु बलवान् (अस्ति) मम पतिः च दुर्बलः (अस्ति) । आर्येण अवस्था शपथः च सर्वम् एव चिन्त्यताम् ।

वानरेन्द्रः=वानराणाम् इन्द्रः=स्वामी बालीत्यर्थः (ष० तत्पु०, तु बलवान्=बली अस्तीति शेषः, (बाली तो बलवान् है) मम=मे पतिः=स्वामी सुग्रीवः इत्यर्थः च दुर्बलः=दुः=निन्दितं बलं यस्य स (ब० व्री०) (मेरा स्वामी दुर्बल है) ।

बाली ने सुग्रीव को मारा और गिरा दिया ।

हनूमान् धिक्कार है ! (घबराहट के साथ राम के पास जाकर) महाराज की जय हो । इस (सुग्रीव) की यह दशा !

वानरराज (बाली) तो बलवान् है और मेरा स्वामी (सुग्रीव) दुर्बल है । (इसकी बुरी) हालत और (अपनी) प्रतिज्ञा—सब पर ही आप विचार कीजिए ॥ १५ ॥

रामः—हनूमन् ! अलमलं सम्भ्रमेण। एतदनुष्ठीयते। [शरं मुक्त्वा]
हन्त पतितो वाली।

लक्ष्मणः—एष एष वाली,

रुधिरकलितगात्रः स्रस्तसंरक्तनेत्रः
कठिनविपुलबाहुः काललोकं विविक्षुः।

आर्येण=भवता अवस्था=दशा शपथः=बालिमारणप्रतिज्ञा च सर्वम् एव चिन्त्यताम्=विचार्यताम् (सब कुछ विचारना चाहिये)। अनुष्टुप् छन्दः॥ १५॥

व्याकरण—बलवान् बल+मतुप्। अवस्था=अव+√स्था+अङ्। चिन्त्यताम्+√चिन्त्+लोट् कर्मणि।

टिप्पणी—शपथश्चैव चिन्त्यताम्—सुग्रीव वाली के हाथों मार खाकर, लहूलुहान होकर गिर पड़ा और राम देखते रहे। इसका कारण भास ने नहीं बताया। हनूमान ने जब राम को बालि-वध के सम्बन्ध में उनकी प्रतिज्ञा की को याद दिलाई, तब राम ने बाली पर बाण-प्रहार किया। वास्तव में रामायण के अनुसार बात यह थी कि बाली-सुग्रीव दोनों भाई एक-समान थे। राम पहचान ही न सके कि कौन बाली है और कौन सुग्रीव। बुरी मार खाकर राम की शरण में आया हुआ सुग्रीव रोया–चिल्लाया तो राम ने असली कारण बता दिया और पहचान के लिए सुग्रीव के गले में पुष्पमाला डाल दी एवं फिर उसे लड़ने भेज दिया। बाद में राम के एक ही बाण ने बाली को धराशायी कर दिया।

टीका—अलम्=प्रतिषेधे अव्ययम्, एतत्-योगे च तृतीया। अनुष्ठीयते=क्रियते।

रुधिरेति—अन्वयः—रुधिर०, स्रस्त०, कठिन०, काललोकम् विविक्षुः (बाली) शर० शान्तवेगम् शरीरम् कथञ्चित् धीरम् यथा स्यात्तथा आकर्षमाणः

राम—हनुमान्। बस, बस घबराओ मत। यह किया जा रहा है। (बाण छोड़कर) लो बाली गिर गया है।

लक्ष्मण—यह बाली—

खून से लथपथ शरीर, नीचे लटकी लाल-लाल आँखों और अकड़ी हुई विशाल भुजाओं वाला, यमलोक जाना चाहता हुआ (बाली) उत्कृष्ट बाण से बींधे, वेग में ठंडे पड़े शरीर को किसी तरह धैर्य के साथ घसीटे जाता हुआ आक्रमण कर रहा है॥ १६॥

अभिपतति कथञ्चिद् धीरमाकर्षमाणः

शरवरपरिवीतं शान्तवेगं शरीरम् ॥ १६ ॥

अभिपतति । रुधिर०-रुधिरेण=रक्तेन कलितम्=युक्तम् (तृ० तत्पु०) गात्रम्=शरीरं (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (खून से लथपथ शरीर वाला) स्रस्त०-स्रस्ते=शिथिले संरक्ते०=लोहिते च (कर्मधा०) नेत्रे=नयने (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (और लाल आँखों वाला) कठिनौ= दृढौ अनम्यौ इति यावत् विपुलौ=विशालौ च (कर्मधा०) बाहू=भुजौ (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (अकड़े हुए विशाल भुजाओं वाला) कालस्य=यमस्य लोकम्=नगरमित्यर्थः (ष० तत्पु०) (यमलोक को) विविक्षुः= प्रविष्टुमिच्छुः (जाना चाहता हुआ) शरेषु=बाणेषु वरः=श्रेष्ठः (सः तत्पु०) तेन परिवीतम्=विद्धमित्यर्थः (तृ० तत्पु०) (उत्कृष्ट बाण से बींधा) शान्तः= अवसितः वेगः=गतिरयः (कर्मधा०) यस्य तत् (ब० व्री०) (वेग रहित) शरीरम्=देहम् कथमपि=केनापि प्रकारेण कृच्छ्रादित्यर्थः (किसी तरह) धीरम्=दृढम् साहसेनेत्यर्थः यथा स्यात्तथा आकर्षमाणः=आकर्षन् (घसीटता हुआ) अभिपतति=आक्रामति (आक्रमण कर रहा है) । मालिनी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ १६ ॥

व्याकरण—कलित-√कल्+क्त । स्रस्त=√स्रंस्+क्तः । विविक्षुः=वि+ विश्+सन्+उ । परि वीत=परि+वि+√इ+क्त । यह प्रयोग वैदिक है, इसका अर्थ घिरा हुआ होता है । लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग कहीं मिले, तो विरला ही मिले । यह यहाँ 'विद्ध', 'आहत' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । ऐसे प्रयोग भाषा की प्राचीनता सिद्ध करते हैं शान्त=√शम्+क्त । आकर्षमाणः=आ+√कृष्+ शानच् । कृष् धातु (भ्वादि) परस्मैपद ही होता है । इसका आत्मनेपद में प्रयोग पाणिनि व्याकरण के विरुद्ध है । कथम्=किम्+ (प्रकारार्थे) थम् कादेशश्च । अभिपतति=अभि+√पत्+लट् ।

टीका--मोहम्=मूर्छाम् उपगम्य=प्राप्य समाश्वस्य=आश्वस्तो भूत्वा, नाम्नः=रामस्य नामधेयस्य अक्षराणि=वर्णान् वाचयित्वा=पठित्वा रामम् उद्दिश्य= लक्ष्यीकृत्य ।

वाली—[मोहमुपगम्य पुनः समाश्वस्य शरे नामाक्षराणि वाचयित्वा राममुद्दिश्य]

युक्तं भो ! नरपतिधर्ममास्थितेन युद्धे मां छलयितुमक्रमेण राम ! ।
वीरेण व्यपगतधर्मसंशयेन लोकानां छलमपनेतुमुद्यतेन ॥ १७ ॥

युक्तमिति—अन्वयः—भो राम ! नरपति-धर्मम् आस्थितेन, व्यपगतधर्म-संशयेन, लोकानाम् छलम् अपनेतुम् उद्यतेन वीरेण (त्वया) युद्धे अक्रमेण माम् छलयितुम् युक्तम् ?

भो राम !=हे राम ! नर०-नराणां=पतिः=स्वामी (ष० तत्पु०) तस्य धर्मम्=कर्तव्यम् (ष० तत्पु०) आस्थितेन=आश्रितेन (राज-धर्म (पालन) में स्थित) व्यपगत०=व्यपगतः=दूरी-भूतः धर्म-संशयः=धर्मविषयक-सन्देहः (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) धर्मसंशयः=धर्मे संशयः (स० तत्पु०) (जिसका धर्म के विषय में सन्देह मिटा हुआ है) लोकानाम्=जनानाम् छलम्=कपटम् अपनेतुम्=अपाकर्तुम् उद्यतेन=सन्नद्धेन (लोगों का छल मिटाने हेतु उद्यत) वीरेण=वीरपुरुषेण त्वया इति शेषः, युद्धे=रणे अक्रमेण=क्रमः=मर्यादा, न क्रमः इत्यक्रमः (नञ्-तत्पु०) तेन मर्यादाभंगं कृत्वेत्यर्थः (मर्यादा तोड़कर) प्रच्छन्नवधो हि मर्यादा-विरुद्धो भवति । माम् छलयितुम्=प्रतारयितुम् युक्तम्=उचितम् ? नेति काकुः । प्रहर्षिणी वृत्तम्, लक्षणं पूर्वं दत्तमेव ॥ १७ ॥

व्याकरण—आस्थितेन=आ+√स्था+क्त, आ उपसर्ग लगने से स्था धातु सकर्मक बन जाता है । व्यपगत—वि+अप+√गम्+क्त । अपनेतुम्=अप+√नी+तुम् । उद्यत=उत्+√यम्+क्त ।

टिप्पणी—अक्रमेण—यहाँ से राम और बाली के मध्य 'प्रच्छन्न वध' के सम्बन्ध में विवाद छिड़ जाता है । समाज की तरह युद्ध की भी कुछ मर्यादा

बाली—(मूर्छित होकर, फिर होश में आकर, बाण पर (राम के) नाम के अक्षर बाँचकर, (और) राम को लक्ष्य करके)

हे राम ! राजधर्म पर स्थित, धर्मविषयक सन्देह से रहित, लोगों के छल को मिटाने हेतु सन्नद्ध, वीर (आप) के लिए क्या युद्ध में मुझे धोखा देना उचित है ? ॥ १७ ॥

हन्त: भो !

भवता सौम्यरूपेण यशसो भाजनेन च ।
छलेन मां प्रहरता प्ररूढमयशः कृतम् ॥ १८ ॥

भो राघव ! चीरवल्कलधारिणा वेषविपर्यस्तचित्तेन मम भ्रात्रा सह सह युद्धव्यग्रस्याधर्म्यः खलु प्रच्छन्नो वधः ।

(क्रम) हुआ करतो हैं । शत्रु को छिपकर मारना युद्धनीति के विरुद्ध है । वीर आमने-सामने हो लड़ा करते हैं । निःशस्त्र शत्रु को मारना जैसे धर्मविरुद्ध है, वैसे ही उसका प्रच्छन्नवध भी धर्म-विरुद्ध है । इसी आधार पर बाली राम द्वारा अपने प्रच्छन्नवध के औचित्य को चुनौती देता है ।

टीका—भवतेति—अन्वयः – सौम्यरूपेण, यशसः भाजनेन, छलेन माम् प्रहरता भवता अयशः प्ररूढम् कृतम् ।

सौम्य०—सौम्यम्=प्रियं रूपम्=आकारः (कर्म धा०) यस्य तेन (ब० व्री०) (सुन्दर रूपवाले) यशसः=कीर्तेः भाजनेन=पात्रेण यशोमतेत्यर्थः (ष० तत्पु०) (यश के पात्र) भवता छलेन=कपटेन प्रच्छन्नीभूय इत्यर्थः (छल पूर्वक) मां प्रहरता=मायं प्रहारं कुर्वता (मुझ पर प्रहार करते हुए) अयशः=अपकीर्तिः प्ररूढम्=अङ्कुरितम् कृतम्=विहितम् अयशः अर्जितमित्यर्थः । अत्र अयशसि पादपत्वं व्यज्यते । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १८ ॥

व्याकरण—सौम्य०—सोम इव सौम्य (सोमाट्ट्यण्) । सोम चन्द्रमा को कहते हैं । उस जैसा सुन्दर । सीधे-सादे, भव्य भला दीखने वाले को भी सौम्य कहते हैं । प्रहरता=प्र+✓हृ+शतृ+तृ० । प्ररूढ=प्र+✓रुह्+क्त । कृत= ✓कृ+क्त ।

चीर०—चीररूपम् वल्कलं चीरवल्कलम् (कर्मधा०) धारयतीति तेन (उपपद तत्पु०) (चीर-वल्कल धारण किये) वेष०—वेषेण परिधानेन विपर्यस्तम् विपरीतम् (तृ० तत्पु०) चित्तम्=मनः (कर्मधा०) यस्य तेन (ब० व्री०) अर्थात् भवतः वेषस्तु साधूनाम् अस्ति, किन्तु तद्विपरीतं मनः खलानाम् इव अस्ति । खलाः

खेद है कि हे राम !

सौम्य रूप वाले और यश के पात्र आपने छल से मुझ पर प्रहार करते हुए अपयश को अंकुरित किया है ॥ १८ ॥

रामः—कथमधर्म्यः खलु प्रच्छन्नो वध इति ?

बाली—कः संशयः ।

रामः—न खल्वेतत् । पश्य,

वागुराच्छन्नमाश्रित्य मृगाणामिष्यते वधः ।
वध्यत्वाच्च मृगत्वाच्च भवाञ्छन्नेन दण्डितः ॥ १९ ॥

एव छलं कुर्वन्ति (वेश के विरुद्ध मन वाले) युद्धे=संग्रामे व्यग्रस्य=व्यासक्तस्य (ष० तत्पु०) (व्यस्त) अधर्म्यः=धर्मात् अनपेतः इति धर्म्यः (धर्म+यत्) न धर्म्यः इत्य धर्म्यः (नञ् तत्पु०) प्रच्छन्नः=गूढ़ः अप्रकटः इत्यर्थः (प्र+✓छद्+क्त) वधः=घातः (✓हन्+अप् वधादेशः) ।

वागुरेति–अन्वयः—वागुराच्छन्नम् आश्रित्य मृगाणाम् वधः इष्यते वध्यत्वात् च मृगत्वात् च भवान् छन्नेन (मया) दण्डितः । वागुरा०—वागुरा=जालम् च छन्नम्=छदनं च तयोः समाहारः इति वागुराच्छन्नम् (समाहार द्व०) आश्रित्य= अवलम्ब्य जाल और आवरण का आश्रय लेकर) मृगाणाम्–पशूनाम् वधः= मारणम् इष्यते=अनुमन्यते (विहित है) वध्यत्वात्=वधमर्हतीति वध्यः=वधार्हः तस्य भावः तत्त्वम् तस्मात् (मारे जाने योग्य होने के कारण) मृगत्वात्=मृगस्य भावः तत्त्वात् (पशु होने के कारण) भवान् छन्नेन=प्रच्छन्नेन निभृतेनेत्यर्थः मया दण्डितः=दण्डं प्रापितः । अत्र कारणोक्तो काव्यलिङ्गम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १९ ॥

व्याकरण—वागुरा=वातीति✓वा (गति-गन्धनयोः)+उरच् गुणागम (उणा०) । छन्नम्=✓छद्+क्त (भावे) । आश्रित्य=आ+✓श्रि×ल्यप् । इष्यते=इष्✓+लट् (कर्मवाच्य) वध्य=वधम् अर्हतीति वध+यत् । छन्नेन= ✓छद्+क्त तृ० । दण्डितः=✓दण्ड्+क्तः ।

हे राम ! चीरवल्कलधारी, वेष के विपरीत मन वाले (आपने) अपने भाई के साथ युद्ध में व्यस्त हुए मेरा छिपकर सचमुच धर्म के विरुद्ध वध किया ।

राम—छिपकर वध क्या सचमुच धर्म के विरुद्ध है ?

बाली—इसमें क्या सन्देह ।

राम—सचमुच यह नहीं । देखो—

जाल और छिपाव का आश्रय लेकर पशुओं का वध अनुमत है । वध-योग्य और पशु होने कारण छिपे हुए मैंने आपको दण्ड दिया है ॥ १९ ॥

बाली--दण्डय इति मां भवान् मन्यते ।

रामः--कः संशयः ।

बाली—केन कारणेन ?

रामः--अगम्यागमनेन ।

बाली –अगम्यागमनेनेति ? एषोऽस्माकं धर्मः ।

रामः—ननु युक्तं भोः !

भवता वानरेन्द्रेण धर्माधर्मौ विजानता ।
आत्मानं मृगमुद्दिश्य भ्रातृदाराभिमर्शनम् ॥ २० ॥

टिप्पणी--मृगाणाम्–मृग शब्द की व्युत्पत्ति–मृगयते=अन्वेषयति तृणादिकम् इति √मृग (मार्गणे कण्ड्वादि)+कः (कर्तरि) यों की जाती है, किन्तु यास्क 'मार्ष्टि=गच्छतीति √मृज् (गतिशुद्धयोः)+घः' ऐसी व्युत्पत्ति करते हैं। दोनों व्युत्पत्तियों में मृग शब्द का पशु-सामान्य हरिण, गौ, व्याघ्र आदि अर्थ होता है, जो यहाँ अभिप्रेत है। 'शरीररूपेण मृगाश्चरन्ति' 'मृगेन्द्र' इत्यादि स्थलों में मृग पशु-सामान्य का हो वाचक है। यह विशेष अर्थ में पशु-विशेष अर्थात् हरिण का भी वाचक है।

टीका – दण्डयः=दण्डमर्हतीति (दण्ड×यत्) दण्डयोग्यः । अगम्या=गन्तुम्=अभिगन्तुम्. संभोक्तुम् योग्या इति गम्या, न गम्या इत्यगम्या (नञ् तत्पु०) तस्यां गमनम्=संभोगः (सं० तत्पु०) (अभिगमन करने अयोग्य के साथ अभिगमन करने से) ननु–प्रश्ने ।

भवतेति—अन्वयः—धर्माधर्मौ विजानता वानरेन्द्रेण भवता मृगम् उद्दिश्य (ते) भ्रातृ० युक्तम् ?

बाली—'दण्डनीय हे' क्या ऐसा आप मुझे मानते हैं ?

राम—(इसमें) सन्देह क्या ?

बाली—किस कारण ?

राम—अगम्या के साथ अभिगमन के कारण !

बाली—अगम्या के साथ अभिगमन ? यह हमारा धर्म है ।

राम—अरे, धर्म और अधर्म को जानते हुए वानरों के स्वामी आपके लिए अपने को पशु बताकर भाई की पत्नी के साथ अभिगमन करना क्या उचित है ?

बाली––भ्रातृदाराभिमर्शनेन तुल्यदोषयोरहमेव दण्डितो न सुग्रीवः ?

रामः—दण्डितस्त्वं हि दण्डयत्वाद्, अदण्डयो नैव दण्डयते ।

बाली––

सुग्रीवेणाभिमृष्टाऽभूद् धर्मपत्नी गुरोर्मम ।
तस्य दाराभिमर्शेन कथं दण्डयोऽस्मि राघव ! ॥ २१ ॥

धर्मश्च अधर्मश्च (द्वन्द्वः) तौ=पुण्यपापे इत्यर्थः विजानता=बुध्यमानेन (धर्म और अधर्म को जानते हुए] वानराणाम्=कपीनाम् इन्द्रेण=स्वामिना [ष० तत्पु०] भवता=त्वया आत्मानम्=स्वम् मृगम्=पशुम् उद्दिश्य= कथयित्वा [पशु बताकर] भ्रातृ०–भ्रातुः=अनुजस्य सुग्रीवस्येत्यर्थः दाराणाम्= पत्न्याः रुमायाः इति यावत् [ष० तत्पु०] अभिमर्शनम्=आधर्षणम् अभिगमन-मिति यावत् [ष० तत्पु०] (भाई की पत्नी के साथ अभिगमन) युक्तम्= उचितम् ? अनुष्टुप् छन्दः ॥ २० ॥

व्याकरण – विजानता=वि+√ज्ञा+शतृ+तृ० । उद्दिश्य=उत्+√दिश्+ ल्यप् । अभिमर्शनम्=अभि+√मृश्–ल्युट् ।

टीका – तुल्य०=तुल्यः समानः दोषः=अपराधः [कर्मधा०] ययोः तथा भूतयोः [ब० व्री०] [समान रूप से अपराधी [बने हुए] हम दोनों में से] दण्डितः=दण्डं प्रापितः ।

सुग्रीवेति–अन्वयः— सुग्रीवेण गुरोः मम धर्मपत्नी अभिमृष्टा अभूत् । तस्य दाराभिमर्शेन, हे राघव ! (अहम्) कथम् दण्डयः अस्मि । गुरोः=श्रेष्ठस्य ज्येष्ठभ्रातुरित्यर्थः धर्मपत्नी=भार्या तारा इत्यर्थः अभिमृष्टा=अभिगता अभूत्

बाली––भाई की पत्नी के साथ अभिगमन करने के कारण समानरूप से दोनों अपराधियों में से मुझे ही दण्ड दिया गया, सुग्रीव को नहीं ।

राम—दण्डनीय होने के कारण तुम्हें दण्ड दिया गया, अदण्डनीय सुग्रीव को दण्ड नहीं दिया गया ।

बाली—मुझ बड़े (भाई) की धर्मपत्नी के साथ सुग्रीव ने अभिगमन किया था । हे राघव ! उसकी पत्नी के साथ अभिगमन करने से मैं कैसे दण्डनीय हूँ ? ॥ २१ ॥

रामः—न त्वेव हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य यवीयसो दाराभिमर्शनम् ।

वाली—हन्त अनुत्तरा वयम् । भवता दण्डितत्वाद् विगतपापोऽहं ननु ।

रामः—एवमस्तु ।

[उसके साथ अभिगमन किया]। दाराणाम् पत्न्याः अभिमर्शन=अभिगमनेन दण्ड्यः=दण्डम् अर्हतीति दण्डनीयः इत्यर्थः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २१ ॥

व्याकरण—धर्मपत्नी—धर्मेण=शास्त्रीयविधि-विधानेन (कृता) पत्नी (तृ० तत्पु०)। अभिमृष्टाः=अभि+√मृश् क्त । अभिमर्शः—अभि+√मृश्+घञ् । दण्ड्यः=दण्ड+यत् । ज्येष्ठः=अयम् एषाम् अतिशयेन वृद्धः इति वृद्ध+इष्ठन् ततो ज्यादेशः । बहुतों में जो सबसे बड़ी आयु का हो, उसे ज्येष्ठ कहते हैं। यहाँ बाली और सुग्रीव दो ही भाई थे, इसलिये यहाँ ज्यायान् प्रयोग अपेक्षित था, किन्तु साधारण लोकव्यवहार में दोनों में भी बड़े के लिए ज्येष्ठ शब्द का प्रयोग हो जाता है। यवीयसः=अयम् अनयोः अतिशयेन युवा इति युवन्+ईयसुन् यवीयान् कनीयान् इत्यर्थः तस्य । अनुत्तराः=न उत्तरम् (नञ् तत्पु०) येषां ते (ब० व्री०)। विगतपापः=विगतम्=अपेतं पापम् (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०)।

टिप्पणी—अनुत्तरा वयम्—रामायण में 'प्रच्छन्न वध' के औचित्य और अनौचित्य पर बाली और राम के बीच लम्बा विवाद है। वैसे तो धर्मशास्त्रानुसार हिंसक पशुओं के अतिरिक्त अन्य पशुओं का वध निषिद्ध है। वानर अवध्य पशुओं में आता है। उसके वध पर मनु ने तो प्रायश्चित्त तक का विधान कर रखा है। वास्तव में 'प्रच्छन्न वध' का असली कारण बाली को ब्रह्मा द्वारा मिला हुआ वरदान था, जिससे कोई भी सामने आकर उससे नहीं लड़ सकता था। तभी तो बाली ने चुनौती दी कि क्या शक्र, क्या शिव और क्या विष्णु कोई भी सामने आकर मुझ पर प्रहार नहीं कर सकता। हमारे विचार से इसी कारण राम ने बाली का प्रच्छन्न वध किया, पशु होने के कारण नहीं।

राम—किन्तु बड़े भाई द्वारा छोटे भाई की पत्नी के साथ अभिगमन कभी नहीं (किया जाना चाहिए)।

बाली—खेद है हमारे पास उत्तर नहीं है। आप द्वारा दण्ड दिये जाने के कारण मैं (अब) पाप-मुक्त हो गया न ?

सुग्रीवः—हा धिक् ।

करिकरसदृशौ गजेन्द्रगामिस्तव रिपुशस्त्रपरिक्षताङ्गदौ च ।
अवनितलगतौ समीक्ष्य बाहू हरिवर ! हा पततीव मेऽद्य चित्तम् ॥२२॥

'दाराभिमर्श' वाला अपराध जब बाली ने दोनों में समान बताया, तो राम ने बाली द्वारा सुग्रीव की पत्नी रुमा के साथ किया हुआ अभिगमन अक्षम्य बताया जब कि सुग्रीव द्वारा बाली की पत्नी तारा के साथ किये हुए अभिगमन की ओर ध्यान नहीं दिया । ठीक है, बड़ा भाई पिता के समान होता है और छोटा भाई पुत्र-तुल्य । इसी लिए छोटे भाई की पत्नी पुत्र-वधू के समान मानी गई है । वह सर्वथा अगम्या है । किन्तु बड़े भाई की पत्नी भी तो मातृतुल्य होती है । मनु[1] ने जहाँ छोटे भाई की पत्नी को बडे भाई की स्नुषा कहा है, वहाँ बड़े भाई की पत्नी छोटे भाई की गुरुपत्नी बना रखी है । स्वयं लक्ष्मण इसके उदाहरण हैं । सुग्रीव द्वारा इकट्ठे करके लाए हुए सीता के आभूषणों को पहचानने के लिए राम द्वारा पूछे जाने पर लक्ष्मण का उत्तर देखिए:—

केयूरे नाभिजानामि न च जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

वास्तव में धर्माधर्म का विवेचन करना बड़ा कठिन काम है । धर्म बड़ी दुर्ज्ञेय और सूक्ष्म वस्तु है । अन्ततो गत्वा इसी आधार पर राम ने बाली को निरुत्तर किया:—

'सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञेयः सतां धर्मः प्लवंगम ।' वस्तुतः राम 'शरणागतवत्सल' और 'सत्यप्रतिज्ञ' थे । सुग्रीव उनकी शरण में आ गया था । उसकी सहायता हेतु उन्होंने बालि-वध की प्रतिज्ञा कर ली थी, अतः बाली को मरना ही था ।

राम—ऐसा ही हो ।

सुग्रीव—हा ! धिक्कार है ।

हे गजराज की-सी गति वाले वानरराज ! गज की सूँड के समान, शत्रु के शस्त्र से टूटे पड़े बाजूबन्दों वाली भूतल पर पड़ी हुई तुम्हारी भुजाओं को देखकर हाय ! मेरा मन आज बैठा-सा जा रहा है ॥ २२ ॥

---

१. भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा ।
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता ॥ (मनु० ९।५७) ।

(नेपथ्ये)

हा हा महाराओ।

वाली—सुग्रीव ! संवार्यतां संवार्यतां स्त्रीजनः। एवंगतं नार्हति मां द्रष्टुम्।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः। हनूमन् ! एवं क्रियताम्।

टीका--करोति-अन्वयः—हे गजेन्द्रगामिन् हरिवर ! करि०, रिपुशस्त्र० अवनि० च तव बाहू समीक्ष्य हा ! मे चित्तम् अद्य पतति इव।

गजेन्द्र०—गजानाम्=इन्द्रः पतिः (ष० तत्पु०) (गजराज की चाल वाले) हरिषु=वानरेषु वर=श्रेष्ठ (वानरराज !) करि०--करिणः=हस्तिनः करः=शुण्डदण्डः (ष० तत्पु०) तेन सदृशौ=समानौ [तृ० तत्पु०] हाथी की सूँड की तरह रिपु०--रिपोः=शत्रोः शस्त्रेण=आयुधेन परिक्षते=भग्ने अङ्गदे= केयूरे (कर्मधा०) ययोः तौ [ब० व्री०] (शत्रु के शस्त्र के टूटे पड़े बाजूबन्दों वाले); अवनि०=अवन्याः=पृथिव्याः तलम्=अधः (ष० तत्पु०) गतौ=प्राप्तौ (द्वि० तत्पु०) (भूतल पर पड़े) तव=ते बाहू=भुजौ समीक्ष्य=दृष्ट्वा (भुजाओं को देखकर) हा !=खेदे मे=मम चित्तम्=मनः पतति=स्रंसते इवेति संभावनायाम् (बैठा-सा जा रहा है)। अत्र बाह्वोः करिकरेण गत्याश्च गजेन्द्रेण सादृश्य-प्रतिपादनात् उपमयोः, संसृष्टिः, चित्तस्य पतनसंभावनात् उत्प्रेक्षा चापि संसृज्यते। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ २२ ॥

व्याकरण—०गामिन्–√गम्+णिनि। सदृश=समानं दृश्येति इति समान+√दृश्+कञ् समानस्य सादेशश्च। परिक्षत=परि+√क्षण्+क्त। समीक्ष्य= सम्+√ईक्ष्+ल्यप्। पतति=√पत्+लट्।

वाली—सुग्रीव ! बस, बस, शोक मत करो। संसार का धर्म (ही) ऐसा है।

[नेपथ्य में] हाय ! हाय ! महाराज।

वाली—सुग्रीव ! रोको, रोको स्त्रियों को। ऐसी हालत में पड़े हुए मुझे वे देखने योग्य नहीं हैं।

सुग्रीव—जैसी महाराज की आज्ञा। हनूमान् ! ऐसा करो।

हनूमान्—यदाज्ञापयति कुमारः। (निष्क्रान्तः।)

(ततः प्रविशत्यङ्गदो हनूमांश्च)

हनूमान्—अङ्गद ! इत इतः।

अङ्गदः—

श्रुत्वा कालवशं यान्तं हरिमृक्षगणेश्वरम्।
समापतितसन्तापः प्रयामि शिथिलक्रमः॥ २३॥

टीका तथा व्याकरणम्—अलम् विषादेन=शोकेन 'अलम्' योगे तृतीया। लोकस्य=जगतः धर्मः=स्वभावः ईदृशः=एतादृशः अस्तीति शेषः=अर्थात् 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्'। ईदृशः=अयम् इव दृश्यते इति इदम्+√दृश्+कञ्। संवार्यताम्=निवार्यताम्, निरुद्धयतामिति यावत्, नि+√वृ+णिच्+लोट् (कर्मणि) स्त्रीजनः=स्त्रियः। एवं गतम्=एताम् अवस्थां प्राप्तम्, क्रियमाणमित्यर्थः, द्रष्टुम्=अवलोकयितुम् न अर्हति=न योग्यः अस्ति। शोकविह्वलीभूय स्त्रियः बहु विलपिष्यन्तीति भावः।

टीका—श्रुत्वेति—अन्वयः—ऋक्षगणेश्वरम् हरिम् कालवशम् यान्तम् श्रुत्वा समापतित-सन्तापः (अहम्) शिथिल-क्रमः (सन्) प्रयामि।

ऋक्षाः=मल्लूकाः तेषां गणः=समूहः (ष० तत्पु०) तस्य ईश्वरम्=स्वामिनम् हरिम्=वानरम् वानराजम् इत्यर्थः (ष० तत्पु०) (भालुओं के स्वामी वानर (बाली) को) कालस्य=मृत्योः वशम्=अधीनताम् (ष० तत्पु०) यान्तम्=गच्छन्तम् (काल के अधीन होते हुए) श्रुत्वा=आकर्ण्य समा०—समापतितः=समागतः सन्तापः=शोकः (कर्मधा०) यस्मिन् सः (ब० व्री०) (जिस पर शोक आ पड़ा है) शिथिलः=मन्दः क्रमः=पादप्रक्षेपः (कर्मधा०)

हनूमान्—जैसी कुमार आज्ञा देते हैं। [चला जाता है]

[तदनन्तर अंगद और हनूमान् प्रवेश करते हैं]

हनूमान्- अंगद ! इधर, इधर।

अंगद—भालुओं के गण के स्वामी वानर (-राज) को मृत्यु के वश में जाते हुए सुनकर शोक में पड़ा हुआ मैं ढीले पड़े पगों से आ रहा हूँ (अर्थात् मेरे पैर ढीले पड़ रहे हैं) ॥२३॥

हनूमन् ! कुत्र महाराजः ?

हनूमान्—एष महाराजः,

शरनिर्भिन्नहृदयो विभाति धरणीतले ।
गुहशक्तिसमाक्रान्तो यथा क्रौञ्चाचलोत्तमः ॥ २४ ॥

यस्य सः (ब० व्री०) (ढीले पड़े हुए पगों वाला) प्रयामि=गच्छामि । काव्य-लिंगालंकारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २३ ॥

व्याकरण—यान्तम्=√या+शतृ द्वि० ए० । श्रुत्वा=√श्रु+क्त्वा । समापतित=सम्+आ√पत्+क्तः । सन्तापः=सम्+√तप्+घञ् । क्रमः=√क्रम्+घञ् । प्रयामि=प्र+√या+लोट् उ० ।

टीका—शरेति—अन्वयः—शर० धरणीतले यथा गुह० उत्तमः क्रौञ्चा० (तथा) विभाति ।

शरेति—शरेण=बाणेन निर्भिन्नम्=विद्धम् (तृ० तत्पु०) हृदयम्=वक्षः (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (बाण से बींधे हुए हृदय वाला) धरण्याः= पृथिव्याः तले=पृष्ठे (ष० तत्पु०) (भूतल पर) यथा=येन प्रकारेण गुह०—गुहस्य=कार्तिकेयस्य शक्त्या=प्रक्षेपास्त्रेण (ष० तत्पु०) समाक्रान्तः=आहतः (तृ० तत्पु०) (स्वामि कार्तिकेय को शक्ति द्वारा आहत) उत्तमः=श्रेष्ठः क्रौञ्चः चासौ अचलः=पर्वतः (कर्मधा०) (क्रौञ्च-पर्वत) विभाति=विराजते दृश्यते इत्यर्थः) । अत्र वालिनः क्रौञ्चाचलेन साम्यप्रतिपादनात् उपमालंकारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २४ ॥

व्याकरण—निर्भिन्न—निर्+√भिद्+क्त । धरणी—धरति जीवादीनीति √धृ+इनि+ङीष् । समाक्रान्तः=सम्+आ+√क्रम्+क्त ।

टिप्पणी—गुह—गुह स्वामी कार्तिकेय को कहते हैं जो महादेव के पुत्र हैं । शिवजी से शस्त्र-विद्या सीखते हुए एक बार उन्होंने अपने पिता को शस्त्र-

---

हनूमान् ! कहाँ हैं महाराज ?

हनूमान्—ये रहे महाराज—

जो बाण द्वारा हृदय में बींधे हुए, भूतल पर (पड़े) ऐसे दिखाई दे रहे हैं जैसे स्वामी कार्तिकेय की शक्ति द्वारा बींधा हुआ क्रौञ्च पर्वत ॥ २४ ॥

अङ्गदः—(उपसृत्य) हा महाराज !

अति बलसुखशायी पूर्वमासीर्हरीन्द्रः
क्षितितलपरिवर्ती क्षीणसर्वाङ्गचेष्टः ।
शरवरपरिवीतं व्यक्तमुत्सृज्य देहं
किमभिलषसि वीर स्वर्गमद्याभिगन्तुम् ॥ २५ ॥

कौशल दिखाने हेतु क्रौञ्च पर्वत पर अपनी तीक्ष्ण शक्ति मारी जिससे वह फट गया । पर्वत के बीच एक दरार पड़ गई और गलियारा बन गया है । कहते हैं कि इसी दरार से होकर हंस मानसरोवर जाया करते हैं । इसे आजकल नीति दर्रा कहते हैं जो गढ़वाल में बद्रीनाथ धाम के पास है । यहाँ से तिब्बत जाया जाता है । वर्तमान में भारत सरकार ने इस दर्रे पर अपनी सेना धर रखी है । कार्तिकेय द्वारा क्रौञ्च-पर्वत-भेदन का उल्लेख भास ने अपने अन्य नाटकों में भी कर रखा है—जैसे 'बालचरित' (क्रौञ्चं यथा शक्तिधरः प्रकृष्टः' (द्वि०), 'बालेन हि पुरा क्रौञ्चः स्कन्देन निधनं गतः' (तृ०), 'प्रतिमा'—'भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यसि' (पं०) ।

क्रौञ्चाचलोत्तमः—व्याकरण की दृष्टि से यह प्रयोग संदिग्ध है । 'क्रौञ्चाचलः+उत्तमः' में गुण न होकर 'क्रौञ्चाचल उत्तमः' ऐसा होना चाहिए । यदि समास करें तो विशेषण पूर्व में आकर उत्तमक्रौञ्चाचलः बनेगा । क्रौञ्चाचलेषु उत्तमः' ऐसा सप्तमी तत्पु० भी नहीं बन सकता, क्योंकि क्रौञ्चाचल एक ही है, बहुत नहीं । तमप्-प्रत्ययान्त विशेषण बहुतों में ही आया करता है । हाँ, यदि 'उत्तम' शब्द का अर्थ यहाँ उच्चतम भाग लें तो क्रौञ्चाचलस्य उत्तमः= उच्चतमो भागः यह षष्ठी तत्पु० ठीक बैठ जाता है । हमारे विचार से भास का यही अभिप्राय होगा । अतिप्राचीन होने से भास की भाषा में वैदिक छाप रहती है । वैदिकी में प्रायः विशेष्य न देकर विशेषण द्वारा ही उसका बोध करा दिया जाता है । यास्क की भाषा में भी यह बात पाई जाती है ।

अंगद—(पास जाकर) हाय ! महाराज !

वानरराज (आप) पहले महान् बल के कारण सुख के साथ सोने वाले थे, (किन्तु अब) सभी अंगों की चेष्टाओं से क्षीण हुए भूतल पर लोटने वाले बने हुए हो । हे वीर, श्रेष्ठ बाण द्वारा बींधे हुए शरीर को छोड़कर क्या तुम हमारे देखते-देखते आज स्वर्ग सिधारना चाहते हो ? ॥२५॥

(इति भूमौ पतति ।)

वाली--अङ्गद ! अलमलं विषादेन, भोः सुग्रीव !

मया कृतं दोषमपास्य बुद्धया त्वया हरीणामधिपेन सम्यक् ।
विमुच्य रोषं परिगृह्य धर्मं कुलप्रवालं परिगृह्यतां नः ॥ २६ ॥

टोका—अतीति—अन्वयः—हरीन्द्रः (त्वम्) पूर्वम् अति० आसीः (किन्तु इदानीम्) क्षीण० (सन्) क्षिति० (असि)। हे वीर ! शर० देहम् उत्सृज्य (त्वम्) व्यक्तम् अद्य स्वर्गम् अभिगन्तुम् अभिलषसि किम् ?

हरीणाम्=वानराणाम् इन्द्रः=ईशः (ष० तत्पु०) (वानरों के स्वामी) पूर्वम्=प्राक् अति०=अतिशयितम् बलम् अतिबलम् (प्रादि तत्पु०) तेन सुखेन शयितुं शीलं यस्य सः (उपपद तत्पु०) (बड़े भारी बल के कारण सुख के साथ सोने वाले) आसीः=अभवः क्षीण०—सर्वाणि च तानि अङ्गानि=अवयवाः (कर्मधा०) सर्वाङ्गाणां चेष्टाः=क्रियाः (ष० तत्पु०) क्षीणाः=नष्टाः सर्वाङ्गचेष्टा। यस्य सः (ब० व्रो०) (सभी अंगों की क्षीण हुई चेष्टाओं वाले) क्षिति०—क्षित्याः=पृथिव्याः तले=पृष्ठे (ष० तत्पु०) परिवर्तते-विलुठतीति ०वर्ती (उपपद तत्पु०) । हे (भूतल पर लुढकने वाले) । हे वीर ! शर०—शरेषु=बाणेषु वरः=श्रेष्ठः (ष० तत्पु०) तेन परिवीतम्=विद्धम् (तृ० तत्पु०) देहम्=शरीरम् उत्सृज्य=त्यक्त्वा व्यक्तम्=अस्माकं समक्षम् अद्य=अस्मिन् दिवसे स्वर्गम्=स्वर्गलोकम् (परलोक) अभिगन्तुम्=अभियातुम् अभिलषसि= इच्छसि (जाना चाहते हो) किम्=इति प्रश्ने । मालिनो वृत्तम् ॥ २५ ॥

व्याकरण—शायी=√शी×णिन् : आसीः=√अस्+लङ् मध्य० ए०। ०परिवीत=परि+√वृत्+णिन्। क्षीण=√क्षि+क्त । परिवीत–परि+वि+√इण्+क्त । उत्सृज्य=उत्+√सृज्+ल्यप् । अभिगन्तुम्=अभि+√गम्+तुम् । अभिलषसि=अभि+√लष्+लट् मध्य० ।

(भूमि पर गिर गया)

वाली—अंगद ! बस, बस, शोक मत करो । हे सुग्रीव ! मुझसे किया गया अपराध मन से अच्छी तरह हटाकर, क्रोध त्याग, धर्म का ग्रहण करके वानरों के स्वामी तुम्हारे द्वारा हमारे कुल का अंकुर (अंगद) अपनाया जाय ॥ २६ ॥

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति महाराजः।

वाली—भो राघव ! यस्मिन् कस्मिन् वापराधेऽनयोर्वानरचापलं क्षन्तुर्महसि।

रामः—बाढम्।

वाली—सुग्रीव ! प्रतिगृह्यतामस्मत्कुलधनं हेममाला।

सुग्रीवः—अनुगृहीतोऽस्मि। (प्रतिगृह्णाति)।

टीका—मयेति। अन्वयः-हरीणाम् अधिपेन त्वया मया कृतम् दोषम् बुद्धया सम्यक् अपास्य, रोषम् विमुच्य, धर्मम् परिगृह्य नः कुलप्रवालम् परिगृह्यताम्। हरीणाम्=वानराणाम् अधिपेन=स्वामिना त्वया मया कृतम्=अनुष्ठितम् दोषम्=अपराधम् दाराभिमर्शरूपम् (मेरे किये अपराध को) बुद्धया=मनसा सम्यक्=पूर्णतया (मन से अच्छी तरह) अपास्य=दूरीकृत्य (हटाकर) रोषम्=क्रोधम् विमुच्य=परित्यज्य (क्रोध छोड़कर) धर्मम्=नैतिककर्तव्यम् परिगृह्य=स्वीकृत्य (धर्म अपनाकर) नः=अस्माकम् कुलस्य=वंशस्य प्रवालम्=अङ्कुरः (ष० तत्पु०) (कुल का अंकुर) परिगृह्यताम्=स्वीक्रियताम् (स्वीकार किया जाय)। अत्र अङ्गदे कुलप्रवालस्य आरोपात् रूपकम्। उपेन्द्रवज्रा वृत्तम्। तल्लक्षणं यथा—'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' ।। २६ ।।

व्याकरण—अधिपः = अधिकं पातीति अधिक+√पा + क। कृतम्=√कृ+क्त। बुद्धिः=बुद्धयते अनया इति √बुध्+क्तिन् करणे। अपास्य=√अप+अस्+ल्यप्। रोषः=√रुष्+घञ्। विमुच्य=वि+√मुच्+ल्यप्। धर्मः=ध्रियते लोकोऽनेनेति √धृ+मन्। परिगृह्य=परि+√ग्रह्+ल्यप्। परिगृह्यताम्=परि+√ग्रह्—लोट् कर्मवाच्य।

सुग्रीव—जैसी महाराज की आज्ञा।

वाली—हे राघव ! जिस किसी भी अपराध में इन (हम) दोनों वानरों की चपलता क्षमा कीजिए।

राम—अच्छा।

वाली—सुग्रीव ! हमारी कुल-सम्पत्ति (यह) सुवर्णमाला लो।

सुग्रीव—अनुगृहीत हूँ।

वाली--हनूमन् ! आपस्तावत् ।

हनूमान्--यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) इमा आपः ।

बाली--(आचम्य) परित्यजन्तीव मां प्राणाः । इमा गङ्गाप्रभृतयो महानद्य एता उर्वश्यादयोऽप्सरसो मामभिगताः । एष सहस्रहंसप्रयुक्तो वीरवाहो विमानः कालेन प्रेषितो मां नेतुमागतः । भवतु । अयमयमागच्छामि । (स्वर्यातः ।)

टीका-व्याकरणम्—अनयोः=आवयोः=बालि-सुग्रीवयोरित्यर्थः वानराणां चापलम्=चपलस्य भावम् (चपल+अण्) चाञ्चल्यम् इत्यर्थः क्षन्तुम्= (√क्षम्+तुम्) मर्षयितुम् अर्हसि=योग्योऽसि बाढम्=आम् । प्रतिगृह्यताम्= प्रति+ √ग्रह् + लोट् (कर्मवाच्य) स्वीक्रियताम् । अस्माकं कुलस्य धनम् (ष० तत्पु०) संपत्तिः । हेम्नः=सुवर्णस्य माला (ष० तत्पु०) । अनुगृहीतः= (अनु+√ग्रह्+क्त) उपकृतः । आपः=जलम् अप्-शब्दो नित्यबहुवचनान्तः । भासस्य नाटकेषु रङ्ग-मञ्चे 'आपस्तावत्' इति बहुलं दृश्यते । परित्यजन्ति= उज्झान्ति । गङ्गा प्रभृति यासां ताः (ब० व्री०) उर्वशी=अप्सरोविशेषः आदिः=यासां ताः (ब० व्री०) माम् अभिगताः=प्रत्यागताः । सहस्रेण= सहस्रसंख्यकैः हंसैः=पक्षिविशेषैः प्रयुक्तः=आकृष्टः इत्यर्थः वीरान्=युद्धे मृतान् वीरपुरुषान् वहति=धारयतीति (वीर+√धृ+णिच्+इन्, उपपद तत्पु०) (वीरों को ले जाने वाला) विमानः=यानम् रथ इति यावत्, कालेन=यमेन प्रेषितः= प्रेरितः नेतुम्=वोढुम् (√नी+तुम्) संस्कारः=अन्त्येष्टिः दाहक्रियेत्यर्थः ।

बाली—हनूमान् ! जल तो लाओ ।

हनूमान्—जैसी महाराज की आज्ञा । (जाकर और प्रविष्ट होकर) यह रहा जल ।

बाली—(आचमन करके) प्राण मुझे छोड़ते से जा रहे हैं । ये गंगा आदि महानदियाँ, ये उर्वशी आदि अप्सरायें मेरी ओर आ रही हैं । यम द्वारा भेजा हुआ, एक हजारों हंसों से खींचा जाने वाला यह वीर-वाहक विमान मुझे ले जाने आ गया है । अच्छा, यह मैं जा रहा हूँ । [स्वर्ग सिधार गया ।]

सब—हा हा महाराज ! ।

रामः—हन्त स्वर्गं गतो वाली । सुग्रीव ! क्रियतामस्य संस्कारः ।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देवः ।

अभिषेकः = राज्याभिषेकः (अभि+√सिच्+घञ्) कल्प्यताम् = क्रियताम् (√कल्प्+लोट् कर्मवाच्य) ।

टिप्पणी–परित्यजन्तीव—यही भाव और लगभग यही शब्दावली भास ने 'ऊरुभङ्ग' में भी प्रयुक्त कर रखी है—राजा–परित्यजन्ति मे प्राणाः । इमेऽत्रभवन्तः शन्तनुप्रभृतयो पितृ-पितामहाः । …(इमा०) उर्वश्यादयोऽप्सरसो मामभिगताः । इमे मूर्तिमन्तो महार्णवाः । एता गङ्गाप्रभृतयो महानद्यः । एष सहस्र-हंसप्रयुक्तो वीरवाही विमानः कालेन प्रेषितः अयमयमागच्छामि (स्वर्गं गतः) ।"

युद्धस्थल में वीर-गति को प्राप्त हुए पुरुषों को स्वर्ग प्राप्त होता है, जहाँ अप्सराएँ उनका स्वागत करने खड़ी रहती हैं—यह भारतीय धारणा बड़ी प्राचीन है । कृष्ण ने अर्जुन को भी यही कहा है—'हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्' । उन्हें स्वर्ग ले जाने हेतु विमान आता है ।

स्वर्यातः—वैसे भारतीय नाट्य-विधान के अनुसार रंगमञ्च पर युद्ध और मृत्यु दोनों का निषेध है । इसीलिए परवर्ती कालिदास आदि कलाकारों के सभी नाटक संयोगान्त (कॉमेडी) मिलते हैं, वियोगान्त (ट्रैजिडी) नहीं, किन्तु भास इस नियम के विरुद्ध चलते हैं । उनके नाटकों में रंगमञ्च पर युद्ध और मृत्यु दोनों मिलते हैं । 'प्रतिमा' 'बालचरित' 'ऊरुभङ्ग' में भी हम

सब—हाय, हाय ! महाराज ।

राम—खेद है । बाली स्वर्ग सिधार गया है । सुग्रीव ! इसका दाह-संस्कार करो ।

सुग्रीव—जैसी आपकी आज्ञा ।

रामः--लक्ष्मण ! सुग्रीवस्याभिषेकः कल्प्यताम् ।

लक्ष्मणः--यदाज्ञापयत्यार्यः ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

प्रथमोऽङ्कः ।

रंगमञ्च पर युद्ध और मृत्यु देखते हैं। इससे भास की प्राचीनता सिद्ध होती है। ये उस समय के हैं जब तथाकथित नाट्य-विधान नहीं बना था।

प्रथमोऽङ्कः समाप्तः

—: ० :—

राम—लक्ष्मण ! सुग्रीव का राज्याभिषेक करो।

लक्ष्मण—जैसी आपकी आज्ञा।

(सभी (रंगमञ्च से) निकल गए)

प्रथम अङ्क समाप्त

—:०:—

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति ककुभः)

ककुभः—निष्ठितप्रायत्वात् कार्यस्याहारव्यापृताः सर्वे वानरयूथपाः। तस्मादहमपि किञ्चिदाहारजातं सम्भावयामि। (तथा करोति।)

(प्रविश्य।)

बिलमुखः—पेसिओ म्हि महाळाएण सुग्गीवेण-अय्यरामस्स किदोवआरप्पच्चुवआरणिमित्तं सव्वासु दिसासु सीदाविअअणे पेशिआ सव्वे वाणरा आअदा। तेसं दक्खिणापहमुहस्स कुमारस्स अङ्गदस्स पवुत्ति जाणिअ सिग्घं आअच्छत्ति। ता कहिं णु हु गओ कुमारो। (परिक्रम्याग्रतो विलोक्य) एसो अय्यकउहो। जाव णं पुच्छामि। (उपसृत्य)

टीका—व्याकरण-निष्ठा=समाप्तिः संजाता अस्येति (निष्ठा+इतच्) निष्ठितः=समाप्तः प्रायः=बाहुल्यं (कर्मधा०) यस्य तत् (ब० व्री०) तस्य भावः तत्त्वम् तस्मात्, समाप्तप्रायत्वादित्यर्थः कार्यस्य=अनुष्ठेयस्य (काम के प्रायः बन जाने पर) आहारः=भोजनम् (आ+√हृ+घञ्) तस्मिन् व्यापृताः=व्यग्राः (वि+आ+√पृक्त) लगे हुए वानराणाम्=कपीनाम् यूथानि=समूहान् (ष० तत्पु०) पान्ति=रक्षन्तीति (यूथ+√पा+क) तथोक्ताः (उपपद तत्पु०)। आहारस्य जातम्=समूहम् (ष० तत्पु०) सम्भावयामि=(सम्+√भू+णिच्+लट्) आद्रिये करोमीत्यर्थः। कृतो०-कृतः=विहितः यः उपकारः=हितम् (कर्मधा०) तस्मिन् प्रत्युपकारः (स० तत्पु०) निमित्तम्=कारणम् (कर्मधा०) यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा (ब० व्री०) (किये हुए उपकार के बदले में उपकार

(तदनन्तर ककुभ प्रवेश करता है)

ककुभ—कार्य के प्रायः समाप्त हो जाने के कारण वानर-दलों के सभी नायक भोजन में लगे हुए हैं। इसलिए मैं भी भोजन के पदार्थों का आदर करता हूँ। (वैसा करता है)।

[प्रवेश करके] बिलमुख—महाराज सुग्रीव ने मुझे भेजा है कि—'आर्य राम के किए हुए उपकार पर प्रत्युपकार हेतु सभी दिशाओं में सीता को ढूंढने के

सुहं अय्यस्स । [प्रेषितोऽस्मि महाराजेन सुग्रीवेण-आर्यरामस्य कृतोपकारप्रत्युपकारनिमित्तं सर्वासु दिशासु सीताविचयने प्रेषिताः सर्वे वानरा आगताः । तेषां दक्षिणापथमुखस्य कुमारस्याङ्गदस्य प्रवृत्तिं ज्ञात्वा शीघ्रमागच्छेति । तत् क्व नु खलु गतः कुमारः । एष आर्यककुभः । यावदेनं पृच्छामि । सुखमार्यस्य ।]

ककुभः—अये विलमुखः । कुतो भवान् ।

विलमुखः—अय्य ! महाळअस्स सासणेण कुमारं अङ्गदं पेक्खिदुं आअदो म्हि । [आर्य ! महाराजस्य शासनेन कुमारमङ्गदं प्रेक्षितुमागतोऽस्मि ।]

ककुभः—अपि कुशली आर्यरामो महाराजश्च ।

विलमुखः—आम् ।

ककुभः—कोऽभिप्रायो महाराजस्य ।

करने हेतु) सीतायाः=जानक्याः विचयने (वि+चि+ल्युट्) अन्वेषणे (ष० तत्पु०) प्रषिताः=प्रेरिताः । दक्षिणा० — दक्षिणा==दक्षिणस्यां दिशि यः पन्थाः इति दक्षिणापथः दक्षिणभारतमित्यर्थः तस्मिन् मुखं (स० तत्पु०) यस्य तस्य (ब०व्री०) (दक्षिण दिशा की ओर गए हुए) प्रवृत्तिम्=समाचारम् । सुखम्=कुशलम् ।

महाराजस्य=सुग्रीवस्य शासनेन=आदेशेन प्रेक्षितुम्=द्रष्टुम् । अभिप्रायः= आशयः । निष्ठितम्=समाप्तम् निष्पन्नमित्यर्थः ।

लिए भेजे हुए सभी वानर आ गये हैं । उनमें से दक्षिणापथ की ओर गए हुए कुमार अंगद के समाचार का पता लगाकर शीघ्र आ' । तो कुमार [अंगद] कहाँ गए होंगे ? [घूमकर, आगे देखकर] यह आर्य ककुभ हैं । तो इन्हें पूछता हूँ ।

[पास जाकर] आप सकुशल तो हैं ?

ककुभ—अरे ! विलमुख ! आप कहां से आए ?

विलमुख—आर्य, महाराज [सुग्रीव] की आज्ञा से कुमार अंगद को देखने आया हूँ ।

ककुभ--आर्य राम और महाराज [सुग्रीव] सकुशल हैं ?

विलमुख--हां [सकुशल हैं] ।

ककुभ--महाराज [सुग्रीव] का क्या अभिप्राय है ?

(विलमुख: 'पेसिओ म्हि' इति पूर्ववत् पठति)

ककुभ: — किं न जानीषे निष्ठितमर्धं कार्यस्य ।

विलमुख:—किं किम् ।

ककुभ:—श्रूयतां,

लब्ध्वा वृत्तान्तं रामपत्न्याः खगेन्द्राद् आरुह्यागेन्द्रं सद्विपेन्द्रं महेन्द्रम् ।
लङ्कामभ्येतुं वायुपुत्रेण शीघ्रं वीर्यप्राबल्याल्लङ्घितः सागरोऽद्य ॥ १ ॥

टीका—लब्ध्वेति—अन्वयः—खगेन्द्रात् रामपत्न्याः वृत्तान्तम् लब्ध्वा सद्विपेन्द्रम् अगेन्द्रम् महेन्द्रम् आरुह्य शीघ्रम् लङ्काम् अभ्येतुम् वायुपुत्रेण वीर्य-प्राबल्यात् अद्य सागरः लङ्घितः ।

खे=आकाशे गच्छन्तीति (ख+√गम्+ड) पक्षिणः तेषाम् इन्द्रः=नायकः सम्पातिरित्यर्थः तस्मात् (ष० तत्पु०) (पक्षिराज सम्पाति से) रामस्य पत्न्याः= भार्यायाः सीतायाः (ष० तत्पु०) वृत्तान्तम्=समाचारम् लब्ध्वा=प्राप्य (सीता का समाचार प्राप्त करके) द्वाभ्याम्=शुण्डया मुखेन च पिबन्तीति द्विपाः=गजाः तेषाम् इन्द्राः=पतयः (ष० तत्पु०) तैः सह वर्तमानम् इति सद्विपेन्द्रम् (ब० व्री०) (गजराजों से युक्त) न गच्छन्तीति अगाः=पर्वताः तेषाम् इन्द्रम्=नायकम् पर्वत-राजमित्यर्थः (ष० तत्पु०) महेन्द्रम्=एतन्नामकं पर्वतम् आरुह्य=उपरि गत्वा (पर्वतराज महेन्द्र पर चढ़कर) शीघ्रम्=त्वरितं लङ्काम्=रावणस्य पुरीम् अभ्ये-तुम्=अभिगन्तुम् (लंका जाने को) वायोः=पवनस्य पुत्रः=सुतः हनूमानित्यर्थः तेन (ष० तत्पु०) वीरस्य भावः वीर्यम्=वीरत्वम् तस्य प्राबल्यात्=प्रकृष्टं बलं यस्य सः प्रबलः (ब० व्री०) तस्य भावः=प्राबल्यम् तस्मात् वीरत्वातिशया-दित्यर्थः (महान वीर होने के कारण) अद्य=अस्मिन् दिने सागरः=समुद्रः

विलमुख—मुझे भेजा है कि······[पूर्ववत् पढ़ता है] ।

ककुभ—क्या तुम नहीं जानते कि आधा काम तो बन गया है ?

विलमुख—क्या ? क्या ?

ककुभ—सुनो—

पक्षिराज (सम्पाति) से राम की पत्नी का वृत्तान्त प्राप्त कर, गजराजों से भरे हुए पर्वतराज महेन्द्र पर चढ़कर शीघ्र ही लंका जाने के लिए वायु-पुत्र [हनूमान] ने महावीर होने के कारण आज समुद्र को लाँघ दिया है ॥ १ ॥

तस्मादागच्छ, कुमारपादमूलमेव संश्रयावः ।

(निष्क्रान्तौ ।)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति राक्षसीगणपरिवृता सीता ।)

लङ्घितः=अतिक्रान्तः (लांघ दिया) । अत्र वैश्वदेवी वृत्तम्, तल्लक्षणम् यथा- "बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ" ॥ १ ॥

व्याकरण—लब्ध्वा=√लभ्—क्त्वा । द्विपः=द्वि+√पा+क । आरुह्य= आ+√रुह+ल्यप् । अभ्येतुम्=अभि+√इण्+तुम् । वीर्यम=वीर+यत् । प्राबल्यम्=प्रबल+ष्यञ् । लंघितः=√लंघ्+क्त ।

टिप्पणी—खगेन्द्र—खगेन्द्र से यहाँ सम्पाति अभिप्रेत है । वह गरुड़ का बड़ा भाई था । यह दीर्घजीवी था और गिरि-गुहा में रहता था । इसके पुत्र सुपार्श्व ने रावण द्वारा सीता का अपहरण देख रखा था और अपने पिता को सुना दिया था । इसने अंगद को सारा वृत्तान्त कह दिया कि किस तरह रावण सीता को हर कर लंका ले गया है । तब हनूमान समुद्र लांघ कर लंका गए ।

टीका—कुमारस्य=अङ्गदस्य पादयोः=चरणयोः [ष० तत्पु०] मूलम्= तलम् [ष० तत्पु०] संश्रयावः=सेवावहे ।

टिप्पणी—मिश्रविष्कम्भक—विष्कम्भक नाट्यविधान का एक पारिभाषिक शब्द है । हम देखते हैं कि नाटक में सभी घटनायें रंगमञ्च पर नहीं दिखाई जा सकती है । अतः भूत और भविष्य की कुछ घटनायें, जिनका रंगमंच पर दिखाना अभीष्ट नहीं होता, दो एक पात्रों द्वारा दर्शकों को विष्कम्भक से सूचित की जाती हैं । विष्कम्भक के दो भेद होते हैं—एक शुद्ध विष्कम्भक और दूसरा मिश्र विष्कम्भक । शुद्ध विष्कम्भक में दो या एक मध्यम जाति के पात्र परस्पर वार्तालाप द्वारा भूत और भविष्य की घटनाओं को सूचना दे जाते हैं । दोनों

इसलिए आओ, कुमार [अंगद) की चरण-सेवा में चलें ।

(दोनों निकल गए)

मिश्र विष्कम्भक

(तदनन्तर राक्षसियों के दल से घिरी सीता प्रवेश करती है ।)

सीता—हद्धि अदिधीरा खुम्हि मन्दभाआ। जा अय्यउत्तविरहिदा रक्खसराअभवणं आणीदा अणिट्ठाणि अणरिहाणि जहमणोरहप्पवुत्ताणि वअणाणि साविअमाणा जीवामि मन्दभाआ। आदु अय्यउत्तसाअअप्पच्चएण कहं वि अत्ताणं पय्यवत्थावेमि। किं णु खु अज्ज पज्जाळिअमाणे कम्म-आरग्गिमण्डळे उदअप्पसेओ विअ किञ्चि हिअअप्पसादो समुप्पण्णो। किं णु खु मं अन्तरेण पसण्णहिअओ अय्यउत्तो भवे। ; हा धिग् अतिधीरा खल्वस्मि मन्दभागा। यार्यपुत्रविरहिता राक्षसराजभवनमानीतानिष्टान्यनर्हाणि

संस्कृत बोलते हैं। किन्तु मिश्र विष्कम्भक में एक पात्र मध्यम जाति का होता है, जो संस्कृत बोलता है और दूसरा पात्र नीच जाति का होता है वह प्राकृत बोलता है। यहां मिश्र विष्कम्भक है, क्योंकि ककुभ एक अधिकारी होने के कारण मध्यम-जातीय है और संस्कृत बोल रहा है जबकि बिलमुख एक सिपाही होने से निम्नजातीय है और प्राकृत बोल रहा है। साहित्यदर्पणकार ने विष्क-म्भक की परिभाषा यों दे रखी है—

वृत्त-वर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां सम्प्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यप्रकल्पितः॥

प्रस्तुत नाटक में सीता का पता लग जाने और हनूमान द्वारा समुद्र लाँघ जाने की घटनाओं की सूचना दी गई है जो रंग-मंच पर नहीं दिखलाई हैं, साथ ही लंका में हनूमान द्वारा भविष्य में की जाने वाली घटनाओं की ओर संकेत है।

सीता—हाय धिक्कार है! मैं मन्दभागिनी सचमुच बड़ी धैर्यवाली हूँ, जो आर्यपुत्र (प्राणनाथ) से वियुक्त हुई, राक्षसराज (रावण) के घर लाई, (राक्षसियों द्वारा) यथेच्छ कही जा रही अशुभ-अनुचित बातें सुनने को प्रेरित की जाती हुई मन्दभागिनी जी रही हूँ। अथवा आर्यपुत्र के प्राणों पर विश्वास होने के कारण किसी न किसी तरह अपने आपको सँभाले जा रही हूँ। क्या बात होगी जो आज लोहार की खूब जलाई जा रही आग के घेरे में जल-सेक की तरह

यथामनोरथप्रवृत्तानि वचनानि श्राव्यमाणा जीवामि मन्दभागा । अथवा आर्यपुत्र-सायकप्रत्ययेन कथमप्यात्मानं पर्यवस्थापयामि । किन्तु खल्वद्य प्रज्वाल्यमाने कर्मकाराग्निमण्डले उदकप्रसेक इव किञ्चिद् हृदयप्रसादः समुत्पन्नः । किन्तु खलु मामन्तरेण प्रसन्नहृदय आर्यपुत्रो भवेत् ।]

(ततः प्रविशति हनूमान् अङ्गुलीयकहस्तः ।)

हनूमान् —(लङ्कां प्रविश्य) अहो रावणभवनस्य विन्यासः !

टीका—राक्षसी०—राक्षसीनां=राक्षसपत्नीनां गणेन=दलेन (ष० तत्पु०) परिवृता=परिगता (तृ० तत्पु०) । अतिशयेन घोरा इति अतिघोरा=(प्रादि तत्पु०)=अतिधैर्यशालिनी, मन्दः=दुर्बलः भागः=भाग्यं (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) आर्यपुत्रेण=पत्या विरहिता=वियुक्ता (तृ० तत्पु०) (पति-वियुक्त हुई) राक्षसानां=रक्षसाम् राजा=अधिपः (ष० तत्पु०) इति राक्षसराजः, समासे राजन्-शब्दः अकारान्तो भवतीति ध्येयम्, रावणः इत्यर्थः तस्य भवनम्=गृहम् आनीता=प्रापिता अनिष्टानि=न इष्टानि (नञ् तत्पु०) अनभिलषितानि अशुभानीति यावत् (√इष्+क्तः) अनर्हाणि=न अर्हाणि (नञ् तत्पु०) अर्हन्तीति (√अर्ह्+अच्) अर्हाणि योग्यानि उचितानीत्यर्थः, मनोरथम्=अभिलषितम् अनतिक्रम्य इति यथाभिलषितम् (अव्ययी०)= यथेच्छम् प्रवृत्तानि=प्रारब्धानि वचनानि=कथनानि, श्राव्यमाणा=√श्रु+णिच्+शानच् (कर्मणि) श्रोतुं प्रेर्यमाणा । आर्य-पुत्रस्य=भर्तुः सायकेषु=बाणेषु (ष० तत्पु०) प्रत्ययः=विश्वासः (स० तत्पु०) तेन (पति के बाणों में विश्वास होने के कारण) कथम् अपि=केनापि प्रकारेण पर्यवस्थापयामि—(परि+अव+√स्था+णिच्—लोट्)=समाश्वासयामि (अपने को सँभालते हुए हैं)। प्रज्वाल्यमाने=प्र+√ज्वल् + णिच्+शानच् (कर्मणि) प्रज्वलितुम् प्रेर्यमाणे (खूब जलाये जाते हुए) कर्मा०—कर्मकारः=कर्म=लोहादिभिः खड्गकर्तरिका-

---

मेरे हृदय में कुछ शान्ति उत्पन्न हुई है । मेरे बिना क्या आर्यपुत्र सचमुच प्रसन्न-चित्त हुए होंगे ?

(तदनन्तर हाथ में अँगूठी लिये हनूमान प्रवेश करते हैं)

हनूमान—(लंका में प्रवेश करके) रावण के भवन (लंका) की रचना आश्चर्य-जनक है !

कनकरचितचित्रतोरणाढ्या
मणिवरविद्रुमशोभितप्रदेशा ।
विमलविकृतसञ्चितैर्विमानै-
र्वियति महेन्द्रपुरीव भाति लङ्का ॥ २ ॥

दिकं करोतीति [कर्म+कृ√+अण् कर्मणि] लोहकारः तस्य अग्निमण्डले= अग्नि-समूहे [ष० तत्पु०] उदकस्य=जलस्य प्रसेकः=सेचनम् इवेत्युपमायाम् हृदयस्य=अन्तःकरणस्य प्रसादः=शान्तिः समुत्पन्न=जातः । माम् अन्तरेण= विना प्रसन्नं हृदयं=[कर्मधा०] यस्य सः [ब० व्री०] भवेत्=स्यात् ।

टीका — अङ्गुलीयकम्=मुद्रिका हस्ते=करे यस्य सः [ब० व्री०] (अंगूठी हाथ में लिए]। रावणस्य भवनस्य=आलयस्य लङ्कायाः इत्यर्थः [ष० तत्पु०] विन्यासः=रचना-क्रमः निर्माण-प्रकारः इत्यर्थः। ।

कनकेति — अन्वयः—कनक० मणिवर० लङ्का विमल० विमानैः वियति महेन्द्रपुरी इव भाति । कनक०—कनकेन=सुवर्णेन रचितम्=निर्मितम् [तृ० तत्पु० चित्रम्=विचित्रवर्णम् च [कर्मधा०] यत् तोरणम्=बहिर्द्वारम् [कर्मधा०] ['तोरणोऽस्त्री बहिर्द्वारम्' इत्यमरः] तेन आढ्या=समृद्धा [तृ० तत्पु०] [सोने से बने रंग-बिरंगे प्रवेश द्वार से समृद्ध] मणि०—मणिषु= रत्नेषु वराः=श्रेष्ठाः उत्कृष्टमणयः इत्यर्थः [स० तत्पु०] विद्रुमाः=प्रवालाश्च [द्वन्द्वः] तैः शोभिताः=भूषिताः [तृ० तत्पु०] प्रदेशाः=स्थानानि [कर्मधा०] यस्याः सा [ब० व्री०] (जिसके स्थान उत्कृष्ट मणियों और मूँगों से शोभित थे) विमल०—विमलानि=विगतं मलं येषां तानि (ब० व्री०) उज्ज्वलानि च विकृतानि=अद्भुतानि च सञ्चितानि=निविडानि च तैः [कर्मधा०] विमानैः= सप्तभूमिकैः हर्म्यैः (उज्ज्वल, अद्भुत, घने सात-मंजिल वाले महलों से) वियति= गगने स्वर्गे इत्यर्थः महान् चासौ इन्द्रः महेन्द्रः (कर्मधा०) तस्य पुरी=नगरी (ष० तत्पु०) इवेत्युपमायाम् (इन्द्रपुरी की तरह) भाति=राजते । लङ्कायाः महेन्द्रपुर्या साम्यप्रतिपादनात् उपमालङ्कारः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ २ ॥

सोने के बने, रंग-बिरंगे बहिर्द्वार से समृद्ध, उत्कृष्ट मणियों और मूँगों से शोभित प्रदेशों वाली लंका निर्मल, विचित्र और घने सात-मंजिले महलों से ऐसी चमक रही है जैसे स्वर्ग में इन्द्र-पुरी (चमकती) है ॥ २ ॥

अहो नु खलु,

एतां प्राप्य दशग्रीवो राजलक्ष्मीमनुत्तमाम् ।
विमार्गप्रतिपन्नत्वाद् व्यापादयितुमुद्यतः ॥ ३ ॥

(सर्वतो गत्वा) विचरितप्राया मया लङ्का ।

गर्भागारविनिष्कुटेषु बहुशः शालाविमानादिषु
स्नानागारनिशाचरेन्द्रभवनप्रासादहर्म्येषु च ।

व्याकरण—रचित=√रच्+क्त । शोभित=√शुभ+क्त । विकृत – वि+√कृ+क्त । सञ्चित=सम्+√चि+क्त ।

टीका – एतामिति-अन्वयः—अनुत्तमाम् राजलक्ष्मीम् प्राप्य दशग्रीवः विमार्गप्रतिपन्नत्वात् एताम् व्यापादयितुम् उद्यतः (अस्ति) ।

अनुत्तमाम्—न उत्तमा यस्याः ताम् (ब० व्री०) सर्वश्रेष्ठाम् अद्वितीयामिति यावत् राजलक्ष्मीम्=राजश्रियम् प्राप्य=लब्ध्वा दश ग्रीवाः=गलाः शिरांसीति यावत् यस्य सः (ब० व्री०) रावण इत्यर्थः विपरीत मार्गः विमार्गः= कुपथः तम् प्रतिपन्नः=प्राप्तः (द्वि० तत्पु०) तस्य भावः तत्वम् तस्मात् (बुरा मार्ग पड़ने के कारण), एताम्=राजलक्ष्मीम् व्यापादयितुम्=विनाशयितुम्, (विनाश करने को) उद्यतः=उद्युक्तः अस्तीतिशेषः । काव्यलिङ्गम् । अनुष्टुप् छन्दः ॥३॥

व्याकरण--प्राप्य=प्र+√आप्+ल्यप् । प्रतिपन्न=प्रति+√पद्+क्तः व्यापादयितुम्=वि+आ+√पद्+णिच्+तुम् । उद्यतः=उत्+√+√यम्+क्तः ।

टीका—विचरितः=परिभ्रान्तः प्रायः=बाहुल्यं (कर्मधा०) यस्याः=सा (ब० व्री०) ।

गर्भेति—अन्वयः—गर्भा० शाला० स्नाना० पाना० च अहम् बहुशः आक्रान्तवान् अस्मि ।,मो सर्वम् (स्थानम् मया) विचितम्, च नृपतेः पत्नी न एव मया दृश्यते ।

सचमुच आश्चर्य है कि--

अद्वितीय राजलक्ष्मी को प्राप्त करके दशानन बुरा मार्ग अपनाने के कारण इस (लंका) को विनाश कराने के लिए तय्यार हुआ बैठा है ॥ ३ ॥

(चारों ओर जाकर) मैं प्रायः (सारी) लंका घूम गया हूं—

पानागारनिशान्तदेशविवरेष्वाक्रान्तवानस्म्यहं
सर्वं भो ! विचितं न चैव नृपतेः पत्नी मया दृश्यते ॥ ४ ॥

अहो व्यर्थो मे परिश्रमः। भवतु, एतद्धर्म्याग्रमारुह्यावलोकयामि।

गर्भा०—गर्भस्य=अन्तरस्य आगाराणि=गृहाणि च (ष० तत्पु०) अन्तः-पुराणि इत्यर्थः विशिष्टाः निष्कुटाः=गृहारामा च (गृहारामास्तु निष्कुटाः इत्यमरः) विनिष्कुटाः तेषु (द्वन्द्वः) (गृह-वाटिकाओं में) शाला०—शालाः—सभागृहाणि च विमानानि=सप्तभूमिक-हर्म्याणि च (द्वन्द्वः) आदिः येषां तेषु [ब० व्री०] स्नाना०=स्नानाय आगाराणि=गृहाणि च [च० तत्पु०] निशाचराणाम्=राक्षसानाम् इन्द्रः=अधिपः रावणः इत्यर्थः तस्य भवनानि=गृहाणि [ष० तत्पु०] च प्रासादाः=देवमन्दिराणि च हर्म्याणि=राजगृहाणि च [हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देव-भूभुजाम्] इत्यमरः तेषु [द्वन्द्वः] पाना० पानाय=मदिरापानाय आगाराणि=गृहाणि मधुशालाः इत्यर्थः [च० तत्पु०] च निशान्ताः=गणरत्नमहोदध्यनुसारेण दृढतया शान्ताः=शान्तिपूर्णाः निःशब्दा इत्यर्थः देशाः=स्थानानि। कर्मवा०] च विवराणि=रन्ध्राणि अन्त-र्भौम-काराकक्षाः इत्यर्थः च तेषु [द्वन्द्वः] अहम् बहुशः=बहुबारम् आक्रान्तवान् अस्मि=समन्तात् अभ्रमम् [घूम गया]। भोः=हे। मया सर्वम् हर्म्यादिकमिति-शेषः विचितम्=अन्विष्टम् [छान मारा] नृणाम्=नराणाम् पतिः=अधिपः नराधिपः [ष० तत्पु०] राम इत्यर्थः यस्य पत्नी=भार्या सीता इत्यर्थः न एव दृश्यते=अवलोक्यते। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। तल्लक्षणं प्रथमाङ्कस्य पञ्चम-श्लोके दृश्यताम् ॥ ४ ॥

व्याकरण - स्नानम्=√स्ना+ल्युट्। पानम्√पा+ल्युट्। बहुशः=बहु+

मैं अन्तःपुरों और विशिष्ट गृह-वाटिकाओं में, सभा-भवनों और सात-मंजिल महलों आदि में, स्नान-गृहों, रावण के भवनों, देवस्थानों और राजगृहों में, मधु-शालाओं, सुनसान प्रदेशों और कारागार की काल-कोठरियों में बहुत बार घूम आया हूँ। अरे, सब कुछ ढूँढ लिया है (किन्तु) नरपति (राम) की पत्नी नहीं दिखलाई पड़ती ॥ ४ ॥

अहो, मेरा परिश्रम व्यर्थ गया। अच्छा, इस महल की चोटी पर चढ़कर

(तथा कृत्वा , अये अय प्रमदवनराशिः । इमं प्रविश्य परीक्षिष्ये । (प्रविश्यावलोक्य) अहो प्रमदवनसमृद्धिः । इह हि,

कनकरचितविद्रुमेन्द्रनीलै-
विकृतमहाद्रुमपङ्क्तिचित्रदेशा ।
रुचिरतरनगा विभाति शुभ्रा
नभसि सुरेन्द्रविहारभूमिकल्पा ॥ ५ ॥

शः । आक्रान्तवान्=आ+√क्रम्+तवत् । विचितम्=वि+√चि+क्त । दृश्यते=√दृश्+लट् (कर्मवाच्य) ।

टीका—व्याक०—व्यर्थः=विगतः अर्थः=प्रयोजनं यस्य सः (ब० व्री०) परिश्रमः=आयासः (परि+√श्रम्+घञ् (न वृद्धिः)) भवतु√भू+लोट् । हर्म्यस्य=राजभवनस्य अग्रम्=शिखरम् (ष० तत्पु०) आरुह्य=ऊर्ध्वं गत्वा (आ+√रुह्+ल्यप् । अवलोकयामि=पश्यामि । प्रमद-वनानाम्=विलासोद्यानाम् राशिः=पंक्तिः । प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा (प्र+√विश्+ल्यप्) परीक्षिष्ये=तस्य निरीक्षणं करिष्ये (परि+√ईक्ष्सलृट् उ०) । अवलोक्य=दृष्ट्वा (अव+√लोक्+ल्यप्) प्रमद-वनस्य समृद्धिः=सम्पन्नता (सम्+√ऋध्+क्ति) कनकेति —अन्वयः-कनक० विकृत० रुचिर० शुभ्रा नभसि सुरेन्द्र० विभाति । कनके=सुवर्णे रचिताः=खचिताः (स० तत्पु०) विद्रुमाः=प्रवालाः (कर्मधा०) च इन्द्रलीलाः—नीलकान्तमणयश्च तैः (द्वन्द्वः) (सोने पर जड़े मूँगों और नीलमणियों द्वारा) विकृत०—विकृताः परिवर्तनं प्राप्ताः ये महान्तः=विशालाः द्रुमाः=वृक्षाः (कर्मधा०) तेषां पंक्तिभिः=श्रेणिभिः चित्राः=कर्बुराः (तृ० तत्पु०) देशाः=प्रदेशाः (कर्मधा०) यस्या सा (ब० व्री०) (और ही तरह के हुए विशाल वृक्षों की पंक्तियों से रंग-

---

देखता हूँ । [वैसा करके] अरे, यह तो क्रीडोद्यानों की कतार है । यहाँ जाकर ढूँढूंगा । (प्रवेश करके और देखकर) अहा ! क्रीडोद्यान की कैसी समृद्धि है—

जहाँ सोने पर जड़े मूँगों और नीलमणियों द्वारा और ही तरह के हुए बड़े-बड़े वृक्षों की पंक्तियों से स्थान रंग-विरंगे बने हुए हैं । जहाँ पर्वत खूब देदीप्यमान हैं और जो उज्ज्वल बनी हुई इस तरह जगमगा रही है जैसे स्वर्ग में इन्द्र की विहार-स्थली (जगमगाती है) ॥ ५ ॥

अपि च—

चित्रप्रसृतहेमधातुरुचिराः शैलाश्च दृष्टा मया
नानावारिचराण्डजैर्विरचिता दृष्टा मया दीर्घिकाः ।

विरंगे बने स्थलों वाली) रुचिर०—अतिशयेन रुचिरा इति रुचिरतरा:=उज्वला नगा:=पर्वता: (कर्मधा०) यस्यां सा० (ब० व्री०) (खूब चमकीले पर्वतों वाली) शुभ्रा:=देदीप्यमाना नभसि=स्वर्गे सुराणाम् देवानाम् इन्द्र=स्वामी शक्र: इत्यर्थः (ष० तत्पु०) तस्य विहाराय=विलासाय भूमि:=स्थली (च० तत्पु०) तस्या ईषद् ऊना इति ०कल्पा, तत्तुल्या इत्यर्थ: विभाति=राजते । अत्र प्रमदवनसमृद्ध्याः सुरेन्द्रविहारभूम्या सादृश्य-प्रतिपादनात् उपमा । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥५॥

व्याकरण—रचित—√रच्+क्त । विकृत-वि+√कृ+क्त । रुचिरतर-रुचिर+तर । नगा:=न गच्छतीति न+√गम्+ड । शुभ्र=शोभते इति √शुभ्+रक् । भूमिकल्पा=भूमि+कल्प+टाप् ।

टिप्पणी—प्रमदवन—अमरकोष—'प्रमदवनमन्तःपुरोचितम्' के अनुसार अन्तःपुर में महल के साथ सटा हुआ एक उद्यान होता है जिसमें राजा और रानियाँ टहलने-फिरते आनन्द लेते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति दो तरह से हो सकती है - (१) प्रकृष्टो मद: (आनन्द:)प्रमद: (प्रादि तत्पु०) प्रमद-जनकं वनं प्रमदवनम् (मध्यमपदलोपी स०) अर्थात् वह वन में जो आनन्द-दायक होता है। (२) प्रमदानां=युवतीनां वनम् (ष० तत्पु०) अन्तःपुर की महिलाओं का वन (Ladies Garden)। क्योंकि प्रमदवन व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्द है, इसलिए प्रमदा के 'आ' को ह्रस्व हो जाता है, देखिए पाणिनि-सूत्र—ङ्यापोः संज्ञा-छन्दसोर्बहुलम् (६।३।६३) जैसे रेवत्या: पुत्र: रेवतिपुत्र:, काल्याः दासः कालिदासः इत्यादि । किन्तु बाल्मीकि ने इसे व्यक्तिवाचक संज्ञा-शब्द नहीं बनाया और सीधा 'प्रमदावन' ही लिखा है:—'तन्मृग-द्विज-संघुष्टं प्रविष्टः प्रमदावनम् ।'

टीका—चित्रेति—अन्वय:—मया चित्र० शैला: च दृष्टा: । मया नाना०

और भी—

मैंने नाना प्रकार के तथा रिसे हुए स्वर्ण-धातु से चमकीले बने पर्वत देख लिये । मैंने तरह-तरह के जलचर जीवों और पक्षियों से विभूषित हुई बावड़ियाँ

नित्यं पुष्पफलाढ्यपादपयुता देशाश्च दृष्टा मया
सर्वं दृष्टमिदं हि रावणगृहे सीता न दृष्टा मया ॥ ६ ॥

को नु खल्वेतस्मिन् प्रदेशे सप्रभ इव दृश्यते । तत्र तावदवलोकयामि । (तथा कृत्वा) अये का नु खल्वियम् ।

विरचिताः दीर्घिकाः दृष्टाः । मया नित्यम् पुष्प० देशाः च दृष्टाः । इदम् सर्वम् हि दृष्टम्, (किन्तु) मया रावण-गृहे सीता न दृष्टा ।

चित्र०--चित्राः=नाना प्रकाराः च प्रस्नुतः=प्रस्यन्दितः यः हेम्नः=सुवर्णस्य धातुः=खनिजम् (ष० तत्पु०) तेन रुचिराः=भासुराः (तृ० तत्पु०) च (कर्मधा०) [नाना प्रकार के तथा पिघले हुए सुवर्ण-धातु से चमकीले] शैलाः= पर्वताः दृष्टाः=अवलोकिताः । नाना०— नाना=विविधाः ये वारिचराः=जलचर-जीवाश्च अण्डजाः=पक्षिणश्च तैः [द्वन्द्वः] विरचिताः=विभूषिताः [तृ० तत्पु०] दीर्घिकाः=सरस्यः [बावड़िया], । नित्यम्=सर्वदा पुष्प०—पुष्पाणि=कुसुमानि च फलानि च [द्वन्द्वः] तैः आढ्याः=समृद्धाः भरिताः इत्यर्थः [तृ० तत्पु०] पादपाः=वृक्षाः [कर्मधा०] देशाः=स्थानानि । इदम् सर्वम्=शैलादिकम् हि=निश्चयेन दृष्टम् [किन्तु] मया रावणस्य गृहे=भवने सीता न दृष्टा । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६ ॥

व्याकरण—प्रस्नुत=प्र+√स्नु+क्त । दृष्ट–√दृश्+क्त । वारिचरः=वारिणि चरतीति चरः √चर्+अच् । अण्डजः=अण्डात् जायते इति अण्ड+√जन्+ड । विरचिता=वि+√रच्+क्त+टाप् ।

टीका—सप्रभः=प्रभया=कान्त्या सह विद्यमानः [ब० व्री०] दृश्यते= अवलोक्यते ।

राक्षसीति—अन्वयः–विकृताभिः राक्षसीभिः परिवृता, सुमध्यमा नील० विद्युल्लेखा इव शोभते ।

देख ली है, और मैंने सदा पुष्प-फलों से लदे हुए वृक्षों वाले स्थान देख लिये हैं । यह सब कुछ निश्चय-पूर्वक देख लिया, (किन्तु) रावण के घर मैंने सीता नहीं देखी ॥ ६ ॥

इस स्थान में चमकता हुआ-सा कौन दिखलाई पड़ रहा है ? वहाँ जाकर तो देखूँ । (वैसा करके) अरे, सचमुच यह कौन स्त्री है ?

राक्षसीभिः परिवृता विकृताभिः सुमध्यमा ।
नीलजामूतमध्यस्था विद्युल्लेखेव शोभते ॥ ७ ॥

यैषा,

असितभुजगकल्पां धारयन्त्येकवेणीं
करपरिमितमध्या कान्तससक्तचित्ता ।

विकृताभिः=विकृताकाराभिः कुरूपाभिरित्यर्थः (भद्दे चहरों वाली) राक्षसीभिः=राक्षसस्त्रीभिः परिवृता = परिगता (घिरी हुई) सुमध्यमा= सु=शोभना मध्यमा='यौवनमध्यस्था' नारी (युवति) नील०—नीलाः= श्यामवर्णाः जीमूताः मेघाः (कर्मधा०) तेषां मध्ये (ष० तत्पु०) तिष्ठतीति (उपपद तत्पु०) विद्युतः=तडितः लेखा=रेखा इव शोभते=लसति । विद्युल्लेखया साम्यप्रतिपादनात् उपमालंकारः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ ७ ॥

व्याकरण—विकृत=वि+√कृ+क्त । परिवृत=परि+√वृ+क्त । मध्यस्था= मध्य+√स्था+क+टाप् । शोभते=√शुभ्+लट् ।

टिप्पणी—विद्युल्लेखेव--स्त्री की विद्युत् से तुलना भास ने अन्य नाटकों में भी कर रखी है । 'अविमारक' में अपने पति के साथ 'सौदामिनी' का वर्णन देखिए—'तडिदिव तोयधरेषु दृष्ट-नष्टा' । 'चारुदत्त' में भी विट अन्धकार में वसन्त सेना का उल्लेख 'सौदामिनीव जलदोदर-संनिरुद्धा' रूप में करता है । इसी तरह 'दूतवाक्य' में भगवान् कृष्ण के शार्ङ्ग के सम्बन्ध में भी "कनक-खचितपृष्ठं भाति कृष्णस्य पार्श्वे नवसलिलदपार्श्वे चारुविद्युल्लतेव" लिखा है ।

टीका--असितेति--अन्वयः—असित० एकवेणीम् धारयन्ती, कर०, कान्त०, अनशन०, बाष्प० आतपे विप्रविद्धा सरसिजवनमाला इव (भाति) ।

असित०—असितः=न सितः=श्वेतः इति असितः (नञ् तत्पु०) कृष्णवर्णः इत्यर्थः यः भुजगः=सर्पः (कर्मधा०) तस्मात् ईषत् ऊना इति ०कल्पा ताम्

(काले) भद्दे चेहरों वाली राक्षसियों से घिरी (यह) सुन्दर युवति ऐसी शोभित हो रही है जैसे काले मेघों के बीच बिजली (शोभित होती है) ॥ ७ ॥

जो यह—काले सर्प की तरह बालों की एक चोटी रखती हुई, हाथ से मापे जाने वाली कमर वाली, प्रियतम पर मन लगाये, खाना न खाने से कृश

अनशनकृशदेहा बाष्पसंसिक्तवक्त्रा
सरसिजवनमालेवातपे विप्रविद्धा ॥ ८ ॥

अये कथं दीपिकावलोकः । (विलोक्य) अये रावणः

(उपमान तत्पु०) (काले नाग-जैसी) एका घासौ वेणी=कबरी (कर्मधा०) ताम् (बालों की गुत) धारयन्तीं=वहन्तीम्, कर०--करेण=हस्तेन परिमितम्=कृतमानम् (तृ० तत्पु०) मध्यम्=उदरम् (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) कृशोदरी इत्यर्थः (हाथ से मापी हुई कमर वाली) कान्त०—कान्ते=प्रियतमे संसक्तम्=संस्थितम् (स० तत्पु०) चित्तम्=मनः (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) (पति पर ही मन लगाये हुई) अनशन०—न अशनम्=भोजनम् इति अनशनम् (नञ् तत्पु०) तेन कृशः=क्षीणः (तृ० तत्पु०) देहः=शरीरम् (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) (खाना न खाने से क्षीण हुए शरीर वाली) बाष्प०—बाष्पेण=अश्रुजलेन संसिक्तम्=क्लिन्नम् (तृ० तत्पु०) वक्त्रम्=मुखम् (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) (आंसुओं से गीले बने हुए मुख वाली) आतपे=घर्मे (धूप में) विप्रविद्धा=प्रक्षिप्ता सरसिजानाम्=कमलानाम् वनस्य=समूहस्य (ष० तत्पु०) माला=हारः (ष० तत्पु०) इव । अत्र सीतायाः सरसिजवनमालया सादृश्यप्रतिपादनात् उपमा । मालिनी वृत्तम् ॥ ८ ॥

व्याकरण—धारयन्ती—√धृ+णिच्+शतृ+ङीप् । परिमित—परि+√मा+क्त । संसक्त—सम्+√संज्+क्त । संसिक्त—सम्+√सिच्+क्त । सरसिजम्=सरसि जायते इति सरस्+जन्+ड विकल्प से विभक्ति अलोप, लोप-पक्ष में सरोजम् बनेगा । आतपः=आ+√तप्+घञ् । विप्रविद्ध—वि+प्र+√विध्+क्त ।

टीका—दीपिकायाः=उल्कायाः ज्वलदग्निकाष्ठस्येत्यर्थः ; अवलोकः=आलोकः प्रकाशः ।

मणीति—अन्वयः—मणि० चारु० मद० मत्त० युवति० चेष्टमानः असौ राक्षसेशः युवतिजननिकाये हरिणीनाम् अन्तरे चेष्टमानः हरिः इव भाति ।

हुए शरीर और आंसुओं से गीले हुए मुँह वाली ऐसी बनी हुई है जैसे धूप में फेंकी हुई कमल-समूह की माला ॥ ८ ॥

अरे, यह मशाल की रोशनी कैसे ? (देखकर) अरे रावण है !

मणिविरचितमौलिश्चारुताम्रायताक्षो
मदसललितगामी मत्तमातङ्गलीलः ।
युवतिजननिकाये भात्यसौ राक्षसेशो
हरिरिव हरिणीनामन्तरे चेष्टमानः ॥ ९ ॥

किमदानीं करिष्ये । भवतु, दृष्टम् । एनमशोकपादपमारुह्य कोटरान्तरितो भूत्वा दृढं वृत्तान्तं ज्ञास्यामि । (तथा करोति ।)

मणि०—मणिभिः=रत्नैः विरचितः=खचितः (तृ० तत्पु०) मौलिः=मुकुटं (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (मणि-जड़े मुकुट वाला) चारु०—चारूणि=सुन्दराणि च ताम्राणि=रक्तानि च आयतानि=विशालानि च अक्षीणि=नयनानि (कर्म धा०) यस्य सः (सुन्दर, लाल, विशाल नयनों वाला) मद०—मदेन=अभिमानेन सललितम्=सविलासम् (ब० व्री०) यथा स्यात्तथा गच्छतीति ० गामी (उपपद तत्पु०) (अभिमान से विलासपूर्वक चलने वाला) मत्त०—मत्तः=मदोत्कटः यः मातङ्गः=गजः (कर्म धा०) तद्वद् लीला=क्रीडा (उपमान-तत्पु०) यस्य सः (ब० व्री०) (मदोन्मत्त हाथी की-सी लीला वाला) युवतिजनस्य—जन-शब्दोऽत्र बहुवाचकः युवतीनामित्यर्थः निकाये समूहे (ष० तत्पु०) राक्षसानाम्=असुराणाम् ईशः=अधिपः (ष० तत्पु०) चेष्टमानः=चेष्टां कुर्वन् गच्छन् इत्यर्थः—युवतियों के मध्य जाता हुआ । रावण इत्यर्थः हरिणीनाम्=मृगीनाम् अन्तरे=मध्ये चेष्टमानः हरिः=सिंहः इव भाति=राजते । अत्र युवतीनां हरिणीभिः रावणस्य च सिंहेन सादृश्यप्रतिपादनात् उपमा । मालिनी वृत्तम् ॥ ९ ॥

व्याकरण—विरचित=वि+√रच्+क्त । ० गामी=√गम्+इन् । मत्त=√मद्+क्त । चेष्टमानः=√चेष्ट्+शानच् । भाति=√भा+लट् ।

मणि-जड़ित मुकुट वाला, सुन्दर लाल लाल विशाल आँखों वाला, अभिमान में विलास के साथ चलने वाला, मदमत्त हाथी की-सी लीला वाला, युवति-समूह के मध्य जा रहा यह राक्षसराज ऐसा लग रहा है जैसे मृगियों के मध्य चल रहा सिंह (लगता है) ॥ ९ ॥

अब क्या करूँ ? अच्छा, सोच लिया । इस अशोक वृक्ष पर चढ़कर खोखर में छिप कर निश्चय के साथ वृत्तान्त जानूँगा । (वैसा ही करता है)

(ततः प्रविशति रावणः सपरिवारः ।)

रावणः—

दिव्यास्त्रैः सुरदैत्यदानवचमूविद्रावणं रावणं
युद्धे क्रुद्धसुरेभदन्तकुलिशव्यालीढवक्षःस्थलम् ।

टीका --अशोकस्य=पादपम्=वृक्षम् (ष० तत्पु०) आरुह्य=आरूढो भूत्वा कोटरेण=क्रोडेन अन्तरितः=व्यवहितः (तृ० तत्पु०) दृढम्=निश्चयपूर्वकम् वृत्तान्तम्=वृत्तम् ज्ञास्यामि=उपलप्स्ये ।

दिव्येति—अन्वयः—अविवेकिनी मुग्धा सीता दिव्यास्त्रैः सुर० युद्धे क्रुद्ध० माम् न रमते, क्षुद्रे क्षत्रिय-तापसे च सक्ता । (अस्ति । अहो, ध्रुवम् दैवस्य विघ्न-क्रिया) (अस्ति) ।

न विवेकः=सदसज्ज्ञानम् इति अविवेकः (नञ् तत्पु०) अविवेकः अस्ति अस्या इति अविवेकिनी मूढा इत्यर्थः (मूर्ख) मुग्धे=मोहके रमणीये इत्यर्थः ईक्षणे =नयने (कर्म धा०) यस्याः सा (ब० व्री०) (मनोहारी आँखों वाली) सीता दिव्यानि=दिव्यशक्तिसम्पन्नानि अस्त्राणि=आयुधानि तः (कर्म धा०) सुर०— सुराः=देवाश्च दैत्याश्च० दानवाः=राक्षसाश्चेति ० दानवाः (द्वन्द्वः) तेषाम् चमूनाम्=सेनानाम् विद्रावणम्=अपाकर्तारम् (ष० तत्पु०) (खदेड़ देने वाला) युद्धे=समरे क्रुद्ध०—क्रुद्धाः=कुपिताः ये सुराणाम्=देवानां (कर्म धा०), इभाः- गजाः (षन तत्पु०) तेषां दन्ताः=दशनाः (ष० तत्पु०) कुलिशाः=वज्राः इव (उपमित-तत्पु०) तैः व्यालीढम्=आस्वादितम् आहतमित्यर्थ (तृ० तत्पु०) वक्षःस्थलम्=उरस्स्थलम् (कर्मधा०) यस्य तत् (ब० व्री०) (देवताओं के क्रुद्ध हाथियों के वज्र-जैसे दाँतों से चोट खाये हुये छाती वाला) रावणम् न न रमते=रमयति (रावण के साथ रमण नहीं करती), क्षुद्रे=तुच्छे क्षत्रिय- श्चासौ तापसः (कर्मधा०) तस्मिन् (क्षुद्र क्षत्रिय तपस्वी पर) सक्ता= अनुरक्ता (अस्तीति शेषः) अहो !=आश्चर्यम् । ध्रुवम्=निश्चयेन दैवस्य=

(तदनन्तर नौकर-नौकरानियों सहित रावण प्रवेश करता है)

रावण—मूर्ख मदिरेक्षणा सीता दिव्यास्त्रों से देवताओं, दैत्यों और दानवों की सेनाओं को पीछे खदेड़ देने वाले, (और) युद्ध में देवताओं के क्रुद्ध हाथियों

सीता मामविवेकिनी न रमते सक्ता च मुग्धेक्षणा
क्षुद्रे क्षत्रियतापसे ध्रुवमहो दैवस्य विघ्नक्रिया ॥ १० ॥

(ऊर्ध्वमवलोक्य) एष एष चन्द्रमाः,
रजतरचितदर्पणप्रकाशः
करनिकरैर्हृदयं ममाभिपीड्य ।

भाग्यस्य विघ्नस्य=प्रत्यूहस्य क्रिया=कर्म (अस्ति) भाग्यं मे मार्गे बाधकमिति भावः । दन्तकुलिशेत्यत्र उपमा । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १० ॥

व्याकरण—मुग्ध=√मुह्+क्त । ईक्षणम्=ईक्ष्यते=दृश्यते अनेनेति √ईक्ष्+ल्युट् (करणे) । दिव्यम्=दिवि भवम् इति दिव्+यत् । विद्रावणः= विद्रावयतीति वि+√द्रु+णिच्+ल्युट् (कर्तरि) । युद्धम्=√युध्+क्त (भावे) । क्रुद्ध=√क्रुध् + क्त । व्यालीढ=वि+आ+√लिह् + क्त । रमते=पाणिनि व्याकरण के अनुसार √रम् धातु अकर्मक है, किन्तु भास ने इसे सकर्मक बना दिया है जो व्याकरण-विरुद्ध है । इसका समाधान यही हो सकता है कि इस धातु को यहाँ अन्तर्भावित णिच् वाला अर्थात् रमते=रमयति माना जाय । सक्त√संज्+क्त । क्षत्रियः=क्षत्रस्य अपत्यं पुमान् इति क्षत्र+घः (इय), क्षत्रः=क्षत् (√क्षण्+क्विप् भावे) क्षतम् तस्मात् त्रायते इति √त्रै+कः । देखिए कालिदास —"क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः" (रघु०) । विघ्नः=विहन्तीति वि+√हन्+क्तः । क्रिया=√कृ+श, रिङ् आदेश इयङ् ।

अवलोक्य=अव+√लोक्+ल्यप् । 'एष एष' भर्त्सने द्विरुक्तम् ।

टीका—रजतेति–अन्वयः—रजत० कुमुद० शशाङ्कः गगने विजृम्भमाणः (सन्) करनिकरैः मम हृदयम् अभिपीड्य उदयति । रजत०–रजतेन=

के वज्र-जैसे दांतों से क्षत-विक्षत हुई छाती वाले रावण के साथ रमण नहीं करती और तुच्छ क्षत्रिय तपस्वी पर आसक्त है । आश्चर्य है कि, निश्चय भाग्य विघ्न डाल रहा है ॥ १० ॥

(ऊपर देखकर) यह, यह चन्द्रमा—
चाँदी के बने दर्पण की तरह प्रकाश वाला, कुमुद वनों का प्रिय बन्धु

उदयति गगने विजृम्भमाणः

कुमुदवनप्रियबन्धवः शशाङ्कः ॥ ११ ॥

रौप्येण रचितः=निर्मितः (तृ० तत्पु०) यः दर्पणः = मुकुरः तस्य इव प्रकाशः=आलोकः (उपमान तत्पु०) यस्य सः (ब० व्री०) चाँदी के दर्पण का-सा (प्रकाशवाला) कुमुद०=कुमुदानाम्=कैरवाणां रात्रि-कमलानामित्यर्थः यत् वनम्=समूहः (ष० तत्पु०) तस्य प्रिय-बान्धवः (ष० तत्पु०) प्रियश्चासौ बान्धवः (कर्मधा०) स्नेही बन्धुः । कुमुदानि रात्रौ चन्द्रप्रकाशे विकसन्तीति हेतोः चन्द्रमाः कुमुद-बन्धुः उच्यते । शशाङ्कः=चन्द्रमाः गगने = आकाशे विजृम्भमाणः = (निजालोकेन) प्रसरन् (प्रकाश द्वारा फैलता हुआ) कराणाम् = रश्मीनाम् निकरैः = निचयैः (ष० तत्पु०) (किरण-समूहों से) मम हृदयम्=अन्तःकरणम् अभिपीड्य=अभितः पीडयित्वा संताप्येयर्थः (सब संतप्त करके) उदयति=उदेति । शशाङ्कस्य दर्पणेन सादृश्यप्रतिपादनात् उपमा । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ११ ॥

व्याकरण—रचित = √रच्+क्त । प्रकाशः = प्र+√काश् + अच् । शशाङ्कः=शशः अङ्करूपो यस्मिन् सः । चन्द्रमा में काला=धब्बा खरगोश जैसा लगता है, इसीलिए उसे शशाङ्क कहते हैं । कोई मृग जैसा धब्बा मानते हैं इसलिए उसे मृगाङ्क, मृगलाञ्छन आदि भी कहते हैं । विजृम्भमाणः=वि+√जृम्भ्+शानच् । उदयति=अय् धातु आत्मनेपद होने से यहाँ उदयते बनना चाहिए था । इसी तरह माघ ने भी जगह 'उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जौ' परस्मैपद-प्रयोग कर रखा है । इसका समाधान भट्टोजीदीक्षित यह किया है— 'इट, किट्, कटी' इत्यत्र प्रश्लिष्टस्य भविष्यति । यद्वा 'अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्' अर्थात् 'उदयति' यह रूप 'अय्' का नहीं है, बल्कि परस्मैपद 'इट' का है अथवा आत्मनेपद विधान अनित्य होता है, इसलिए 'अय्' धातु परस्मैपद भी हो जाता है ।

चन्द्रमा आकाश में (अपनी प्रभा द्वारा) फैलता जाता हुआ किरणों से मेरे हृदय को खूब संतप्त करके उदय हो रहा है ॥ ११ ॥

(परिक्रम्य) एषा सीता पादपमूलमाश्रित्य ध्यानसंवीतहृदयानशन-क्षामवदना स्वदेहमिव प्रवेष्टुकामा सङ्गूढस्तनोदरी दुर्दिनान्तर्गता चन्द्र-लेखेव राक्षसीगणपरिवृतोपविष्टा । यैषा,

अपास्य भोगान् मां चैव श्रियं च महतीमिमाम् ।
मानुषे न्यस्तहृदया नैव वश्यत्वमागता ॥ १२ ॥

टीका – पादपस्य=वृक्षस्य मूलम्=तलम् आश्रित्य=सेवित्वा ध्यान–ध्याने=चिन्तने संवीतम्=व्यापृतम् (स० तत्पु०) हृदयम् (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) अनशन०—अनशनेन=अनाहारेण (तृ० तत्पु०) क्षामं=शुष्कं वदनम्=मुखं (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) स्वम्=स्वकीयम् देहम्=शरीरम् (कर्मधा०) इवेत्युत्प्रेक्षायाम् प्रवेष्टुं कामः यस्याः सा (ब० व्री०) (अपने शरीर के भीतर प्रविष्ट होना चाहती हुई जैसी) सङ्गूढ०—स्तनौ=कुचौ च उदरं=मध्यञ्च तयोः समाहारः स्तनोदरम् (समाहारद्वन्द्व) संगूढम्=तिरोहितम् स्तनोदरम् (कर्मधा०) यया सा (ब० व्री०) (स्तन और पेट को छिपाये) दुर्दिन० – दुर्दिनस्य=मेघच्छन्नदिनस्य (मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम् इत्यमरः) अन्तर्गता=अन्तर्भूता मेघान्तर्हिता इति यावत् (ष० तत्पु०) चन्द्रस्य=शशिनः लेखाः=कला इवेत्युपमायाम् राक्षसी०—राक्षसीनाम्=राक्षस-स्त्रीणाम् गणेन=समूहेन (ष० तत्पु०) परिवृता=परिगता (तृ० तत्पु०) उपविष्टा=स्थिता अस्तीति शेषः । या एषा=इयम् सीता ।

व्याकरण—आश्रित्य=आ+√श्रि+ल्यप् । ध्यानम्=√ध्यै+ल्युट् । संवीत=सम्+वि+√इ+क्त । अशनम्=√अश्+ल्युट् । क्षाम=√क्षै+क्तः, तकारस्य मकारः । प्रवेष्टुकामा='तुम् काम-मनसोरपि' इति तुम्–प्रत्ययमकारस्य लोपः ।

(घूमकर) यह सीता वृक्ष से मूल का सहारा लेकर, ध्यान में मन लगाये, खाना न खाने से सूखे हुए मुखवाली, अपनी देह के भीतर प्रविष्ट होना जैसा चाहती हुई स्तनों और पेट को छिपाये, वर्षा के दिन मेघों के बीच गई चाँद की कला तरह राक्षसियों के समूह से घिरी हुई बैठी है, जो यह—

विषय-भोगों को, मुझे और इस बड़ी भारी (राज-) लक्ष्मी को ठुकराकर मनुष्य पर हृदय लगाये, मेरे वश में नहीं आई है ॥ १२ ॥

हनूमान्—हन्त सुविज्ञातम् ।

इयं सा राजतनया पत्नी रामस्य मैथिली ।
सिंहदर्शनवित्रस्ता मृगीव परितप्यते ॥ १३ ॥

संगूढ=सम्+√गुह्+क्त । परिवृता=परि+√वृ+क्त । उपविष्टा=उप+√विश्+क्त ।

टीका—अपास्येति—अन्वयः—भोगान् माम् च इमाम् महतीम् श्रियम् च अपास्य मानुषे न्यस्त-हृदया (सती) वश्यत्वम् न एव आगता ।

भोगान् विषयसुखानि माम् च इमाम्=एताम् महतीम्=विपुलाम् श्रियम्=राजलक्ष्मी च । अपास्य=तिरस्कृत्य मानुषे=मनुष्ये मनुष्य-रूपे रामे इत्यर्थः न्यस्तम्=स्थापितम् हृदयम् (कर्मधा०) यया सा (ब० व्री०) मम वश्यत्वम् =अधीनत्वम् न एव आगता=आयाता । अनुष्टुप् छन्दः ॥ १२ ॥

व्याकरण—भोगः=√भुज्+घञ् । अपास्य=अप+√अस्+ल्यप् । न्यस्त=नि+√अस्+क्त । वश्य=वश+यत् । आगत=आ+√गम् क्त ।

टीका—इयमिति-अन्वयः—सरलः । इयम्=एषा सा राजतनया=राज्ञः तनया=पुत्री राजकुमारीत्यर्थः (ष० तत्पु०) रामस्य पत्नी=भार्या मैथिली=सीता सिंह०-सिंहस्य=मृगेन्द्रस्य दर्शनात्=अवलोकनात् (ष० तत्पु०) वित्रस्ता = विशेषेण भीता (पं० तत्पु०) मृगी = हरिणी इव परितप्यते=दुःखीभवति । अत्र सीतायाः मृग्या सादृश्यप्रतिपादनात् उपमा । अनुष्टुप् ॥ १३ ॥

व्याकरण—पत्नी=पति+ङीप्, नुक् । मैथिली=मिथिलायां भवा इति मिथिला + अण्+ङीप् । दर्शनम्=√दृश्+ल्युट् । वित्रस्त = वि+√त्रस्+क्त । परितप्यते=परि+तप्+लट् ।

टीका—सीते इति-अन्वयः—हे सीते ! त्वम् उग्रचर्यम् व्रतम् त्यज । हे भामिनि ! कामवशात् निवृत्तम् गतायुषम् तम् मानुषम् अपास्य हे भद्रे ! अद्य सर्वगात्रैः माम् भजस्व ।

हनूमान्—हाय ! मैं अच्छी तरह जान गया ।

यह वह राजकुमारी राम की पत्नी सीता (बेचारी) सिंह देखने से डरी हुई मृगी की तरह कष्ट में पड़ी हुई हैं ॥ १३ ॥

रावणः—(उपेत्य)

सीते ! त्यज त्वं व्रतमुग्रचर्यं
भजस्व मां भामिनि ! सर्वगात्रैः ।
अपास्य तं मानुषमद्य भद्रे !
गतायुषं कामपथान्निवृत्तम् ॥ १४ ॥

सीता—हस्सो खु रावणओ, जो वअणगदसिद्धि वि ण जाणादि ।
[हास्यः खलु रावणकः, यो वचनगतसिद्धिमपि न जानाति ।]

हे सीते ! त्वम् उग्रा=कठोरा चर्या=चरणम् अनुष्ठानमित्यर्थः (कर्मधा०) यस्य तत् (ब० व्री०) (जिसका आचरण बड़ा कठोर है) व्रतम्=नियमम् इन्द्रिय-निग्रहरूपमित्यर्थः त्यज=उज्झ । हे भामिनि=सुन्दरि ! कामस्य= प्रणयस्य उपभोगेच्छायाः इति यावत् पथः=मार्गात् (ष० तत्पु०) पथिन्शब्दः समासे आकारान्तो जायते इति स्मरणीयम् अत एवात्र ०पथादिति, निवृत्तम्= पराङ्मुखम् तापसत्वे उपभोग-निषेधात्, गतम्=समाप्तम् आयुः=जीवित-कालः (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) (जिसकी आयु समाप्त हो गई है) तम् मानुषम्=मनुष्यरूपं रामम् अपास्य=अवधूय (ठुकराकर) अद्य हे भद्रे != कल्याणिनि सर्वाणि च तानि गात्राणि=अङ्गानि तैः (कर्मधा०) माम्= रावणम् भजस्व=सेवस्व । अनुष्टुप् ॥ १४ ॥

व्याकरण—चर्या—चरणम् चर्या इति √चर्+यत्+टाप् । त्यज= √त्यज्+लोट् म० । निवृत्त=नि+√वृत्+क्त । अपास्य=अप+आ+√अस्+ ल्यप् । भजस्व=√भज्+लोट् म० ।

टीका—हास्यः=हसितुं योग्यः (√हस्+ण्यत्) खलु=निश्चयेन, रावणकः= कुत्सितः रावणः (कुत्सायां क प्रत्ययः) वचने=कथने गता=स्थिता सिद्धिः=

रावण—(पास में आकर)

ओ सीता ! कठिनता के साथ किये जाने वाले व्रत को छोड़ । हे सुन्दरी ! विषय-भोग के मार्ग से निवृत्त हुए, क्षीण आयु वाले उस मनुष्य को ठुकरा कर हे कल्याणी ! सभी अंगों से मुझे ग्रहण कर ॥ १४ ॥

सीता—मूर्ख रावण सचमुच हँसी का पात्र है जो (अपनी ही) उक्ति में छिपी हुई (राम के अगतायु होने की) सिद्धि नहीं जान रहा है ।

हनूमान्—(सक्रोधम्) अहो रावणस्यावलेपः !

तौ च बाहू न विज्ञाय तच्चापि सुमहद् धनुः।
सायकं चापि रामस्य गतायुरिति भाषते ॥ १५ ॥

निष्पत्तिः ताम् (स० तत्पु०) अर्थात् स्वस्यैव कथने सिद्धं रामस्य दीर्घायुष्टं न जानाति=वेत्ति ।

टिप्पणी—हास्यः खलु—इस उक्ति में राम का 'अगतायु' अर्थात् 'दीर्घायु' होना सिद्ध हो जाता है। 'भद्रे गतायुषम्' में 'भद्रेऽगतायुषम्' इस तरह सन्धि में आकार का पूर्वरूप मानकर ऐसा अर्थ रावण के कथन में ही छिपा हुआ है। परन्तु मूर्ख रावण इसे नहीं समझता, इसीलिए वह उपहास का पात्र है। यह सारा कथन वास्तव में रावण को नहीं कहा गया है, क्योंकि उसे कहा जाता तो 'जानाति' यह प्रथम पुरुष की क्रिया न होकर 'जानासि' मध्यम पुरुष की क्रिया होनी चाहिए थी, इसलिए हमारे विचार से यह सीता की 'स्वगत' उक्ति समझनी चाहिए। रावण के प्रति उक्ति में 'हास्यः खल्वसि रावणकः यो वचनगतसिद्धिमपि न जानासि' यों पाठ-परिवर्तन अपेक्षित है। यह स्टेज डाइरेक्शन की गलती है।

टीका—सक्रोधम्=क्रोधेन=कोपेन सहितं (ब० व्री०) यथा स्यात्तथा। अवलेपः-अभिमानः।

ताविति—अन्वयः—रामस्य तौ च बाहू तत् च अपि सुमहत् धनुः सायकम् च अपि न विज्ञाय 'गतायुः' इति भाषते। रामस्य तौ=तच्छब्दोऽत्र प्रसिद्धार्थकः अर्थात् प्रसिद्धौ बाहू=भुजौ तत्=प्रसिद्धम् सुमहत्=सुविशालम् धनुः=चापम् च अपि सायकं=बाणम् च अपि न विज्ञाय=ज्ञात्वा (रामम्) 'गतायुः' इति भाषते=कथयति। अनुष्टुप् छन्दः ॥ १५ ॥

व्याकरण—विज्ञाय=वि+√ज्ञा+ल्यप्। भाषते=√भाष्+लट्।

हनूमान्—(क्रोध के साथ) रावण के अभिमान पर आश्चर्य होता है। राम के उन भुजाओं, उस विशाल धनुष और बाण को न जानकर उन्हें 'गतायु' कह रहा है॥ १५ ॥

न शक्नोमि रोषं धारयितुम् । भवतु, अहमेवार्यरामस्य कार्यं साधयामि । अथवा,

यद्यहं रावणं हन्मि कार्यसिद्धिर्भविष्यति ।
यदि मां प्रहरेद् रक्षो महत् कार्यं विपद्यते ॥ १६ ॥

टीका – रोषम्=क्रोधम् (√रुष्+घञ्) धारयितुम्=रोद्धुम् न शक्नोमि=प्रभवामि । कार्यम्=रावणवधरूपं कर्म, साधयामि=करोमि (√सिध्+णिच्+लट्+उ०) ।

यद्यहमिति—अन्वयः सरलः । यदि=चेत् अहम् रावणम् हन्मि=मारयामि कार्यस्य=रावणवधरूपस्य सिद्धिः=निष्पत्तिः भविष्यति । यदि रक्षः=राक्षसः रावण इति यावत् मां प्रहरेत्=मयि प्रहारं कुर्यात् (तर्हि) महत्=विपुलम् कार्यम्=रावणं हत्वा रामस्य सीताप्रत्यानयनरूपं कर्म विपद्यते=निष्फलो भवतीत्यर्थः । अनुष्टुप् ॥ १६ ॥

व्याकरण - हन्मि=√हन्+लट् उ० । सिद्धिः=√सिध्+क्तिन् । भविष्यति=√भू+लृट् । प्रहरेत्=प्र+√हृ+वि० लिङ् । विपद्यते=वि+√पद्+लट् ।

टिप्पणी—सीता के प्रति रावण के प्रणयनिवेदन पर हनूमान क्षुब्ध हो उठे और चाहते तो तत्काल रावण को मजा चखा देते, किन्तु उन्होंने सन्तुलन नहीं खोया । वे सुग्रीव के मंत्री हैं, बड़े विवेकशील हैं और 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' वाले सिद्धान्त पर आस्था रखते हैं । रामायण के अनुसार उनके मन में कितने ही तर्क-वितर्क उठते हैं । वे सोचते हैं कि मान लो यदि वे रावण को न मार सके, बल्कि रावण के हाथों बन्दी बनाये जाते हैं अथवा मार दिये जाते हैं और साथ ही रावण का अपमान करने से सीता को भी मार दिया जाता है तो समुद्र पार करके कौन राम को सूचना दे सकेगा । उनका सारा काम चौपट हो

मैं क्रोध नहीं रोक सकता । अच्छा, मैं ही आर्य राम का काम कर देता हूँ अथवा—

यदि मैं रावण को मार देता हूँ, तो कार्य सिद्ध हो जाता है, (किन्तु) यदि राक्षस (रावण) मुझ पर प्रहार कर दे, तो बड़ा मारी काम बिगड़ जाता है ॥ १६ ॥

रावण:—

वरतनु ! तनुगात्रि ! कान्तनेत्रे !
कुवलयदामनिभां विमुच्य वेणीम् ।
वहुविधमणिरत्नभूषिताङ्गं
दशशिरसं मनसा भजस्व देवि ! ॥ १७ ॥

जाएगा। इसलिए हनूमान् ने रावण की उपस्थिति में मानसिक संतुलन बनाये रखा। वास्तव में—'हनूमान्—(सक्रोधम्) अहो रावणस्यावलेप:' यहाँ से लेकर 'महत्कार्यं विपद्यते' यहाँ तक का यह सन्दर्भ नाटक की कथावस्तु के 'अश्राव्य' भाग के अन्तर्गत आता है। ये बातें हनूमान् किसी के प्रति नहीं कह रहे हैं। ये तो उनके अपने मन में उठे हुए विचार हैं, इसलिए यह स्वगत भाषण है। भास को यहाँ 'स्वगतम्' का मञ्चनिर्देश (स्टेज डाइरेक्शन) देना चाहिए था।

टीका—वरतन्विति—अन्वय:—सरल:। हे वरतनु !=वरं=सुन्दरं तनु:= शरीरं (कर्मधा०) यस्या: सा (ब० व्री०) तत्सम्बुद्धौ तनूनि कृशानि गात्राणि= अङ्गानि (कर्मधा०) यस्या: सा (ब० व्री०) तत्सम्बुद्धौ कृशाङ्गि इत्यर्थ:, कान्ते=रम्ये नेत्रे=नयने (कर्मधा०) यस्या: सा (ब० व्री०) तत्सम्बुद्धौ, कुवलयानाम्=नीलकमलानाम् यत् दाम=माला (ष० तत्पु०) तन्निभाम्= तत्तुल्याम् (उपमान तत्पु०) (कुवलय-माला जैसी) वेणीम्=कबरीम् (चोटी को) विमुच्य=विहाय (खोलकर) बहु०—बहव: अनेका: विधा:=प्रकारा: (ष० तत्पु०) येषां तानि (ब० व्री०) यानि मणि-रत्नानि (कर्मधा०) मणयश्च रत्नानि च=बहुमूल्या उपलविशेषा: (द्वन्द्व:) तै: भूषितानि=अलङ्कृतानि (तृ० तत्पु०) अङ्गानि=गात्राणि (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) (बहुत प्रकार के मणियों और रत्नों से अलंकृत हुए अंगों वाले) दश=दशसंख्यकानि शिरांसि=आननानि (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) रावणमित्यर्थ:

रावण—हे सुन्दर शरीर, पतले गात्र और मनोहर नेत्रों वाली ! नील कमलों की माला जैसी (काली) बालों की चोटी को छोड़ तरह-तरह के मणियों और रत्नों से अलंकृत दशानन को, हे रानी ! मन से अपना ले ॥ १७ ॥

सीता – हं विपरीओ खु धम्मो, जं जीवदि खु अअं पापरक्खसो।

[हं, विपरीतः खलु धर्मः, यद् जीवति खल्वयं पापराक्षसः ।]

रावणः -- ननु देवि ।

हे देवि !=महिषि ! मनसा=हृदयेन भजस्व=सेवस्व । अत्र वेण्याः कुवलय-दाम्ना सादृश्य-प्रतिपादनात् उपमा । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ १७ ॥

व्याकरण - कान्त=√कम्+क्त । विमुच्य+वि+√मुच्+ल्यप् । भूषित=√भूष्+क्त । भजस्व=√भज्+लोट् मध्य० ।

टिप्पणी—वेणी० विमुच्य—शास्त्रानुसार 'प्रोषितभर्तृका' नायिका अर्थात् पति-वियुक्त नारी के लिए शारीरिक शृंगार वर्जित है। वह न भूषण पहन सकती है, न केश सँवार सकती है; केवल केशों की एक वेणी--चोटी--रख सकती है, इसीलिए रावण सीता को केश-संस्कार करने को कह रहा है।

टीका—हम् इति खेदे । धर्मः खलु=निश्चयेन विपरीतः=विरुद्धः अयम्=एष पापः=पापी चासौ राक्षसः=(कर्मधा०) रावणः इत्यर्थः जीवति=प्राणिति अर्थात् अधर्माचरणात् रावणेन तत्कालमेव मर्तव्यमासीत् । शप्तः=शाप-विषयीकृतः हहह इति हासे,पतिव्रतायाः=सत्याः तेजः=वर्चः प्रभावः इत्यर्थः ।

टिप्पणी—शप्तोऽसि—सीता ने रावण को शाप दिया है, लेकिन क्या शाप दिया है—यह भास ने स्पष्ट नहीं किया । वाल्मीकि ने भी शाप का कोई उल्लेख नहीं कर रखा है, केवल इतना ही लिखा :—

'असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव ! भस्म भस्मार्हतेजसा' ॥

इसी तरह का भाव और लगभग ऐसी ही शब्दावली भास ने प्रतिमा नाटक में भी प्रयुक्त कर रखी है, देखिए—

"रावणः--विलपसि किमिदं विशालनेत्रे विगणय मां च यथा तवार्यपुत्रम् ।

सीता--हाय ! धर्म निश्चय ही विपरीत हो बैठा है जो यह पापी राक्षस (रावण) सचमुच जी रहा है ।

रावण--ओ रानी !

सीता—सत्तो सि ।

रावण:—हहह, अहो पतिव्रतायास्तेज: !

देवा: सेन्द्रादयो भग्ना दानवाश्च मया रणे ।
सोऽहं मोहं गतोऽस्म्यद्य सीतायास्त्रिभिरक्षरै: ॥ १८ ॥

(नेपथ्ये)

जयतु देव: । जयतु लङ्केश्वर: । जयतु स्वामी । जयतु महाराज: । दश नाडिका: पूर्णा: । अतिक्रामति स्नानवेला । इत इतो महाराज: ।

(निष्क्रान्त: सपरिवारो रावण: ।)

सीता:—(सरोषम्) सत्तोऽसि (शप्तोऽसि) ।

रावण:—अह ! अहो पतिव्रतायास्तेज: ।

योऽहमुत्पतितो वेगान्न दग्ध: सूर्यरश्मिभि: ।
अस्या: परिमितैर्दग्घ। शप्तोऽसीत्येभिरक्षरै: ॥" (५।२०)

देवा इति—अन्वय:—सेन्द्रादय: देवा: दानवा: च मया रणे भग्ना: । स: अहम् अद्य सीताया: त्रिभि: अक्षरै: मोहम् गत: अस्मि ।

इन्द्र:=शक्र: आदि: (कर्मधा०) येषां ते (ब० व्री०) इन्द्रादिभि:=सह वर्तमाना: (ब० व्री०) देवा:=सुरा: दानवा:=दैत्याश्च मया=रावणेन रणे=युद्धे भग्ना:=पराजिता: स: अहम् अद्य सीताया:=जानक्या: त्रिभि:=त्रिसंख्यकै: अक्षरै:=वर्णै: 'शप्तोसि' इत्यात्मकै: मोहम्=व्याकुलताम् गत:=प्राप्त: अस्मि । अनुष्टुप् ॥ १८ ॥

व्याकरण—देवा:=दीव्यन्तीति √दिव्+अच् । दानवा: दनो: अप-

सीता—तुझे (मैंने) शाप दे दिया है ।

रावण—ह ह ह ! पतिव्रता के तेज पर (मुझे) आश्चर्य है ।

इन्द्र आदि सहित देवताओं और दानवों को मैंने युद्ध में पछाड़ रखा है। वह मैं आज सीता के तीन अक्षरों (श–प्तोऽ–सि) से घबरा गया हूँ ॥ १८ ॥
(नेपथ्य में) महाराज की जय ! लङ्केश्वर की जय ! स्वामी की जय ! महाराज की जय ! दस घड़ियाँ समाप्त हो चुकी है । स्नान का समय बीत रहा है । इधर, इधर महाराज ! (परिवार सहित रावण चला गया) ।

हनूमान्—हन्त निर्गतो रावणः, सुप्ताश्च राक्षसस्त्रियः।
अयं कालो देवीमुपसर्पितुम्। (कोटरादवरुह्य) जयत्वविधवा।

त्यानि पुमांसः इति दनु+अण्। भग्न—√भञ्ज्+क्त। मोहः=√मुह्+घञ्।
गत=√गम्+क्त।

टीका लङ्केश्वरः=लङ्कायाः ईश्वरः=अधिपः रावण इत्यर्थः। नाडिका=घटिकाः पूर्णाः—समाप्ताः। स्नानस्य वेला=समयः अतिक्रामति=अत्येति।

टिप्पणी—नाडिकाः—नाड़ी समय का एक पुराना माप है, जिसे घड़ी भी कहते हैं। एक घड़ी आधुनिक २४ मिनटों की हुआ करती है। ढाई घड़ी का एक घण्टा होता है। दस घड़ी का मतलब चार घण्टे हुआ। मशालों की रोशनी और चन्द्रमा के प्रकाश से सिद्ध होता है कि काम-पीड़ित रावण रात के बारह बजे के लगभग सीता के पास आया था और चार घण्टे उसकी सीता के साथ बातें चलती रहीं चार बजे उषा लाल हो जाने पर नौकरों ने रावण को स्नान-समय की सूचना दी है।

टीका—हन्त !=हर्षे निर्गतः=निसृतः राक्षसानां स्त्रियः=राक्षस्यः (ष० तत्पु०) सुप्ताः=शयिताः। अयम्=एष कालः=समयः देवीम्=महिषीम् सीतामित्यर्थः उपसर्पितुम्=उपगन्तुम्। कोटरात्=वृक्षस्य क्रोडात् अवरुह्य=नीचैः आगत्य। जयतु अविधवा=सौभाग्यवती।

टिप्पणी—अविधवा—यह शब्द भास ही नहीं अपितु कालिदास और बाण तक के समय में कोई अमंगल अर्थ नहीं रखता था। कालिदास ने मेघदूत में—'भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि' (९६) लिख रखा है। बाण भी अपने हर्ष चरित में—'तस्मिन् अविधवामय इव भवति राजलोके···आजगाम विवाह-दिवसः' (४) लिखता है।

प्रेषित इति अन्वयः—विदितात्मना त्वद्गत० नरेन्द्रेण=राज्ञा रामेण अहम् प्रेषितः। विदिता॰ विदितः=ज्ञातः आत्मा=धृतिः (कर्मधा०) यस्य

हनूमान्—हर्ष की बात है कि रावण चला गया। राक्षसों की स्त्रियाँ सो गई हैं। रानी के समीप जाने का यही समय है। (खोल में उतरकर) सौभाग्यवती की जय !

प्रेषितोऽहं नरेन्द्रेण रामेण विदितात्मना।
त्वद्गतस्नेहसन्तापविक्लवीकृतचेतसा ॥ १९ ॥

सीता—(आत्मगतम्) को णु खु अअं, पावरक्खसो अय्यउत्तकेरओ त्ति अत्ताणं ववदिसिअ वाणररूवेण मं वञ्चिदुकामो भवे। भोदु, तुह्णिआ भविस्सं। [को नु खल्वयं, पापराक्षस आर्यपुत्रसम्बन्धीत्यात्मानं व्यपदिश्य वानररूपेण मां वञ्चयितुकामो भवेत्। भवतु, तूष्णीका भविष्यामि।

तेन (ब० व्री०) ('आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः' इत्यमरः) (जिसका धैर्य विदित ही है) त्वद्गत--त्वयि गतः=स्थित (स० तत्पु०) यः स्नेहः=प्रणयः (कर्मधा०) तस्मात् यः सन्तापः=दुखम् (पं० तत्पु) विक्लवीकृतम्=विह्वलीकृतम् (तृ० तत्पु०) चेतः=मनः (कर्मधा०) यस्य तेन (ब० व्री०) (तुम पर स्नेह होने कारण दुःख से व्याकुल हुए) नराणाम्=मनुष्याणाम् इन्द्रेण= स्वामिना अहं प्रेषितः=प्रहितः अस्मि। अनुष्टुप् ॥ १९ ॥

व्याकरण--विदित=√विद्+क्त। स्नेहः=√स्निह्+घञ्। सन्तापः= सम्√तप्+घञ्। विक्लवीकृतः=अविक्लवः विक्लवः सम्पाद्यमानः कृतः इति विक्लव+√कृ+च्वि+क्तः।

टीका—पापराक्षसः=रावणः इत्यर्थः आर्यपुत्रस्य=प्राणनाथस्य सम्बन्धी= सम्बन्धवान्, व्यपदिश्य=कथयित्वा वानरस्य रूपेण=रूपं धृत्वेत्यर्थः वञ्चयितुम्=प्रतारयितुम् कामः=इच्छा यस्य सः (ब० व्री०) (ठगना चाहता हुआ) तूष्णीका=तूष्णीं शीलं यस्याः इति तूष्णीम्+अकच् मलोपश्च धृतमौना। प्रत्येति=विश्वसिति। अन्या शङ्का (कर्मधा०) तया (और तरह की शंका न करें) श्रोतुम्=आकर्णयितुम् अर्हति=योग्या अस्ति।

राजा राम ने मुझे भेजा है, जिनका धैर्य विदित है और जिनका चित्त तुम पर प्रेम होने के कारण दुःख से विह्वल हो उठा है ॥ १९ ॥

सीता--(अपने मन में) सचमुच यह कौन होगा ? पापी राक्षस (रावण) अपने को 'मैं (तुम्हारे) पति का सम्बन्धी हूँ' यह कहकर वानर रूप में मुझे ठगना चाह रहा हो। अच्छा, चुप रहूँगी।

हनूमान्—कथं न प्रत्येति भवती। अलमन्यशङ्कया। श्रोतुमर्हति भवती।

इक्ष्वाकुकुलदीपेन सन्धाय हरिणा त्वहम्।
प्रेषितस्त्वद्विचित्यर्थं हनूमान् नाम वानरः ॥ २० ॥

सीता—(आत्मगतम्) जो वा को वा भोदु। अय्यउत्तणामसङ्कित्तणेण अहं एदेण अभिभासिस्सं। (प्रकाशम्) भद्द ! वुत्तन्तो अय्यउत्तस्स। [यो वा को वा भवतु। आर्यपुत्रनामसंकीर्तनेनाहमेतेनाभिभाषिष्ये। भद्र ! को वृत्तान्त आर्यपुत्रस्य ?]

इक्षाविवृति—अन्वयः—इक्ष्वाकुकुलदीपेन सन्धाय हरिणा त्वद्विचित्यर्थम् अहं हनूमान् नाम वानरः प्रेषितः।

इक्ष्वाकु० इक्ष्वाकोः=वैवस्वत मनोः पुत्रस्य सूर्यवंशीय-प्रसिद्धभूपविशेषस्य कुलम्=वंशः (ष० तत्पु०) तस्य दीपेन=दीपवत् प्रकाशकेनेत्यर्थः रामेण इति यावत् सन्धाय=मैत्रीसन्धिं कृत्वा हरिणा=वानरेण (सुग्रीवेण) तव=ते विचितिः =अन्वेषणम् (ष० तत्पु०) इति (चतुर्थ्यर्थे अर्थेन नित्यसमासः) (तुम्हें ढूँढने हेतु) प्रेषितः=प्रहितः। अत्र रामे दीपत्वारोपात् रूपकालङ्कार। अनुष्टुप् ॥ २० ॥

व्याकरण—सन्धाय=सम्+√धा+ल्यप्। विचितिः=वि+√चि+क्तिन्। प्रेषित=प्र+ईष्+क्त।

टीका—आर्य०=आर्यपुत्रस्य = प्राणनाथस्य नाम्नः = नामधेयस्य (ष० तत्पु०) सङ्कीर्तनेन=उच्चारणेन (ष० तत्पु०) अहम् एतेन=अनेन अभिभाषिष्ये = आलपिष्यामि। वृत्तान्तः=समाचारः। श्रूयताम् = आकर्ण्यताम्। (√श्रु+लोट् कर्मवाच्य में)।

हनूमान—आप क्यों विश्वास नहीं कर रही है ? अन्य शंका न कीजिए। आप मेरी सुनिए—

इक्ष्वाकु-वंश के दीपक (राम) के साथ मित्रता गाँठ कर वानर (सुग्रीव) ने तुम्हें ढूँढने के लिए मुझ हनूमान्—नामक वानर को भेजा है ॥ २० ॥

सीता—(मन ही मन में) हो जो हो ! आर्यपुत्र का नाम लेने से इससे बात करूँगी। (प्रकट में) आर्यपुत्र का क्या हाल-समाचार है ?

हनूमान्—भवति ! श्रूयताम्,

अनशनपरितप्तं पाण्डु स क्षामवक्त्रं
तव वरगुणचिन्तावीतलावण्यलीलम् ।
वहति विगतधैर्यं हीयमानं शरीरं
मनसिजशरदग्धं बाष्पपर्याकुलाक्षम् ॥ २१ ॥

अनशनेति—अन्वयः—सः अनशन० पाण्डु क्षाम० तव वरगुण० मनसिज० विगत० वाष्प० हीयमानम् शरीरं वहति ।

अनशन०—अशनं = भोजनम् न अशनम् इत्यनशनम् (नञ्तत्पु०) उपवासः तेन परितप्तम्=दुःखितम् (तृ० तत्पु०) पाण्डु=पीतवर्णम् क्षामम्=शुष्कम् वक्त्रम्=मुखम् (कर्मधा०) यस्मिन् तत् (ब० व्री०) (सूखे हुए मुँह वाला) तव=ते वर०-=वराः=श्रेष्ठाः ये गुणाः=सौन्दर्यादयः (कर्मधा०) तेषां चिन्ता=चिन्तनम् स्मरणमित्यर्थः (ष० तत्पु०) तया वीते = गते (तृ० तत्पु०) लावण्यं=सौन्दर्यं च लीला=विलासश्चेति ०लीले (द्वन्द्वः) यस्मिन् तत् (ब० व्री०) (आपके श्रेष्ठ गुणों का चिन्तन करते रहने से जिसमें सौन्दर्य और विलास लुप्त हो बैठे हैं) मनसिज०-मनसिजस्य=कामदेवस्य शरैः=बाणैः (ष० तत्पु०) दग्धम्=प्लुष्टम् (तृ० तत्पु०) (कामदेव के बाणों से जला) बाष्प०-बाष्पेण=अश्रुणा पर्याकुलम्=पूर्णम् (तृ० तत्पु०) अक्षि=नयनं (कर्मधा०) यस्मिन् तत् (ब० व्री०) (आंसू-भरे आंखों वाला) विगतं=नष्टम् धैर्यम्=धृतिः (कर्मधा०) यस्मिन् तत् (ब० व्री०) हीयमानम्=क्षीयमाणम् (क्षीण होता जा रहा) शरीरम्=देहम् वहति=धारयति । कारण-प्रतिपादनात् काव्यलिङ्गम् । मालिनी वृत्तम् ॥ २१ ॥

व्याकरण--अशनम् = √अश्+ल्युट् । परितप्त = परि+√तप् + क्त । क्षाम=√क्षै+क्तः, तकारस्य मकारः । चिन्ता=√चिन्त्+अङ्+टाप् । वीत=

हनूमान्--आप सुनिए--

खाना न खाने से संतप्त, पीला बना हुआ, सूखे हुए मुख वाला, आपके अच्छे गुणों का चिन्तन करते रहने से सौन्दर्य और विलास खोये हुए, कामदेव के बाणों से जला, धैर्य रहित, अश्रु-पूर्ण नयन वाला सूखता जाता हुआ शरीर धारण कर रहे हैं ॥ २१ ॥

सीता—(आत्मगतम्) हद्धि वीळिआ खु म्हि मन्दभाआ एवं सोअन्तं अय्यउत्तं सुणिअ। अय्यउत्तस्स विरहपरिस्समो वि मे सफळो संवुत्तो त्ति पेक्खामि जदि खु अअं वाणरो सच्चं मन्तेदि। अय्यउत्तस्स इमस्सिं जणे अणुक्कोसं परिस्समं च सुणिअ सुहस्स दुक्खस्स अ अन्तरे डोळाअदि विअ मे हिअअं। (प्रकाशम्) भद्द ! कहं तुम्हेहि अय्यउत्तस्स सङ्गमो जादो। [हा धिग् व्रीडिता खल्वस्मि मन्दभागा एवं शोचन्तमार्यपुत्रं श्रुत्वा। आर्यपुत्रस्य विरहपरिश्रमोऽपि मे सफलः संवृत्त इति पश्यामि, यदि खल्वयं वानरः सत्यं मन्त्रयते। आर्यपुत्रस्यास्मिन् जनेऽनुक्रोशं परिश्रमं च श्रुत्वा सुखस्य दुःखस्य चान्तरे दोलायत इव मे हृदयम्। भद्र ! कथं युष्माभिरार्यपुत्रस्य सङ्गमो जातः ?]

वि+√इ+क्त। लावण्यम्=लवणस्य (सुन्दरस्य) भाव इति लवण+ष्यञ्। मनसिज=मनसि जायते इति मनस्+√जन्+ड विकल्प से सप्तमी का लोप नहीं होता। लोप-पक्ष में 'मनोज' बनेगा। दग्ध=√दह्+क्त। धैर्यम्=धीरस्य भावः इति धीर+ष्यञ्। हीयमानम्=√हा+शानच्।

टीका—व्रीडिता=√व्रीड्+क्त+टाप् लज्जिता। मन्दभागा=मन्दः=हीनः भागः=भाग्यं (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) मन्दभाग्या। शोचन्तम्=√शुच्+शतृ+द्वि० शोकं कुर्वन्तम्। श्रुत्वा=√श्रु+क्त्वा। विरहस्य=वियोगस्य परिश्रमः=खेदः (ष० तत्पु०)। संवृत्तः=जातः। मन्त्रयते=√मन्त्र+णिच्+लट् कथयति। अस्मिन् जने=मयि इत्यर्थः अनुक्रोशम्=कृपाम् (कृपा दयानुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽप्यथो हसः इत्यमरः) परिश्रमम्=खेदम् अन्तरे=मध्ये दोलायते=दोला=प्रेंखा तद्वत् आचरतीति दोला+क्यङ्+लट् (झूल रहा है)। इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। सङ्गमः=मेलनम् समागमः इति यावत्।

सीता—(मन ही मन) हाय ! धिक्कार है ! आर्यपुत्र को इस तरह शोक करते हुए सुनकर सचमुच में मन्दभागिनी लज्जित हूँ। आर्यपुत्र के वियोग का खेद भी (मेरा) सफल है 'ऐसा मैं' देख रही हूँ यदि निश्चय से यह वानर सत्य कह रहा है तो। इस जन (मुझ) पर आर्यपुत्र की कृपा और खेद सुनकर मेरा हृदय सुख और दुःख के बीच झूल-सा रहा है (प्रकट में) भले (वानर) ! तुम लोगों का आर्यपुत्र के साथ कैसे मेल हुआ ?

हनूमान्—भवति ! श्रूयताम्—

हत्वा वालिनमाहवे कपिवरं त्वत्कारणादग्रजं
सुग्रीवस्य कृतं नरेन्द्रतनये ! राज्यं हरीणां ततः ।
राज्ञा त्वद्विचयाय चापि हरयः सर्वा दिशः प्रेषिता-
स्तेषामस्म्यहमद्य गृध्रवचनात् त्वां देवि ! सम्प्राप्तवान् ॥२२॥

टीका—हत्वेति—अन्वयः—हे नरेन्द्रतनये ! त्वत्कारणात् अग्रजम् कपिवरम् वालिनम् हत्वा ततः हरीणाम् राज्यम् सुग्रीवस्य कृतम् । राज्ञा च त्वद्विचयाय हरयः सर्वाः दिशः प्रेषिताः । हे देवि ! तेषाम् (मध्ये) अहम् अद्य गृध्रवचनात् त्वाम् सम्प्राप्तवान् अस्मि । नरेन्द्रस्य=नृपतेः तनया=पुत्री तत्सम्बुद्धौ (ष० तत्पु०) राजकुमारि इत्यर्थः तव कारणात् त्वत्कारणात् (ष० तत्पु०) कपिषु वरम्–श्रेष्ठम् (स० तत्पु०) अग्रजम्–ज्येष्ठभ्रातरम् वालिनमित्यर्थः हत्वा=मारयित्वा ततः=तदनन्तरम् हरीणाम्=वानराणाम् राज्यम् सुग्रीवस्य कृतम्=वालिनः स्थाने सुग्रीवः राज्येऽभिषिक्तः इत्यर्थः राज्ञा=सुग्रीवेण तव विचयः=अन्वेषणम् तस्मै (ष० तत्पु०) हरयः=वानराः च सर्वाः=निखिलाः दिशः=दिशाः सर्वासु दिशासु इत्यर्थः प्रेषिताः=प्रहिताः । हे देवि !=महिषि ! तेषाम्=वानराणाम् (मध्ये) अहम्=हनूमान् अद्य गृध्रस्य=सम्पातेः वचनात्=कथनात् अद्य त्वाम् सम्प्राप्तवान्=आगतवान् अस्मि । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २२ ॥

व्याकरण—अग्रजम्=अग्रे जायते इति अग्र+√जन्+डः (उपपद तत्पु०) हत्वा=√हन्+क्त्वा । कृत=√कृ+क्त । हरयः सर्वाः दिशः प्रेषिताः=यहाँ भास ने प्रेष् धातु को द्विकर्मक बना रखा है जो पाणिनि के विरुद्ध है । यहाँ सर्वासु दिक्षु होना चाहिए । यदि दिशा को अध्वा माना जाय, तो 'कालाध्वनो-

---

हनूमान्—आप सुनिए—

हे राजकुमारी ! तुम्हारे कारण वानरों में श्रेष्ठ, ज्येष्ठ भाई (बाली) को मारकर तत्पश्चात् राज्य सुग्रीव का कर दिया । राजा (सुग्रीव) ने तुम्हें ढूँढ़ने हेतु सभी दिशाओं में वानर भेजे । हे रानी ! उन वानरों में मैं गीध (संपाति) के कहने से आज तुम्हारे पास पहुँचा हूँ ॥ २२ ॥

अपि च, ईदृशमिव ।

सीता—अहो अअरुणा क्खु इस्सरा एव्वं सोअन्तं अय्यउत्तं करअन्तो ।

अहो अकरुणाः खल्वीश्वरा एवं शोचन्तमार्यपुत्रं कुर्वन्तः ।]

हनूमान्—भवति ! मा विषादेन । रामो हि,

प्रगृहीतमहाचापो वृतो वानरसेनया ।
समुद्धर्तुं दशग्रीवं लङ्कामेवाभियास्यति ॥ २३ ॥

रत्यन्तसंयोगे' (पा० २।३।५) से द्वितीया हो सकेगी, अन्यथा नहीं । विचयः= वि+√चि+अच् । वचनम्=√वच्+ल्युट् । संप्राप्तवान्=सम्+प्र+√आप्+क्तवतु ।

टीका—अपि च=तथा च....ईदृशम्=एतादृशम् इवेति वाक्यालकारे । अकरुणाः=न करुणा=दया (कर्मधा०) येषु ते (ब० व्री०) निर्दयाः खलु= निश्चयेन ईश्वराः=देवताः आर्यपुत्रम्=प्राणनाथम् एवम् शोचन्तम्=शोकं कुर्वन्तम् कुर्वन्तः=अनुतिष्ठन्तः ।

टिप्पणी—अपि च....ईदृशमिव—हनूमान् ने ऐसा क्या कहा, भास ने नहीं बताया है । सीता को हनूमान् पर विश्वास नहीं हो रहा था कि वह राम का दूत है । उन्हें पूरा विश्वास दिलाने के लिये हनूमान् ने विस्तार से राम का वर्णन किया, उनके गुण बताए और वियोग में उनके शोक का चित्र खींचा । तब जाकर कहीं सीता को विश्वास आया । रामायण में इसका बड़ा विस्तार है ।

टीका—प्रगृहीतेति—अन्वयः—प्रगृहीत० वानरसेनया वृतः (रामो हि) दशग्रीवम् समुद्धर्तुम् लङ्काम् एव अभियास्यति ।

प्रगृहीत०—प्रगृहीतः=धृतः महान् चापः (कर्मधा०) येन सः (ब० व्री०) (महाधनुष लिये) वानराणाम् सेनया=सैन्येन वृतः=परिवृतः (वानर-सेना से

और भी...ऐसा ऐसा ।

सीता—आश्चर्य है, देवता निर्दयी हैं, जो आर्यपुत्र को इस तरह शोक-पूर्ण बना रहे हैं ।

हनूमान्—रानी ! खेद मत करो, क्योंकि—

महाधनुष लिये, वानर-सेना से घिरे हुए राम दशानन का विनाश करने लंका पर चढ़ाई करेंगे ॥ २३ ॥

सीता—किण्णु खु सिविणो मए दिट्ठो। भद्द ! अवि सच्चं ? ण आणामि [किन्नु खलु स्वप्नो मया दृष्टः । भद्र ! अपि सत्यम् ? न जानामि ।]

हनूमान्—(स्वगतम्) भोः ! कष्टम् ।

एवं गाढं परिज्ञाय भर्तारं भर्तृवत्सला ।
न प्रत्यायति शोकार्ता यथा देहान्तरं गता ॥ ८४ ॥

घिरे) दशग्रीवम्=रावणम् समुद्धर्तुम्=विनाशयितुम् लंकाम् एव अभिया- स्यति=आक्रमिष्यति । अनुष्टुप् ॥ २३ ॥

व्याकरण—प्रगृहीत=प्र+√ग्रह्+क्त । वृत=√वृ+क्त । समुद्धर्तुम्=सम्+ उत्+हृ+तुम् । अभियास्यति=अभि+√या+लृट् ।

टीका - स्वप्नो मया दृष्टः ?=सीता रामकृतं लङ्कामियानं रावणविनाशं च स्वप्नदर्शनमिव वेत्तीति भावः ।

एवमिति - अन्वयः—भर्तृवत्सला (सीता) भर्तारम् एवम् गाढम् परिज्ञाय (अपि) शोकार्ता (सती) न प्रत्याययति यथा देहान्तरं गतः (काचित् न प्रत्याययति ॥

भर्तरि=स्वामिनि वत्सला=प्रणयिनी (सीता) भर्तारम् एवम् गाढम्= पूर्णतयेत्यर्थः परिज्ञाय=विदित्वा (अपि) शोकेन=दुःखेन आर्ता=पीडिता (तृ॰ तत्पु॰) न प्रत्याययति=विश्वसिति यथा देहान्तरम्=अन्यः देह इति देहान्तरम् (मयूरव्यंसकादित्वात् अनियमित-समासः) द्वितीयं शरीरं गता=प्राप्ता (काचित्) । अनुष्टुप् ॥ २४ ॥

व्याकरण—भर्ता=भरतीति√भृ+तृच् । परिज्ञाय=परि+√ज्ञा+ल्यप् । शोक=√शुच्+घञ् । आर्त=आ+√ऋ+क्त । प्रत्याययति=यहाँ 'प्रत्येति' के स्थान में भास ने णिजन्त का रूप दिया है, जो पाणिनि-व्याकरण के विरुद्ध है ।

सीता—क्या मैंने सचमुच स्वप्न देखा है ? हे भागवान् ! क्या यह सत्य है ?

हनूमान्—(मन ही मन) अरे दुःख की बात है, पति की प्रणयिनी पति को इस प्रकार खूब जानकर (भी) शोक-पीड़ित हुई इस तरह विश्वास नहीं कर रही है जैसे दूसरे देह में गई हुई (कोई स्त्री विश्वास नहीं करती है) ॥ २४ ॥

(प्रकाशम्) भवति ! अयमिदानीं,

समुदितवरचापबाणपाणि
पतिमिह राजसुते ! तवानयामि ।
भव हि विगतसंशया मयि त्वं
नरवरपार्श्वगता विनीतशोका ॥ २५ ॥

टिप्पणी—यथा देहान्तरम्—सीता को अपने पति के विषय में सब कुछ ज्ञान होने पर भी विश्वास ही नहीं हो रहा है कि वे आक्रमण करके रावण का वध करेंगे और उसे छुड़ाएँगे, क्योंकि वह बहुत ही दुःखातुर है। जैसे जन्मान्तर की बात पर किसी को विश्वास नहीं होता है, वैसा ही हाल सीता का भी हो रहा है। लोगों में ऐसा भी धारणा है कि जब रावण ने सीता को हरा, तो असली सीता देहान्तर में चली गई थी और अग्नि-प्रवेश के बाद ही अपने असली रूप में प्रकट हुई। उसे इन दुःखों का कुछ पता नहीं था।

टीका - समुदितेति अन्वयः—हे राजसुते ! समुदित० तव पतिम् (अहम्) इह आनयामि त्वम् हि मयि विगत-संशया (सती) नरवर० विनीत-शोका भव।

राज्ञः=नृपस्य सुता=पुत्री तत्सम्बुद्धौ (ष० तत्पु०) समुदित०–समुदितौ= उत्थितौ च वरौ=उत्कृष्टौ च (कर्म धा०) चाप-बाणौ (कर्मधा०)=चापश्च बाणश्च (द्वन्द्वः) पाणौ=हस्ते यस्य तम् (ब० व्री०) (हाथों में उत्तम धनुष-लिये) तव पतिम्=राममित्यर्थः इह=लङ्कायाम् आनयामि=प्रापयामि। त्वम् हि=निश्चयेन मयि=मम विषये विगतः=अपगतः संशयः=सन्देहः (कर्म धा०) यस्याः सा (ब० व्री०) नरेषु=मनुष्येषु वरः=श्रेष्ठः (स० तत्पु०) तस्य पार्श्वम्= निकटम् (ष० तत्पु०) गता=प्राप्ता (द्वि० तत्पु०) (नरश्रेष्ठ (राम) के पास गई हुई) विनीतः=अपनीतः दूरीकृत इत्यर्थः शोकः=दुःखम् (कर्मधा०)

(प्रकट में) श्रीमती जी ! यह (मैं) अब—

हे राजपुत्री ! हाथ में उत्तम धनुष-बाण उठाये तुम्हारे पति को यहाँ ला रहा हूँ। तुम निश्चय के साथ मेरे विषय में सन्देह मिटाये, नर-श्रेष्ठ (राम) के पास गई हुई, शोक मिटाये होओ ॥ २५ ॥

सीता—भद्द ! एदं मे अवत्थं सुणिअ अय्यउत्तो जह सोअपरवसो ण होइ, तह मे उत्तन्तं भणेहि । [भद्र ! एतां मेऽवस्थां श्रुत्वार्यपुत्रो यथा शोकपरवशो न भवति, तथा मे वृत्तान्तं भण ।]

हनूमान्—यदाज्ञापयति भवती ।

सीता—गच्छ, कय्यसिद्धो होदु । [गच्छ, कार्यसिद्धिर्भवतु ।]

हनूमान्—अनुगृहीतोऽस्मि । (परिक्रम्य) कथमिदानीं ममागमनं रावणाय निवेदयामि । भवतु, दृष्टम् ।

यस्याः तथाभूवा (ब० व्रो०) (शोक मिटाये) भव=भवती भवतु । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ २५ ॥

व्याकरण—समुदित=सम्+उत्+√इ+क्त । आनयामि=आ+√नी+लट् निकट भविष्य में वर्तमान काल है । विगत=वि+√गम्+क्त । संशयः=सम्+√शी+अच् । विनीत+वि+√नी+क्त । भव=√भू+लोट् मध्य० ।

टीका—अवस्थाम्=दशाम् श्रुत्वा=आकर्ण्य शोकस्य=दुःखस्य परवशः= अधीनः वृत्तान्तम्=समाचारम् भण=कथय । कार्यसिद्धिः=सफलता (ष० तत्पु०) अनुगृहीतें=(अनु+√ग्रह्+क्त) कृतानुग्रहः । मम=आत्मनः इत्यर्थः निवेदयामि= सूचयामि । दृष्टम्=चिन्तितम् ।

परभृतेति—अन्वयः—कर० परभृत० पद्म० सुरुचिर० तोयदाभम् त्रिकूटम् काननम् चूर्णयित्वा राक्षसेशम् विगत-विषय-दर्पम् करोमि ।

कर० करौ च चरणौ च तेषां समाहारः इति करचरणम् (समाहार-द्वन्द्वः) तैः विमर्दैः=मर्दनैः परभृतानाम्=परपुष्टानाम् कोकिलानामिति यावत् गणेन=समूहेन (ष० तत्पु०) जुष्टम्=सेवितम्, (कोयलों द्वारा सेवित) पद्मा-

---

सीता—हे भाग्यवान् ! मेरी इस दशा को आर्यपुत्र के पास इस ढंग से कहना कि जिससे वे शोकाधीन न हो बैठें ।

हनूमान्—जैसी आपकी आज्ञा ।

सीता—जाओ, तुम्हारा कार्यसिद्ध हो ।

हनूमान्—मैं अनुगृहीत हूँ । (घूमकर) अपना आगमन किस तरह रावण को सूचित करूँ ? अच्छा, सोच लिया है ।

परभृतगणजुष्टं पद्मषण्डाभिरामं
सुरुचिरतरुषण्डं तोयदाभं त्रिकूटम् ।
करचरणविमर्दैः काननं चूर्णयित्वा
विगतविषयदर्पं राक्षसेशं करोमि ॥ २६ ॥ (निष्क्रान्तौ)
इति द्वितीयोऽङ्कः ।

नाम्=कमलानाम् षण्डेन=समूहेन (ष० तत्पु०) अभिरामम्=रमणीयम् (तृ० तत्पु०) (कमलों के समूह से सुन्दर) सु=सुष्ठु रुचिराः=सुन्दराः ये तरवः= वृक्षाः (कर्मधार०) तेषाम् षण्डः=समूहः (ष० तत्पु०) यस्मिन् तत् (ब० व्री०) (बड़े अच्छे वृक्षों वाले) तोयदाः=मेघाः तद्वत् आभा=कान्तिः (उपमान तत्पु०) यस्य तत् (ब० व्री०) (मेघों-जैसे) त्रयः=त्रिसंख्यकाः कूटाः=शैल-शृङ्गाणि (कर्मधा०)यस्मिन् तत् (ब० व्री०) काननम्=उपवनमित्यर्थः चूर्ण-यित्वा=ध्वंसयित्वा राक्षसानाम्=असुराणाम् ईशः=प्रभुः रावणः इत्यर्थः तम् (ष० तत्पु०) विगत० विषयः=देशः लङ्केत्यर्थः तस्य=तत्सम्बन्धी इति यावत् दर्पः=अभिमानः (ष० तत्पु०) विगतः=नष्टः विषय-दर्पः=अभिमानः (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) करोमि=विदधे । तस्य सर्वमेव प्रमदवनम् ध्वंसयित्वा रावणस्य लंकाविषयकम् अभिमानम् दूरीकरोमीति भावः । अत्र तोयदाभम् इत्युपमा । मालिनी वृत्तम् ॥ २६ ॥

व्याकरण—परभृताः=परैः भृताः=पालिताः इति पर+√भृ+क्त । परभृत कोयल को कहते हैं ; क्योंकि वे दूसरों द्वारा पाली जाती हैं । 'कोयल के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वह अपने बच्चों को कौओं के घोसलों में रख देती है और काला होने से कौआ अपना ही बच्चा समझकर उसे पाल देते हैं । जुष्टम्=√जुष्+क्त । तोयदः=तोयं=जलं ददातीति तोय+√दा+कः (उपपद तत्पु०) । विमर्दः=वि+√मृद्+घञ् । चूर्णयित्वा=√चूर्ण+णिच्+क्त्वा । दर्पः=√दृप्+अच् ।

द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः

कोयलों के समूह द्वारा सेवित, पद्मसमूह से सुन्दर बने हुए, बड़े अच्छे वृक्ष-समूह वाले, मेघ की-सी छटावाले, तीन पर्वतशिखरों से युक्त वन को हाथ-पैरों से कुचल कर, राक्षसराज (रावण) को (अपने) देश के अभिमान से रहित कर देता हूँ ॥ २६ ॥ (दोनों निकल गए) ॥ द्वितीय अंक समाप्त ॥

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति शङ्कुकर्णः)

शङ्कुकर्णः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रविश्य)

प्रतिहारी—अय्य ! अहं विजआ । किं करीअदु । [आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ।]

शङ्कुकर्णः—विजये ! निवेद्यतां निवेद्यतां महाराजाय लङ्केश्वराय—भग्नप्रायाशोकवनिकेति । कुतः,

---

टीका—काञ्चन०—काञ्चनस्य=सुवर्णस्य तोरणद्वारम्=बहिर्द्वारम् (ष० तत्पु०) अशून्यम्=न शून्यम्=रहितम् (नञ् तत्पु०) कुरुते=विधत्ते द्वारं को रक्षतीत्यर्थः । क्रियताम्=विधीयताम् । निवेद्यताम्=सूच्यताम्, लङ्कायाः ईश्वरः=प्रभुः तस्मै (ष० तत्पु०) अशोकवनिका=अशोक-वाटिका भग्नप्राया=भग्नः=नष्टः प्रायः=बाहुल्यम् (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) ('प्रायो भूम्न्यन्तगमने' इत्यमरः , ।

टिप्पणी—द्वारमशून्यं कुरुते—यह मुहाविरा है, जिसका अर्थ द्वार पर ड्यूटी देना होता है । कालिदास के नाटकों में भी यह प्रयोग आता है । यह भी ध्यान रहे कि यहाँ की तरह 'प्रतिमा' और 'स्वप्नवासवदत्ता' में भी प्रतीहारी का नाम 'विजया' ही है ।

तृतीय अङ्क

(तदनन्तर शङ्कुकर्ण प्रवेश करता है)

शङ्कुकर्ण—अरे ! यहाँ सुवर्ण के तोरण-द्वार पर कौन (पहरा दे रहा) है ? (प्रवेश करके) प्रतीहारी—आर्य ! मैं विजया । क्या करूँ ?

शङ्कुकर्ण—विजया ! सूचित कर दो, सूचित कर दो महाराज लंकाधिपति को कि 'अशोकवाटिका प्रायः छिन्न-भिन्न कर दी गई है', क्योंकि—

यस्यां न प्रियमण्डनापि महिषी देवस्य मन्दोदरी
स्नेहाल्लुम्पति पल्लवान्न च पुनर्वीजन्ति यस्यां भयात्।
वीजन्तो मलयानिला अपि करैरस्पृष्टबालद्रुमा
सेयं शक्ररिपोरशोकवनिका भग्नेति विज्ञाप्यताम् ॥ १ ॥

टीका — यस्यामिति - अन्वयः— यस्याम् देवस्य महिषी मन्दोदरी प्रियमण्डना अपि सती स्नेहात् पल्लवान् न लुम्पति, यस्याम् च पुनः वीजन्तः मलयानिलाः अपि भयात् न वीजन्ति, या च करैः अस्पृष्टबालद्रुमा अस्ति, सा इयम् शक्ररिपोः अशोकवनिका भग्ना इति विज्ञाप्यताम्। यस्याम्=अशोकवनिकायाम् देवस्य=महाराजस्य महिषी=राज्ञी मन्दोदरी प्रिय०—प्रियम्=इष्टम् मण्डनम्=प्रसाधनम् (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) (जिसे शृंगार प्रिय है) अपि स्नेहात्=प्रेम्णः कारणात् पल्लवान्=किसलयान् न लुम्पति=त्रोटयति (किसलय नहीं तोड़ती), यस्याम्=अशोकवनिकायाम् वीजन्तः=चलन्तः वहन्त इति यावत् मलयानिलाः=मलयाचलस्य पवना अपि भयात्=भीतेः न पुनः वीजन्ति=वहन्ति (नहीं बहती हैं) या करैः=हस्तैः लोकानामिति शेषः अस्पृष्ट०—न स्पृष्टाः=परामृष्टाः बालाः=लघवः द्रुमाः=वृक्षाः (कर्मधा०) यस्यां सा (ब० व्री०) (जहाँ पौधों को हाथों से नहीं छुआ करते हैं) सा इयम्=एषा शक्रस्य=इन्द्रस्य रिपोः=शत्रोः (ष० तत्पु०) अशोक-वनिका=अशोकानाम्=एतदाख्यवृक्षाणाम् वनिका=वाटिका भग्ना=छिन्न-भिन्नीकृता इति=एवम् विज्ञाप्यताम्=सूच्यताम् शार्दूलविक्रीडितम् । वृत्तम् ॥ १ ॥

व्याकरण — मण्डनम्=√मण्ड+ल्युट्। स्नेहः=√स्निह्+घञ्। लुम्पति=√लुप्+लट्। वीजन्ति=वीज् धातु का परस्मैपद पाणिनि-व्याकरण के विरुद्ध है। यह आत्मनेपद ही हुआ करता है। स्पष्ट=√स्पृश्+क्त। भग्न=√भञ्ज्+क्तः तकारस्य च नकारः। विज्ञाप्यताम्=वि+√ज्ञा+णिच्+लोट् कर्मवाच्य में।

"जहाँ महाराज की रानी मन्दोदरी (पल्लवों द्वारा) अलंकरण की शौकीन होती हुई भी स्नेह के कारण पल्लवों को नहीं तोड़ती, जहाँ बहती हुई मलयाचल की हवायें डर के मारे नहीं बहती, और जहाँ पौधे हाथों से नहीं छुए जाते हैं, ऐसी इन्द्र-शत्रु (रावण) की यह अशोक-वाटिका नष्ट-ध्वस्त कर दी गई है"—यह सूचित कर दो ॥ १ ॥

प्रतिहारी—अय्य ! णिच्चं भट्टिपादमूले वत्तमाणस्स जणस्स अदिट्ठपुरुवो अअं सम्भमो । किं एदं ? [आर्य ! नित्यं भर्तृपादमूले वर्तमानस्य जनस्यादृष्टपूर्वोऽयं संभ्रमः । किमेतद् ?]

शङ्कुकर्णः—भवति ! अतिपाति कार्यमिदम् । शीघ्रं निवेद्यतां निवेद्यताम् ।

प्रतिहारी—अय्य ! इयं णिवेदेमि । (निष्क्रान्ता) [आर्य ! इयं निवेदयामि ।]

शङ्कुकर्णः—(पुरतो विलोक्य) अये अयं महाराजो लङ्केश्वर इत एवाभिवर्तते । य एषः,

---

टीका—भर्तुः=स्वामिनः रावणस्येत्यर्थः पादयोः=चरणयोः (ष० तत्पु०) मूले=तले (ष० तत्पु०) वर्तमानस्य=विद्यमानस्य जनस्य=व्यक्तेः अदृष्टपूर्वः=न पूर्वम् दृष्टः (नञ् तत्पु०) अयम्=एषः संभ्रमः=वैक्लव्यम् (गड़बड़ी) अतिपाति=क्षिप्रतरम् विलम्बासहमित्यर्थः कार्यम् । निवेद्यतामिति संभ्रमे द्विरुक्तम् ।

टिप्पणी—अतिपाति—अतिशयेन पततीति=जो बहुत शीघ्र किया जाने वाला है । अंग्रेजी में इसे 'अर्जेण्ट' या 'इम्मिजिएट' कहते हैं । भास ने इस का प्रयोग अपने अन्य नाटकों में भी कर रखा है, देखिए 'पञ्चरात्र' "भटः—'आर्य, अतिपाति कार्यमिदं, शीघ्रं निवेद्यताम्" (द्वि०) ।

टीका—अमलेति—अन्वयः—अमल० कनक० सरोषः असौ (रावणः) यथा युग० अर्कः (तथा) त्वरितम् अभिपतति ।

प्रतीहारी—आर्य ! नित्य स्वामी की चरण-सेवा में रह रहे जन (=मैं) ने यह गड़बड़ी पहले कभी नहीं देखी । यह क्या हुआ ?

शङ्कुकर्ण—श्रीमती जी ! यह अत्यावश्यक कार्य है । शीघ्र सूचित कर दें, सूचित कर दें ।

प्रतीहारी—आर्य ! यह सूचित किए देती हूं ।

शङ्कुकर्ण—(सामने देखकर) अरे, ये महाराज लंकेश्वर तो इधर ही पधार रहे हैं । ये जो—

अमलकमलसन्निभोग्रनेत्रः कनकमयोज्ज्वलदीपिकापुरोगः ।
त्वरितमभिपतत्यसौ सरोषो युगपरिणामसमुद्यतो यथार्कः ॥ २ ॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो रावणः ।)

अमल० — अमलम्=निर्मलम् यत् कमलम् (कर्मधा०) तत्सन्निभे=तत्सदृशे (उपमान तत्पु०) उग्रे=भीषणे नेत्रे=नयने (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (निर्मल कमल के समान उग्र नेत्रों वाला) कनक० — कनकस्य=सुवर्णस्य विकाराः इति कनकमयाः सुवर्ण-घटिता इत्यर्थः उज्ज्वलाः=देदीप्यमानाः (कर्मधा०) दीपिकाः=उल्काः (कर्मधा०) पुरोगाः=अग्रगामिन्यः यस्य सः (० व्री०) (जिसके आगे-आगे सोने की बनी देदीप्यमान मशालें चल रही थीं) सरोषः = रोषेण = क्रोधेन सह विद्यमानः (ब० व्री०) असौ = अयम् (रावणः) यथा=येन प्रकारेण युग०—युगानाम् = सत्य-त्रेता-द्वापर-कलीनाम् परिणामाय = अन्ताय जगत्प्रलयार्थमित्यर्थः (ष० तत्पु०) समुद्यतः=उद्युक्तः अर्कः=सूर्यः (तथा) त्वरितम्=द्रुतम् अभिपतति=अभियाति । अत्र 'कमल० सन्निभे'त्यत्र, 'यथार्कः' इत्यत्र च उपमाद्वयस्य संसृष्टिः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ २ ॥

व्याकरण—कनकमय=कनक+मयट् । दीपिका=दीपयति=प्रकाशयतीति √दीप्+णिच्+ण्वुल्+टाप् इत्वम् । पुरोग=पुरः=अग्रे गच्छतीति पुरः+√गम्+ड । रोषः=√रुष्+घञ् । परिणामः=परि+√नम्+घञ् । समुद्यतः=सम्+उद्+√यम् क्त । यथा=यद्+थाल् (प्रकारे) ।

टिप्पणी – युगपरिणाम—प्रलयकाल में एकदम एक ही सूर्य नहीं प्रत्युत बारह के बारह सूर्य उदित हो उठते हैं और संसार को भीषण ताप से फूंक डालते हैं । इसके लिए देखिए वेणीसंहार नाटक—'दग्धं विश्वं दहनकिरणैर्नोदिता द्वादशार्काः ? (३।६)

निर्मल कमल जैसे भीषण नेत्र वाले हैं, जिनके आगे-आगे सोने की देदीप्यमान मशालें चल रही हैं और जो क्रोध में हैं, वे जल्दी-जल्दी ऐसे आ रहे हैं—जैसे युग-समाप्ति हेतु उद्यत सूर्य आता है ॥ २ ॥

(तदनन्तर यथानिर्दिष्ट रावण प्रवेश करता है)

रावणः—

कथं कथं भो नववाक्यवादिञ्छृणोमि शीघ्रं वद केन चाद्य।
मुमूर्षुणा मुक्तभयेन धृष्टं वनाभिमर्दात् परिधर्षितोऽहम्॥ ३॥

शङ्कुकर्णः—(उपसृत्य) जयतु महाराजः। अविदितागमनेन केनचिद् वानरेण ससंरम्भमभिमृदिताशोकवनिका।

टीका—कथमिति—अन्वयः—भो नववाक्यवादिन्! शृणोमि, शीघ्रम् वद, मुमूर्षुणा मुक्तभयेन केन च कथम् कथम् अद्य वनाभिमर्दात् अहम् धृष्टम् परि धर्षितः।

नव०—नवम्=नूतनं च वाक्यम्=शब्दसमूहम् (कर्मधा०) वदति=कथयतीति तत्सम्बुद्धौ (उपपद तत्पु०) इतः पूर्वं "रावणेन अशोकवनिका-विध्वंस-विषयकवाक्यं क्वापि न श्रुतमासीत्, अत एव शङ्कुकर्णस्य नव-वाक्य-वादित्वमुक्तं रावणेन। (ओ नया वाक्य बोलने वाले!) शृणोमि=आकर्णयामि शीघ्रम्=त्वरितम् वद=कथय मुमूर्षुणा=मर्तुमिच्छता (मौत चाहने वाले) मुक्तम्=त्यक्तम् भयम् (कर्मधा०) येन तेन (ब० व्री०) (निर्भय हो) केन=जनेन च कथं कथम्=केन केन प्रकारेण अद्य=अस्मिन् दिने वनस्य=अशोकवनिकायाः अभिमर्दात्=भङ्गात् अहम् धृष्टम्=धृष्टतापूर्वकं यथा स्यात्तथा परिधर्षितः=पराभूतः। उपेन्द्रवज्रा वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ॥ ३॥

व्याकरण—नववाक्यवादिन्=०वाक्य+√वद्+णिन्। शृणोमि=√श्रु+लट् उ०। कथम्-किम्+थम् प्रकारार्थे कादेशश्च। मुमूर्षुः=√मृ+उ+सन् वैसे अपनी मृत्यु कोई नहीं चाहता, अतः यहाँ मरणासन्न विवक्षित है। मुक्त=√मुच्+क्त। अभिमर्दः=अभि+√मृद्+घञ्। परिधर्षित=परि+√धृष्+क्त।

टीका—व्या०—उपसृत्य=उप+√सृ+ल्यप्, उपगम्य। अविदिता०—न

रावण—ओ नया वाक्य बोलने वाले! मैं सुनता हूँ, शीघ्र बोल, मृत्यु चाहने वाले, किस निर्भय (व्यक्ति) ने किस-किस प्रकार अशोकवनिका को कुचल डालने के कारण धृष्टता के साथ मेरा अपमान किया है?॥ ३॥

शङ्कुकर्ण—(पास में जाकर) महाराज की जय! किसी वानर ने - जिसके आने का पता नहीं रहा—क्रोध के साथ अशोक-वाटिका कुचल डाली है।

रावणः—(सावज्ञम्) कथं वानरेणेति । गच्छ, शीघ्रं निगृह्यानय ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

रावणः—भवतु भवतु ।

युधि जगत्त्रयभीतिकृतोऽपि मे यदि कृतं त्रिदशैरिदमप्रियम् ।
अनुभवन्त्वचिरादमृताशिनः फलमतो निजशाठ्यसमुद्भवम् ॥ ४ ॥

विदितम् इत्यविदितम् (नञ् तत्पु०) आगमनम् (कर्मधा०) यस्य तेन (ब० व्री०) वानरेण=कपिना संरम्भः=सम्+√रम्+घञ्, मुम् क्रोधः तेन सह वर्तमानम् (ब० व्री०) यथा स्यात्तथा, अभिमृदिता=अभि+√मृद्√ क्त+टाप् हस्तपादेन दलिता । निगृह्य+नि√ग्रह्+ल्यप्, गृहीत्वा आनय= मम पार्श्वं प्रापयेत्यर्थः ।

टीका—युधीति—अन्वयः—यदि युधि जगत्त्रय० अपि मे इदम् अप्रियम् त्रिदशैः कृतम् (तर्हि) अमृताशनाः अतः निज० फलम् अचिरात् अनुभवन्तु ।

युधि=युद्धे जगताम् त्रयम् (ष० तत्पु०) तस्य भीतिम्=भयम् (ष० तत्पु०) करोतीति ०कृत् तस्य (उपपद तत्पु०) (तीनों लोकों को भय पैदा कर देने वाले) मे=मम इदम्=एतत् अप्रियम्=अप्रीतिकरम् (बुरा) त्रिदशैः= देवैः कृतम्=विहितम् (तर्हि) अमृताशिनः=अमृतम्=सुधाम् अश्नन्ति=भक्ष- यन्तीति तथोक्ताः देवा इत्यर्थः अतः=अस्मात् कारणात् निज०—निजम्=स्वकीयम् यत् शाठ्यम्=धूर्तता (कर्मधा०) तस्मात् समुद्भवः उत्पत्तिः (ष० तत्पु०) यस्य तत् (ब० व्री०) फलम्=परिणामम् अचिरात् = शीघ्रम् अनुभव- वन्तु=प्राप्नुवन्तु । द्रुतविलम्बितवृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ ॥ ४ ॥

रावण—(तिरस्कार-पूर्वक) कैसे, किसी वानर ने ? जा, शीघ्र (उसे) पकड़ ला ।

शङ्कुकर्ण—जो आज्ञा महाराज ! (बाहर निकल गया)

रावण—अच्छा, अच्छा ।

यदि युद्ध में तीनों लोकों में भय उत्पन्न कर देने वाले होते हुए भी मेरा देवताओं ने यह बुराई की है, तो देवता लोग अपनी धूर्तता से होने वाला इसका फल चखें ॥ ४ ॥

शङ्कुकर्णः—जयतु महाराजः। महाराज ! महाबलः खलु स वानरः। तेन खलु मृणालवदुत्पाटिताः सालवृक्षाः, मुष्टिना भग्नो दारुपर्वतकः, पाणितलाभ्यामभिमृदितानि लतागृहाणि, नादेनैव विसंज्ञीकृताः प्रमदवनपालाः। तस्य ग्रहणसमर्थं बलमाज्ञापयितुमर्हति महाराजः।

रावणः— तेन हि किङ्कराणां सहस्रं बलमाज्ञापय वानरग्रहणाय।

व्याकरण—युध्=योधनम् युध् ✓युध्+क्विप् भावे। त्रयम्=त्रयः अवयवाः अत्रेति त्रि+अयच्। भीतिः ✓भी+क्तिन्। कृत्+करोतीति ✓कृ+क्विप् कर्तरि। त्रिदशाः=देवाः। त्रिशब्द यहाँ पूरणार्थक है अर्थात् 'त्रि' का अर्थ 'तृतीय' है। तृतीया दशा=अवस्था येषां ते। देवताओं के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे बूढ़े नहीं होते हैं। उनके जीवन में हमेशा तृतीय दशा अर्थात् युवावस्था ही रहा करती है। पहली बाल्यावस्था दूसरी शैशवावस्था तीसरी युवावस्था और चौथी वृद्धावस्था—ये जीवन की चार अवस्थाएँ हैं। प्रिय–प्रीणातीति ✓प्री+क। अमृताशी=अमृत+✓अश्+इन्। शाठ्यम् = शठस्य भाव इति शठ+ष्यञ्। समुद्भवः=सम्+उत्+✓भू+अप्। अनुभवन्ति=अनु+✓भू+लट्।

टीका-व्याकृ०—महाबलः=महत्=विपुलम् बलम् (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०)। मृणालः=कमलदण्डः तद्वत् उत्पाटिताः=उत्+✓पट्+णिच्+क्त उन्मूलिताः उपमालंकारः। मुष्ट्या=बद्धकरेण भग्नः=विनाशितः दारुपर्वतः= दारुनिर्मितः पर्वतः (मध्यमपदलोपी स०) पाण्योः=करयोः तलाभ्याम्= पृष्ठभागाभ्याम् (ष० तत्पु०) लतानां गृहाणि=कुञ्जानि (ष० तत्पु०) अभिमृदितानि=अभि + ✓मृद्+क्तः, दलितानि (कुचल डाले)। नादेन= गर्जनेन प्रमदवनस्य पालाः=पालकाः रक्षका इत्यर्थः (ष० तत्पु०) विसंज्ञीकृताः=विगता=नष्टा संज्ञा=चेतना (प्रादि तत्पु०) येषां ते (ब० व्री०)

(प्रवेश करके) शङ्कुकर्ण—महाराज की जय। महाराज ! वह वानर सचमुच बड़ा बलवान् है। उसने वास्तव में साल के पेड़ मृणाल की तरह उखाड़ डाले हैं, लकड़ी का बना हुआ पर्वत तोड़ दिया है; लता-कुंजों को करतलों द्वारा कुचल दिया; गर्जना से ही प्रमदवन के रक्षक मूर्छित कर दिए हैं। उसको पकड़ने की शक्ति रखने वाली सेना को आज्ञा दीजिएगा महाराज।

रावण—तो वानर पकड़ने हेतु भृत्यों की एक हजार सेना को आज्ञा दो।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रम्य, प्रविश्य) जयतु महाराजः।

अस्मदीयैर्महावृक्षैरस्मदीया महाबलाः।
क्षिप्रमेव हतास्तेन किङ्करा द्रुमयोधिना ॥ ५ ॥

विसंज्ञाः=मूर्छिताः अविसंज्ञाः विसंज्ञाः सम्पद्यमानाः कृता इति विसंज्ञ+च्वि+√कृ+क्त (बेहोश कर दिए) ग्रहणे=आरोधे समर्थम्=क्षमम् बलम्=सैन्यम् आज्ञापयितुम्=आ+√ज्ञा+णिच् तुम्=आदेष्टुम् अर्हति=योग्योऽस्ति।

किङ्कराणाम्=भृत्यानाम् सहस्रम्=सहस्रसंख्याक बलं=सेनाम् आज्ञापय=आदिश।

टिप्पणी—निष्क्रम्य, प्रविश्य—भास अपने नाटकों में कितने ही स्थानों में मञ्च-निर्देश (Stage-direction) की गलती कर देते हैं। यहाँ वानर को पकड़ने के लिए रावण शंकुकर्ण को एक हजार सैनिक भेजने की आज्ञा देता है। शंकुकर्ण चला जाता है और तभी प्रवेश करता हुआ बोल रहा है कि वानर ने वह सारी सेना मार दी है। इस कार्य पर पर्याप्त समय लगा होगा। इस बीच के सारे समय में रावण रंगमञ्च पर चुप ही दिखाया है, उसका कोई काम नहीं बताया। यह अस्वाभाविक है। कालिदास भी अपने नाटकों में कहीं-कहीं ऐसी गलती कर बैठे हैं।

टीका—अस्मदीयेति—अन्वयः—द्रुमयोधिना तेन अस्मदीयैः महावृक्षैः अस्मदीयाः महाबलाः किंकराः क्षिप्रम् एव हताः।

द्रुम०—द्रुमैः=वृक्षैः युद्ध्यते=युद्धं करोतीति तथोक्तेन (उपपद तत्पु०) तेन = वानरेण अस्मदीयैः = आस्माकीनैः (हमारे) महान्तश्च ते वृक्षाः महावृक्षाः=तैः (कर्मधा०) अस्मदीयाः = आस्माकीनाः महत् बलं = शक्तिः (कर्मधा०) येषां ते (ब० ब्री०) अतिबलिनः किंकराः=भृत्याः क्षिप्रम्=त्वरितम् एव हताः=मारिताः। अनुष्टुप् ॥ ५ ॥

शङ्कुकर्ण—जैसी महाराज की आज्ञा। (जाकर, फिर प्रवेश करके) महाराज की जय।

वृक्षों द्वारा युद्ध करने वाले उस (वानर) ने हमारे (ही) बड़े-बड़े वृक्षों से हमारे (ही) महाबलवान् भृत्य शीघ्र ही मार डाले हैं ॥ ५ ॥

रावणः—कथं हता इति । तेन हि कुमारमक्षमाज्ञापय वानरग्रहणाय।
शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रान्तः ।)
रावणः—(विचिन्त्य)

कुमारो हि कृतास्त्रश्च शूरश्च बलवानपि।
प्रसह्य चापि गृह्णीयाद्धन्याद् वा तं वनौकसम् ॥ ६ ॥

व्याकरण—द्रुमयोधो=द्रुम+√युध्+इन् । अस्मदीयः=अस्माकमयमिति अस्मत्+छ । किंकरः=किम्=यत्किञ्चित् करोतीति किम्+√कृ+अच् जो कुछ आज्ञा मिले उसे करने वाला । हतः=√हन्+क्त ।

टीका—कुमार इति–अन्वयः—सरलः । कुमारः=अक्षय इत्यर्थः हि=यतः कृतानि=शिक्षितानि अस्त्राणि=आयुधानि (कर्मधा०) येन सः (ब०ब्री०) अस्त्रनिपुण इत्यर्थः (शस्त्रास्त्र-निपुण) शूरः = वीरः बलवान्=बली अपि अस्तीति शेषः । प्रसह्य=(अव्य०) बलात् तम् वनौकसम्=वनम्=अरण्यम् ओकः=निवास-स्थानं (कर्मधा०) यस्य तथाभूतम् (ब० ब्री०) (वन में रहने वाले अर्थात् वानर को) ('मर्कटो वानरः कीशो वनौकाः' इत्यमरः) गृह्णीयात्=तस्य ग्रहणं कुर्यात् (पकड़ ले) वा=अथवा हन्यात्=व्यापादयेत् (मार डाले) अनुष्टुप् ।। ६ ।।

व्याकरण--बलवान्=बल=मतुप् । प्रसह्य=(अव्यय) प्र+√सह् क्त्वा ल्यप् । गृह्णीयात्=√ग्रह्+विधि लिङ् । हन्यात्=√हन्+विधि लिङ् ।

टीका–व्याक० —अनन्तरीयम् = अनन्तर+छ अव्यवहितम् अनन्तरवर्ति इत्यर्थः (बाद के) बलम्=सैन्यम् आज्ञापयितुम्=आदेष्टुम् । वानरम् अभि=प्रति गच्छन्तम्=यान्तम्, अनाज्ञापिताः=न आज्ञापितः=आ+√ज्ञा+णिच्+क्त

रावण—क्या कहा ? मार डाले है ? तो वानर को पकड़ने के लिए कुमार अक्ष को आज्ञा दो ।

शङ्कुकर्ण—जैसी महाराज की आज्ञा ।

रावण—(सोचकर)

क्योंकि (अक्ष) कुमार अस्त्रों में निपुण, शूर और बलवान् भी है, (वह) उस वानर को बल-पूर्वक पकड़ ले या मार डाले ।। ६ ।।

(प्रविश्य)

शङ्कुकर्णः—अनन्तरीयं बलमाज्ञापयितुमर्हति महाराजः।

रावणः - किमर्थम् ?

शङ्कुकर्णः —श्रोतुमर्हति महाराजः। कुमारं वानरमभिगच्छन्तं दृष्ट्वा महाराजेनानाज्ञापिता अप्यनुगताः पञ्च सेनापतयः।

रावणः —ततस्ततः ?

शङ्कुकर्णः—ततस्तानभिद्रुतान् दृष्ट्वा किञ्चिद् भीतेन इव तोरणमाश्रित्य काञ्चनपरिघमुद्यम्य निपातितास्तेन हरिणा पञ्च सेनापतयः।

रावणः—ततस्ततः ?

शङ्कुकर्णः—ततः कुमारमक्ष

आदिष्टाः (नञ् तत्पु० । (बिना आज्ञा के) अनुगताः = अनुयाताः कुमारमिति शेषः। अभिद्रुतान्=आत्मानं प्रति पलायितान् (अपनी ओर दौड़े आए) तान्=सेनापतीन् दृष्ट्वा=अवलोक्य किञ्चित् = ईषत् भीतः = भयं प्राप्तः तोरणम्=बहिर्द्वारम् आश्रित्य = उपगम्य काञ्चनस्य=सुवर्णस्य परिघम्= मुसलम् उद्यम्य=उत्+√यम्+ल्यप् उत्थाप्य तेन हरिणा=वानरेण निपातिताः= नि+√पत्+णिच्+क्त। धराशायीकृताः मारिताः इत्यर्थः।

क्रोधादिति—अन्वयः सरलः। क्रोधात्=पञ्चसेनापतिवधजनितात् रोषात् संरक्ते=रक्तवर्णे नेत्रे=नयने (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) अतिशयेन त्वरितः=इति त्वरिततरः=द्रुततरः हयः=अश्वः (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०)

(प्रवेश करके) शङ्कुकर्ण—बिना देरी किये (और) सेना को आज्ञा दीजिए महाराज !

रावण—किसलिये ?

शङ्कुकर्ण—सुनिए महाराज ! कुमार को वानर की ओर जाते देखकर महाराज से बिना आज्ञा लिये भी पाँच सेनापति पीछे चले गये।

रावण—फिर क्या हुआ ?

शङ्कुकर्ण—फिर कुमार अक्ष को—

क्रोधात् संरक्तनेत्रं त्वरिततरहयं स्यन्दनं वाहयन्तं
प्रावृट्कालाभ्रकल्पं परमलघुतरं बाणजालान् वमन्तम्।
तान् बाणान् निर्विधून्वन् कपिरपि सहसा तद्रथं लङ्घयित्वा
कण्ठेसङ्गृह्यधृष्टं मुदिततरमुखो मुष्टिना निर्जघान ॥ ७ ॥

(खूब तेज दौड़ते हुए घोड़े वाला) स्यन्दनम्=रथम् वाहयन्तम्=चालयन्तम् (चलाता हुआ) प्रावट्-प्रावृषः=वर्षर्तोः कालः=समयः (ष०तत्पु०) तस्य अभ्रात्=मेघात् (ष०तत्पु०) ईषदूनम् इति०कल्पम् वर्षाकालीनमेघसदृशमित्यर्थः परमलघुतरम्=परमम्=अत्यन्तम् अतिशयेन लघु=त्वरितम् इति यथा स्यात्तथा (बड़ी भारी तेजी के साथ) बाणानां=शराणां जालान्=समूहान् वमन्तम्=वर्षन्तम् (बाण-समूह बरसाते हुए) कुमारम् अक्षम् तान् बाणान्=अक्षप्रक्षिप्तान् शरान् निर्विधून्वन्=अपाकुर्वन्नित्यर्थः (तोड़ फेंकता हुआ) कपिः=वानरः अपि सहसा=बलपूर्वकम् तस्य=कुमारस्य रथम्=स्यन्दनम् लङ्घयित्वा=आरुह्य (तम्) कण्ठे=गले संगृह्य=गृहीत्वा अतिशयेन मुदितम्=हृष्टम् इति मुदिततरं मुखं, (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) सन् धृष्टम्=धृष्टतापूर्वकं यथा स्यात्तथा मुष्टिना=बद्धकरेण निर्जघान=हतवान्। अत्र बाणजालानाम् प्रावृट्कालाभ्रेण सादृश्यप्रतिपादनात् उपमा। स्रग्धरा वृत्तम्। तल्लक्षणञ्च यथा—म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ॥ ७ ॥

व्याकरण—त्वरिततर=त्वरित+तर, त्वरित=√त्वर्+क्त। वाहयन्तम्=√वह्+णिच्+शतृ+द्वि०। ०भ्रकल्पम्=०भ्र+कल्प। लघुतरम्=लघु+तर। बाणजालान्=यहाँ जाल शब्द को नपुंसक होना चाहिए, देखिए अमरकोष—'जालं समूह आनायः गवाक्षा क्षारकेष्वपि'। वमन्तम्=√वम्+शतृ+द्वि०। निर्विधून्वन्=निर्+वि+√धूञ्=शतृ+प्र०। लङ्घयित्वा=√लङ्घ्+त्वा। संगृह्य=

क्रोध से जिसकी आँखें लाल-लाल हो रही थी, जो बड़ी तेजी से चल रहे घोड़े वाले रथ को चला रहे थे और वर्षा-ऋतु के मेघ की तरह बड़ी तेजी से बाण-समूह बरसा रहे थे, बानर भी उन बाणों को (तोड़कर) फेंकता जाता हुआ एकाएक उनके रथ पर छलांग मारकर (उन्हें) गले से पकड़ कर अतिप्रसन्न-मुख हुआ धृष्टतापूर्वक मुट्ठी से मार बैठा ॥ ७ ॥

रावणः—(सरोषम्) आः, कथं कथं निजघानेति !

तिष्ठ त्वमहमेवैनमासाद्य कपिजन्तुकम् ।
एष भस्मीकरोम्यस्मत्क्रोधानलकणैः क्षणात् ॥ ८ ॥

शङ्कुकर्णः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः । कुमारमक्षं निहतं श्रुत्वा क्रोधाविष्टहृदयः कुमारेन्द्रजिदभिगतवांस्तं वनौकसम् ।

रावणः—तेन हि गच्छ । भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

सम्+√ग्रह+ल्यप् । मुदिततर=मुदित+तर । मुदित=√मुद्+क्त। निजघान=निर+√हन्+लिट् ।

टीका—तिष्ठेति—अन्वयः—त्वम् तिष्ठ । एषः अहम् एव एनम् कपिजन्तुकम् आसाद्य अस्मत्क्रोधानलकणैः क्षणात् भस्मीकरोमि ।

त्वम् तिष्ठ=विरम, एषः=अयम् अहम् एव एनम्=इमम् कपिश्चासौ जन्तुकः (कर्मधा०)=तुच्छजन्तुः तम् अस्मत्०—अस्माकं क्रोधस्य=कोपस्य (ष० तत्पु०) एव अनलस्य=अग्नेः (कर्मधा०) कणैः=लवैः (ष० तत्पु०) (अपनी क्रोधाग्नि के कणों से) क्षणात्=तत्कालमेव भस्मीकरोमि=दहामि, अत्र क्रोधे अनलत्वारोपात् रूपकालंकारः । अनुष्टुप् ॥ ८ ॥

व्याकरण—तिष्ठ=√स्था+लोट् मध्य० । जन्तुकः=क्षुद्रः जन्तुः इति क्षुद्रार्थे कप्रत्ययः । भस्मीकरोमि=अभस्म भस्म सम्पद्यमानं करोमीति भस्म+√कृ+च्वि+लट् उत्त० ।

रावण—(क्रोध के साथ) ओह ! क्या कहा—'मार बैठा ?'

तू बैठ, यह मैं ही इस क्षुद्रजीव वानर की ओर जाकर अपनी क्रोधाग्नि के कणों द्वारा क्षण भर में भस्म किए देता हूँ ॥ ८ ॥

शङ्कुकर्ण—प्रसन्न होइए महाराज, प्रसन्न होइए । कुमार अक्ष को मारा हुआ सुनकर क्रोधाग्नि-भरे हृदय वाले कुमार इन्द्रजित् उस वानर की ओर चले गये हैं ।

रावण—तो तू जा । फिर नया समाचार जान ।

शङ्कुकर्ण—जैसी महाराज की आज्ञा ।

रावणः—कुमारो हि कृतास्त्रः,

अवश्यं युधि वीराणां वधो वा विजयोऽथवा ।
तथापि क्षुद्रकर्मेदं मह्यमीषन्मनोज्वरः ॥ ९ ॥

टीका—प्रसीदतु=प्रसन्नो भवतु । निहतम्=मारितम् श्रुत्वा=आकर्ण्य क्रोधा०–क्रोधेन=कोपेन आविष्टम्=अभिभूतम् पूर्णमित्यर्थः (तृ० तत्पु०) हृदयम् (कर्मधा०) यस्य सः (ब० ब्री०) कुमारश्चासौ इन्द्रजित=मेघनादः रावणपुत्रः तम् वनौकसम्=वानरम् अभिगतः=अभियातः । भूयः=पुनः श्रूयताम्=उपलभ्यताम् वृत्तान्तः=समाचारः । कृतास्त्रः=अस्त्रविद्यानिपुणः इत्यर्थः ।

टिप्पणी—इन्द्रजित्=इन्द्रं जयतीति [इन्द्र+जी+क्विप् कर्तरि] यह उपाधि रावण के पुत्र मेघनाद को ब्रह्मा आदि देवताओं ने दे रखी थी । घटना इस प्रकार है कि जब रावण स्वर्ग में इन्द्र के साथ युद्ध कर रहा था, तो उसका पुत्र मेघनाद उसके साथ था । युद्ध मे मेघनाद ब्रह्मा द्वारा उसे दी हुई अदृश्य हो जाने की शक्ति के प्रभाव से इन्द्र को बांध कर लंका में ले गया था । ब्रह्मा आदि देवता लोग तत्काल मेघनाद के पास पहुँचे । उन्होंने उसे 'इन्द्रजित्' की उपाधि दी और इन्द्र को छोड़ देने का अनुरोध किया । किन्तु उसने नहीं छोड़ा । उसने शर्त रखी कि मुझे अमरत्व प्रदान करो, तब मैं छोड़ूँगा । ब्रह्मा ने शर्त स्वीकार नहीं की । वह अड़ा ही रहा, और अन्त में एक तरह से अपना लक्ष्य प्राप्त ही कर गया । वह अजेय हो गया । लक्ष्मण ही हों, जो उसे मार सकें ।

टीका—अवश्यमिति–अन्वयः—युधि वीराणाम् अवश्यम् वधः वा अथवा विजयः । तथापि इदम् क्षुद्रकर्म मह्यम् ईषत् मनोज्वरः (अस्ति) ।

युधि=युद्धे वीराणाम्=शूराणाम् अवश्यम्=नूनम् वधः=हननम् अथवा विजयः=जयः तथापि इदम्=एतत् क्षुद्रं=तुच्छं कर्म=वानरमारणरूपं कार्यम् मह्यम्=मम कृते ईषत्=किमपि मनसः=चित्तस्य ज्वरः सन्तापः (ष० तत्पु०)

रावण – कुमार सचमुच शस्त्रास्त्र-निपुण है—

युद्ध में वीरों का अवश्य या तो वध है, या विजय । तथापि यह क्षुद्र कार्य मेरे लिए थोड़ी-सी मनोव्यथा है ॥ ९ ॥

(प्रविश्य)

शङ्कुकर्णः--जयतु महाराजः । जयतु लङ्केश्वरः । जयतु भद्रमुखः ।

संवृत्तं तुमुलं युद्धं कुमारस्य च तस्य च ।
ततः स वानरः शीघ्रं बद्धः पाशेन साम्प्रतम् ॥ १० ॥

रावणः—कोऽत्र विस्मय इन्द्रजिता शाखामृगो बद्ध इति । कोऽत्र भोः !

(प्रविश्य)

राक्षसः--जयतु महाराजः ।

मनोव्यथा इत्यर्थः अस्तीति शेषः । अत्र क्षुद्रकर्मणि मनोज्वरत्वारोपात् रूपकम् । अनुष्टुप् ॥ ९ ॥

व्याकरण—युध्=√युध्=क्विप् भावे । वधः=√हन्+अप् वधादेशः । विजयः=वि+√जि+अच् । ज्वरः=√ज्वर्+घञ् ।

टोका—भद्रमुखः=भद्रं=भाग्यवत् मुखम्=आननम् (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) अर्थात् श्रीमान् ।

सवृत्तमिति·—अन्वयः—कुमारस्य च तस्य च तुमुलं युद्धम् संवृत्तम् । ततः शीघ्रम् स वानरः सांप्रतम् पाशेन बधः अस्तीति शेषः ।

कुमारस्य=इन्द्रजितः तस्य वानरस्य च तुमुलम्=भीषणम् (घोर) युद्धम्=संग्रामः संवृत्तम्=जातम् । ततः=तदनन्तरम् शीघ्रम्=त्वरितम् स वानरः= कपिः साम्प्रतम्=इदानीम् पाशेन=नागपाशेनेत्यर्थः बद्धः=बन्धनं प्रापितः (बांध दिया गया है) अनुष्टुप् ॥ १० ॥

टोका—विस्मयः=आश्चर्यम् । शाखामृगः=कपिः (कपिः प्लवंग-प्लवग-शाखामृग-वलीमुखाः इत्यमरः) आहूयताम्=आकार्यताम् ।

(प्रवेश करके) शङ्कुकर्ण—महाराज की जय । लंकेश्वर की जय । भाग्यवान् मुख वाले की जय ।

कुमार (इन्द्रजित्) और उस (वानर) का घमासान युद्ध हुआ । तदनन्तर शीघ्र ही वह वानर अब (नाग-) पाश से बांध दिया गया है ॥ १० ॥

रावण—इसमें आश्चर्य की क्या बात है कि इन्द्रजित् ने वानर को बांध लिया है । अरे यहां कौन है ?

[प्रवेश करके] राक्षस—महाराज की जय ।

रावणः—गच्छ विभीषणस्तावदाहूयताम् ।

राक्षसः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

रावणः—त्वमपि तावद् वानरमानय ।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

रावणः—(विचिन्त्य) भोः ! कष्टम् ।

अचिन्त्या मनसा लङ्का सहितैः सुरदानवैः ।
अभिभूय दशग्रीवं प्रविष्टः किल वानरः ॥ ११ ॥

अचिन्त्येति —अन्वयः—लङ्का सहितैः सुरदानवैः मनसा (अपि) अचिन्त्या (आसीत्) । दशग्रीवम् अभिभूय (तत्र) वानरः किल प्रविष्टः ।

लङ्कासहितैः=हिताः=मित्राणि तैः सहिता, (ब० व्री०) तैः अथवा सहितैः परस्परं मिलितैः सुराः=देवाश्च दानवाः=राक्षसाश्च (द्वन्द्वः) तैः (मिलकर इकट्ठे हुए देवताओं और दानवों से) मनसा=बुद्धया (अपि) अचिन्त्या=चिन्ता नहीं (मन की कल्पना से भी परे) आसीत् इति शेषः । दशग्रीवम्=दश ग्रीवाः=गलाः यस्य तम् (ब० व्री०) दशाननम् रावणमित्यर्थः अभिभूय=अवज्ञाय (अपमानित करके) (तत्र) वानरः किलेति=निश्चये प्रविष्टः=प्राविशत् । यत्र संभूय देवासुराः अपि आगमनस्य कल्पनां न कुर्वन्ति स्म तत्र वानर आगतः इति रावणस्य महान् अपमानः इति भावः । अनुष्टुप् ॥ ११ ॥

व्याकरण—अचिन्त्या=न चिन्त्या √चिन्त्+ण्यत् । अभिभूय=अभि+√भू+ल्यप् । प्रविष्टः=प्र+√विश्+क्त ।

रावण—जा, विभीषण को तो बुला ला ।

राक्षस—जैसी महाराज की आज्ञा ।

रावण—तू भी इतने में वानर को ले आ ।

शङ्कुकर्ण—जैसी महाराज की आज्ञा ।

रावण—(सोचकर) अरे, दुःख की बात है ।

परस्पर मिले हुए देवता और दानव मन से (भी) लंका (आने) की कल्पना नहीं कर सकते थे । (वहाँ) दशानन की अवहेलना करके सचमुच वानर प्रवेश कर गया है ॥ ११ ॥

अपि च,

जित्वा त्रैलोक्यमाजौ ससुरदनुसुतं यन्मया गर्वितेन
क्रान्त्वा कैलाशमीशं स्वगणपरिवृतं साकमाकम्प्य देव्या।
लब्ध्वा तस्मात् प्रसादं पुनरगसुतया नन्दिनानादृतत्वाद्
दत्तं शप्तं च ताभ्यां यदि कपिविकृतिच्छद्मना तन्मम स्यात् ॥१२॥

जित्वेति–अन्वयः – यत् आजौ ससुर-दनुसुतम् त्रैलोक्यं जित्वा, गर्वितेन मया कैलाशम् क्रान्त्वा, देव्या साकम् स्वगणपरिवृतम् ईशम् आकम्प्य, तस्मात् प्रसादम् लब्ध्वा अनादृतत्वात् पुनः अग-सुतया नन्दिना च ताभ्याम् यत् शप्त दत्तम्, यदि कपि-विकृतिच्छद्मना मम तत् स्यात्। यत्=यतः आजौ=युद्धे सुराः=देवाश्च दनुसुताः=दानवाश्च (द्वन्द्वः) तैः सहवर्तमानम् (ब० व्री०) देव-दानवसहितं त्रैलोक्यम्=त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी (समाहार-द्विगुः) त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम्=स्वर्ग मर्त्य-पातालान् जित्वा=स्वायत्तीकृत्य (जीतकर) गर्वितेन = अभिमानिना (अभिमान में चूर हुए) मया कैलासम् = महादेव-निवासभूतं हिमालयस्य पर्वतविशेषम् क्रान्त्वा=गत्वा देव्या=पार्वत्या साकम्=सह स्वाः = निजाः ये गणाः = नन्दिप्रमथादयः (कर्मधा०) तैः परिवृतम्=परिगतम् (तृ०तत्पु०) (निज गणों से घिरे हुए) ईशम्=महादेवम् आकम्प्य=कम्पयित्वा (हिलाकर) तस्मात्=महादेवात् प्रसादम्=अनुग्रहरूपेण चन्द्रहास-खड्गम् लब्ध्वा=प्राप्य अनादृतत्वात्=अनादर प्राप्तः (मेरे द्वारा अनादर किये जाने के कारण) पुनः अगः=पर्वतः हिमाचलः इत्यर्थः तस्य सुतया=पुत्र्या पार्वत्या इति यावत् नन्दिना=महादेवस्य प्रधानगणेन इति ताभ्याम्=उभा-भ्याम् शप्तम्=शापः दत्तम्=प्रतिपादितम्। यदि=इति सम्भावनायाम् सम्भवतः इत्यर्थः कपिः=वानरः तस्य विकृतिः=विक्रिया वानररूपेण परिणमनमित्यर्थः (ष० तत्पु०) तस्य छद्मना=व्याजेन (ष० तत्पु०) मम तत्=शापः स्यात्=

अपि च,

क्योंकि देव और दानव सहित तीनों लोकों को जीतकर, कैलास को लाँघ कर, पार्वती के साथ अपने गणों से घिरे हुए महादेव को हिलाकर उन (महादेव) से प्रसाद प्राप्त करके, अभिमान में आए हुए मेरे द्वारा अपमानित किये जाने के कारण पार्वती और नन्दि दोनों ने शाप दिया था; संभवतः वानर

(ततः प्रविशति विभीषणः ।)

विभीषणः—(सविमर्शम्) अहो तु खलु महाराजस्य विपरीता बुद्धिः संवृत्ता । कुतः,

---

भवेत् अर्थात् तयोः शाप एव वानररूपं धृत्वा ममाग्रे आगतः (वानर-रूप में शाप काम कर रहा हो) । अत्र व्याजापह्नुतिरलंकारः । स्रग्धरा वृत्तम् ॥१२॥

व्याकरण—त्रैलोक्यम्=त्रिलोकी+ष्यञ् स्वार्थे । जित्वा = √जि+क्त्वा । गर्वितः=गर्वः सञ्जातः अस्येति गर्व+इतच् । क्रान्त्वा=क्रम्+क्त्वा । परिवृत=परि+√वृ+क्त । आकम्प्य=आ+ कम्प्+णिच्+ल्यप् । लब्ध्वा=√लभ्+क्त्वा । प्रसाद=प्र+√सद्+घञ् । अनादृतत्वात्=न आदृत=आ+√दृ+क्त+त्व, पं० । शप्तम्=√शप्+क्त भावे । विकृतिः=वि+√कृ+क्तिन् ।

टिप्पणी—व्याकरण और साहित्य की दृष्टि से इस श्लोकगत वाक्य में कुछ दोष आ गए हैं । 'गर्वितेन मया' कर्ता के साथ चार पूर्वकालिको क्रियायें (क्त्वान्त) तो हैं, किन्तु प्रधान क्रिया (तिङन्त) नहीं है । प्रधान क्रिया यहाँ 'दत्तम्' है जिसका सम्बन्ध 'नन्दिना' 'अगसुतया' से है । क्त्वा प्रत्यय समानकर्तृक क्रिया में होता है, भिन्नकर्तृकता में नहीं । मया का सम्बन्ध 'अनादृतत्वात्' से जोड़े तो क्त्वा के साथ उसकी समानकर्तृकता तो जाती है, परन्तु वह बहुत दूर पड़ जाने से 'अस्थानस्थपदता' दोष आ जाता है । इसके अतिरिक्त एक ही वाक्य में 'अगसुतया' और 'नन्दिना' के होते हुए भी फिर 'ताभ्याम्' सर्वनाम से भी प्रतिपादन करना अधिकपदत्व दोष के अन्तर्गत आ जाता है ।

दत्तं शप्तम्—रामायण उत्तरकाण्ड अध्याय सोलह के अनुसार रावण कुबेर को जीतकर अपने पुष्पक विमान में कैलास के ऊपर से जा रहा था कि इतने में नन्दि ने उसे रोक लिया कि महादेव-पार्वती उधर विहार कर रहे हैं । रावण नन्दि के वानर–जैसे मुख को देखकर हँस दिया । नन्दि को क्रोध आ

रूप के बहाने मेरा वह (शाप) (काम कर रहा) हो ॥ १२ ॥

(तदनन्तर विभीषण प्रवेश करता है)

विभीषण—(सोच-विचार कर) आश्चर्य है कि महाराज की मति सचमुच विपरीत हो गई है ।

मयोक्ता मैथिली तस्मै बहुशो दीयतामिति।
न मे शृणोति वचनं सुहृदां शोककारणात् ॥ १३ ॥
(उपेत्य)

जयतु महाराजः।
रावणः--विभीषण ! एह्येहि। उपविश।
विभीषणः--एष एष उपविशामि। (उपविशति)

गया और उसने रावण को शाप दे दिया कि तूने मेरा अनादर किया है, इसलिए वानर ही तेरे समूचे कुल का विध्वंस करेंगे।' रावण भी अपने पुष्पक के रोक दिये जाने पर क्रुद्ध हो उठा। वह विमान से उतरा और कैलास को अपने हाथों से उठाने लगा। कैलास हिल जाने पर पार्वती डर गई। उसने भी यह अपमान समझा। इतने में महादेव ने जोर से कैलास को नीचे दबाया। रावण के हाथ दब गए और वह जोर से चिल्लाया और रोया। उसने महादेव की बड़ी स्तुति की। अन्त में वे प्रसन्न हो गए और उसको फंसा हुआ हाथ निकालने दिया। प्रसाद-स्वरूप उन्होंने उसे चन्द्रहास नामक खड्ग भी दिया।

टीका--सविमर्शम्=विमर्शेन = विचारेण सहितं (ब० व्री०) यथा स्यात्तथा। बुद्धिः=मतिः संवृत्ता=जाता।

मयेति—अन्वयः—'मैथिली तस्मै दीयताम्' इति मया बहुशः उक्तः (रावणः) सुहृदाम् शोक-कारणात् मे वचनं न शृणोति। मैथिली=सीता तस्मै=रामायेत्यर्थः दीयताम्=समर्प्यताम् इति मया बहुशः=बहुवारम् (बार-बार उक्तः=कथितः (रावणः) सुहृदाम्=मित्राणाम् शोकस्य=दुःखस्य कारणात्=हेतोः (मित्रों को दुःख देने हेतु) मे=मम वचनं=कथन न शृणोति= आकर्णयति तस्य मित्रैः विपत्तौ पतित्वा दुःखं भोक्तव्यमस्तीति कारणात् स मे वचनं न स्वीकरोतीति भावः। अनुष्टुप् ॥ १३ ॥

क्योंकि—'सीता उन्हें (राम को) दे दीजिए' इस तरह मेरे द्वारा बहुत बार कहा गया (रावण) मित्रों को शोक (में डालने) कारण नहीं सुनता ॥ १३ ॥

(पास जाकर) महाराज की जय।
रावण—विभीषण ! आओ-आओ बैठो।
विभीषण—बैठ रहा हूँ, बैठ रहा हूँ। (बैठ जाता है)।

रावण:—विभीषण ! निर्विण्णमिव त्वां लक्षये ।

विभीषण:—निर्वेद एव खल्वनुक्तग्राहिणं स्वामिनमुपाश्रितस्य भृत्यजनस्य ।

रावण:—छिद्यतामेषा कथा । त्वमपि तावद् वानरमानय ।

विभीषण:—यदाज्ञापयति महाराज: । (निष्क्रान्त: ।)

(ततः प्रविशति राक्षसैर्गृहीतो हनूमान् ।)

सर्वे—आ: इत इत: ।

व्याकरण—मैथिली=मिथिलायां भवा इति मिथिला+अण्+ङीप् । दीयताम्=√दा+लोट् कर्मवाच्ये । बहुश:=बहु+शस् । उक्त:=√वच्=क्त । वचनम्=√वच्+ल्युट् । शृणोति=√श्रु+लट् प्र० ।

टीका—एहि एहि=आ+√इ+लोट् मध्य० आगच्छ-आगच्छ । उपविश=निषीद । विनिर्णणम्=निर्+√विद्+क्त विषण्णम् इव लक्षये=पश्यामि । उक्तम्=वचनम् न गृह्णाति=मन्यते इति० ग्राही तम् (उपपद तत्पु०) स्वामिनम्=प्रभुम् उपाश्रितस्य=सेवमानस्येत्यर्थः भृत्यजनस्य=सेवकानाम् निर्वेद:=विषाद: एव खलु इति निश्चये । छिद्यताम्=√छिद्+लोट् कर्मवाच्य प्र० समाप्यताम् इत्यर्थ: । कथा=वार्ता ।

नैवाहमिति—अन्वय:—दुरात्मना तेन नैर्ऋतेन अहम् न एव धर्षित: राक्षसेशदिदृक्षया (अहम्) स्वयम् ग्रहणम् आपन्न: । दुरात्मना=दु:=दुष्ट: आत्मा=मन: यस्य स: (ब० व्री०) दुष्टेनेत्यर्थ: तेन नैर्ऋतेन=राक्षसेन इन्द्रजिता इत्यर्थ:

रावण—विभीषण ! तुम्हें उदास जैसे देख रहा हूँ ।

विभीषण—कहना न मानने वाले स्वामी की सेवा में रहने वाले भृत्यों की उदासी ही (होती है) ।

विभीषण—जैसी महाराज की आज्ञा । (चल पड़ा)

रावण—समाप्त करो इस बात को । तुम भी (जाकर) वानर को ले आओ ।

(तदनन्तर राक्षसों द्वारा पकड़े हुए हनूमान् प्रवेश करते हैं) ।

सब—आ: ! इधर-इधर ।

हनूमान्—

नैवाहं धर्षितस्तेन नैर्ऋतेन दुरात्मना।
स्वयं ग्रहणमापन्नो राक्षसेशदिदृक्षया ॥ १४ ॥

(उपगम्य)

भो राजन् ! अपि कुशली भवान् !

रावणः—(सावज्ञम्) विभीषण ! किमस्य तत् कर्म ?

विभीषणः—महाराज ! अतोऽप्यधिकम् ।

रावणः—कथं त्वमवगच्छसि ?

विभीषणः—प्रष्टुमर्हति महाराजः कस्त्वमिति ।

अहम् न एव धर्षितः=अभिभूतः (किन्तु) राक्षसानाम् असुराणाम् ईशः=स्वामी (ष० तत्पु०) रावण इत्यर्थः तस्य दिदृक्षया=द्रष्टुमिच्छया (रावण को देखने की इच्छा से) अहम् स्वयम्=आत्मना एव ग्रहणम्=बन्धनमित्यर्थः आपन्नः प्राप्तः । माम् बद्धुम् इन्द्रजितः का शक्तिः ? रावणदर्शनेच्छया स्वयमेवाहं बन्धने पतितः इत्याशयः । अनुष्टुप् ॥ १४ ॥

व्याकरण—नैर्ऋतः=निर्ऋतेः अपत्यं पुमान् इति निर्ऋति+अण् । धर्षितः=√धृष्+क्त । दिदृक्षा=√दृश्+सन्+अ=टाप् । आपन्न=आ+√पद्+क्तः ।

टीक—कुशली=कुशलम् अस्य अस्तीति कुशल+इन्, (ठीक ठाक) तत्कर्म=तस्य कर्म=कार्यम् (ष० तत्पु०) । अतः=अस्मात् अपि अधिकम्=अतिरिक्तम् । अवगच्छसि=जानासि प्रष्टुम्=√प्रच्छ+तुम्, अर्हसि=योग्योऽसि । अन्तःपुरम्=

हनूमान्—उस दुष्ट राक्षस ने मुझे नहीं धर दबाया है। राक्षसराज (रावण) को देखने की इच्छा से मैं स्वयं पकड़ में आया हूँ ॥ १४ ॥

(पास जाकर) हे राजन्। आप सकुशल तो हो ?

रावण—(तिरस्कार के साथ) विभीषण ! क्या वह (सब कुछ) काम इसका है ?

विभीषण—इससे भी अधिक ।

रावण—तुम कैसे जानते हो ?

विभीषण—महाराज पूछें कि "तुम कौन हो ?"

रावणः—भो वानर ! कस्त्वम् ? केन कारणेन धर्षितोऽस्माकमन्तः-पुरं प्रविष्टः ।

हनूमान्—भोः ! श्रूयताम्,

अञ्जनायां समुत्पन्नो मारुतस्यौरसः सुतः ।
प्रेषितो राघवेणाहं हनूमान् नाम वानरः ॥ १५ ॥

विभीषणः—महाराज ! किं श्रुतम् ?

रावणः—किं श्रुतेन ।

अवरोधकम् । धर्षितः अत्र णिच् पाणिनिव्याकरणविरुद्धम्, धृष्ट इति वक्तव्यमासीत् । (ढीठ) श्रूयताम्=श्रु+लोट् कर्मवाच्ये ।

अञ्जनायामिति—अन्वयः—सरलः ।

अञ्जनायाम्—एतन्नाम्न्याम् वानर्याम् समुत्पन्नः=जातः मारुतस्य=पवनस्य औरसः=उरसा निर्मितः इति उरस्+अण् आत्मजनितः सुतः=पुत्रः हनूमान् नाम वानरः कपिः अहम् राघवेण=रामेण प्रेषितः=प्रहितः (भेजा है)। अनुष्टुप् ॥ १५ ॥

तत्रभवान्=आदरणीयः । रामस्य शासनम्=आज्ञाम् । हन्यताम्=√हन्+लोट् (कर्मणि) मार्यताम् । सर्वे च ते अपराधाः=आगांसि । अवध्याः=न हन्तुं योग्याः इति √हन्+ण्यत् वधादेशश्च । यथेष्टम्=इष्टम्=इच्छाम् अनतिक्रम्येति (अव्ययी०) मानुषः=मनुष्यः राम इत्यर्थः ।

टीका—वरेति—अन्वयः—वरशरणम् शङ्करम् वा उपेहि, दुर्गतमम् रसातलम् वा प्रविश च, शरवर० त्वाम् अहम् यमसदनम् प्रति यापयामि ।

रावण—रे वानर ! तू कौन है ? किस कारण (तू) धृष्ट हो हमारे अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ ?

हनूमान्—रे सुनो;

अञ्जना में उत्पन्न वायु का औरस पुत्र हनूमान् नाम का मैं वानर राम द्वारा भेजा हुआ हूँ ॥ १५ ॥

विभीषण—महाराज ! सुन लिया आपने ?

रावण—सुनने से क्या ?

विभीषण:—हनूमन् ! किमाह तत्रभवान् राघव: !

हनूमान्—भो: ! श्रूयतां रामशासनम् ।

रावण:—कथं कथं रामशासनमित्याह । आ: हन्यतामयं वानर: ।

विभीषण:—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराज: । सर्वापराधेष्ववध्या: खलु दूता: । अथवा रामस्य वचनं श्रुत्वा पश्चाद् यथेष्टं कर्तुमर्हति महाराज: ।

रावण:—भो वानर ! किमाह स मानुष: ?

हनूमान्—भो: श्रूयताम्,

वरशरणमुपेहि शङ्करं वा प्रविश च दुर्गतमं रसातलं वा ।
शरवरपरिभिन्नसर्वगात्रं यमसदनं प्रतियापयाम्यहं त्वाम् ॥ १६ ॥

वरम्=श्रेष्ठम् शरणम्=रक्षा (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) शङ्करम्=शिवम् उपेहि=उपगच्छ, दुर्गतमम्=अत्यन्तदुर्गमम् रसाया:=पृथिव्या: तलम्=नीचै: पातालमित्यर्थ: (ष० तत्पु०) प्रविश=प्रविष्टो भव । यहाँ विकल्पार्थक 'वा' के रहते समुच्चयार्थक 'च' व्यर्थ है) शर०-शराणाम्=बाणानाम् वर:=श्रेष्ठ: (ष० तत्पु०) तेन भिन्नानि=छिन्नानि (तृ० तत्पु०) सर्वाणि गात्राणि=अङ्गानि (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) उत्तम बाण से छिदे हुए सभी अंगों वाले) त्वाम्=रावणम् अहम्=राम: यमस्य=कालस्य सदनम्=गृहम् (ष० तत्पु०) (यम के घर) प्रतियापयामि=प्रेषयामि । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ १६ ॥

विभीषण—हनूमान् ! आदरणीय राम क्या कह रहे हैं ?

हनूमान्—अरे, राम की आज्ञा सुनो ।

रावण—क्या कहा ? 'राम की आज्ञा ?' आ: ! यह वानर मार दिया जाय ।

विभीषण—कृपा कीजिए, कृपा कीजिए महाराज । सभी अपराधों में दूत सच-मुच अवध्य होते हैं। अथवा राम का कथन सुनकर फिर जैसी इच्छा वैसा कीजिए।

रावण—अरे वानर ! वह मनुष्य (राम) क्या कह रहा है ?

हनूमान्—सुनिए—

(भले ही) उत्तम संरक्षण (देने) वाले शंकर के पास चला जा अथवा अतिदुर्गम पाताल में प्रवेश कर ले, उत्तम बाण द्वारा छिन्न-भिन्न अंगों वाले तुझे मैं यम के घर पहुँचाता हूँ ॥ १६ ॥

रावण:—हँ हँ हँ

दिव्यास्त्रैस्त्रिदशगणा मयाभिभूता
दैत्येन्द्रा मम वशवर्तिनः समस्ताः ।
पौलस्त्योऽप्यपहृतपुष्पकोऽवसन्नो
भो! रामः कथमभियाति मानुषो माम् ॥ १७ ॥

व्याकरण—शरणम्=√शृ+ल्युट् । उपेहि=उप+√इ+लोट् मध्य० । दुः=दुःखेन गन्तुं योग्यम् दुर्गम् इति दुः+√गम+ड (प्रादि तत्पु०) अतिशयेन दुर्गम् इति दुर्गतमम् दुर्ग+तमप् । परिभिन्न=परि+√भिद्+क्त । प्रतियापयामि= प्रति+√या+णिच्+लट् उ० ।

टीका—दिव्येति—अन्वयः—मया दिव्यास्त्रैः त्रिदश-गणाः अभिभूताः, समस्ताः दैत्येन्द्राः मम वशवर्तिनः (सन्ति); अपहृत० पौलस्त्यः अवसन्नः, भोः (वानर !) मानुषः रामः कथम् माम् अभियाति । मया दिव्य०—दिव्यानि च तानि अस्त्राणि=आयुधानि (कर्मधा०) तैः त्रिदशानाम्=देवानाम् गणाः= समूहाः अभिभूताः=परास्ताः (दिव्यास्त्रों से देवता लोग परास्त कर दिए) दैत्यानाम्=दानवानाम् इन्द्राः=स्वामिनः मम वशवर्तिनः=वशीभूताः (वश में हैं) सन्तीति शेषः । अपहृतम्=अच्छिन्नम् पुष्पकम्=एतन्नामकं विमानम् (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) पौलस्त्यः=कुबेरः कुबेरस्यापि पुष्पकविमानम् मया हृतमस्तीति भावः (जिसका पुष्पक विमान छीन लिया गया है) अवसन्नः= अवसादं प्राप्तोऽस्ति । भो !=हनूमन् ! मानुषः=मनुष्यः रामः=कथम्= केन प्रकारेण माम्=रावणम् अभियाति=युद्धार्थमागच्छति । मया सह युद्धकरणे रामस्य का शक्तिरिति भावः । प्रहर्षिणी वृत्तम् ॥ १७ ॥

व्याकरण—दिव्यं=दिवि भवम् इति दिव्+यत् । त्रिदशः इसके लिए इसी अंक के श्लोक ४ का व्याकरण देखिए । अभिभूत=अभि+√भू+क्त । दैत्यः=

रावण—हहह !

मैंने (ब्रह्मास्त्रादि) दिव्यास्त्रों द्वारा देवताओं का गण परास्त कर रखा है; दानवपति मेरे वश में हैं, (मेरे द्वारा) पुष्पक विमान छीन लिए जाने से कुबेर दुःख में पड़ा हुआ है; अरे (वानर !) मनुष्य राम किस तरह मेरे साथ लड़ने आ रहा है ? ॥ १७ ॥

हनूमान्—एवंविधेन भवता किमर्थं प्रच्छन्नं तस्य दारापहरणं कृतम् ?
विभीषणः—सम्यगाह हनूमान् ।

अपास्य मायया रामं त्वया राक्षसपुङ्गव !
भिक्षुवेषं समास्थाय छलेनापहृता हि सा ॥ १८ ॥

दितेः अपत्यं पुमान् इति दिति+ण्य । वशवर्ति=वशे वर्तते इति वश+√वृत्+इन् (उपपद तत्पु०) । अपहृत=अप+√हृ+क्त । पौलस्त्यः=पुलस्तेः गोत्रापत्यं पुमान् इति पुलस्ति+यञ् । अथवा पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यं पुमान् इति पुलस्त्य+अण् । पुलस्ति और पुलस्त्य दोनों पर्याय-शब्द हैं । मनुस्मृति (अध्याय १ श्लोक ३५) के अनुसार पुलस्त्य ब्रह्मा के दस मानसपुत्रों में से एक थे । उनका विश्रवा नामक पुत्र हुआ जिसको दो पत्नियों से कुबेर और रावण दो सन्तानें हुईं । इस तरह कुबेर रावण का सौतेला (भाई) था । अतः दोनों पुलस्त्य के पौत्र अर्थात् पौलस्त्य कहलाते है । अवसन्न=अव+√सद्+क्तः, तकारस्य नकारः । अभियाति=अभि+√या+लट् ।

टीका—व्याकरण—एवं विधा=प्रकारः यस्य तेन (ब० व्री०) (ऐसे-जैसे) किमर्थम्=किम् शब्द का अर्थ के साथ चतुर्थ्यर्थ में नित्यसमास अथवा कः अर्थः यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्तथा । प्रच्छन्नम्=(प्र+√छद्+क्तः तस्य नः) निभृतम् गुप्तमित्यर्थः दाराणाम्=भार्यायाः (स्त्रीवाचक दार शब्द नित्यबहुवचनान्त होता है) अपहरणम्=अपनयनम् अकृतम्=विहितम् । सम्यक्=साधु आह=कथयति ।

अपास्येति—अन्वयः—हे राक्षसपुङ्गव ! त्वया मायया रामम् अपास्य भिक्षुवेषम् समास्थाय छलेन सा अपहृता । हीति पादपूर्त्यर्थम् करणार्थं वा ।

राक्षसानाम्=असुराणाम् मध्ये पुङ्गवः=श्रेष्ठः तत्सम्बुद्धौ ('स्युरुत्तरपदे व्याघ्र-पुङ्गवर्षभ-कुञ्जराः । सिंह-शार्दूल-नागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः'

हनूमान्—इस तरह के (बलशाली) आपने क्यों उनकी भार्या का छिप कर अपहरण किया ?

विभीषण—हनूमान् ठीक ही कह रहे हैं ।

क्योंकि, हे राक्षसों में श्रेष्ठ ! माया द्वारा राम को दूर ले जाकर तुमने भिक्षु का वेष अपनाकर छल से सीता का अपहरण किया है ॥ १८ ॥

रावणः—विभीषण ! किं विपक्षपक्षमवलम्बसे ।

विभीषणः—

प्रसीद राजन् ! वचनं हितं मे प्रदीयतां राघवधर्मपत्नी ।
इदं कुलं राक्षसपुङ्गवेन त्वया हि नेच्छामि विपद्यमानम् ॥ १९ ॥

इत्यमरः) (हे श्रेष्ठ राक्षस !) त्वया=रावणेन मायया=छलेन धृत-सुवर्णमृग-रूपस्य मारीचस्य सीता-रामयोः अग्रे प्रेषणच्छलेनेत्यर्थः रामम् अपास्य=सीतातः दूरीकृत्य (दूर ले जाकर) भिक्षोः=याचकस्य वेषम्=रूपम् (ष० तत्पु०) आस्थाय=आश्रित्य छलेन=कपटेन सा=सीता अपहृता=अपनीता (हर ले गया) हि=यतः । अनुष्टुप् ॥ १८ ॥

व्याकरण - पुङ्गवः=पुमान् गौः इति पुस्+गो+अच् । अपास्य=अप+अस्+ल्यप् । भिक्षुः=भिक्षते इति √भिक्ष+उ । समास्थाय=सम्+आ+√स्था+ल्यप् आ उपसर्ग लगने से सकर्मक हो गया है । अपहृता=अप+√हृ+क्त ।

टिप्पणी -- मायया -- रावण ने सीता हरने के लिए पहले षड्यन्त्र रच लिया था । उसने अपने मामा मारीच को सोने का मृग बनकर राम और सीता के आगे-आगे जाने को कहा । सीता अपूर्व सोने का मृग देखकर उस पर मुग्ध हो गई और राम से उसे मारकर लाने का अनुरोध कर बैठी । मृग छलांगे मारते दौड़ता आया और राम भी धनुष चढ़ाये पीछे-पीछे जाते रहे । राम जब बहुत दूर चले गये और नहीं आये, तो सीता ने लक्ष्मण को भी भेज दिया । सीता कुटिया में अकेली रह गईं । इस अवसर पर ही रावण भिक्षुक बन कर आया और सीता को हर ले गया ।

टीका—विपक्षः=विरुद्धः पक्षः विपक्षः (प्रादि तत्पु०) यस्य सः (ब०व्री०) शत्रुरित्यर्थः राम इति यावत् तस्य पक्षम्=मतम् अवलम्बसे=आश्रयसि ।

प्रसीदेति – अन्वयः—हे राजन् ! प्रसीद, मे वचनं हितम् (अस्ति), राघव-

---

रावण—विभीषण ! तुम शत्रु का पक्ष क्यों लेते हो ?

विभीषण—हे राजन् ! कृपा कीजिए, मेरा कथन हितकारी है, राम की पत्नी दे दीजिए, क्योंकि राक्षसों में श्रेष्ठ तुम्हारे द्वारा इस (राक्षस) कुल को विनष्ट होता हुआ (मैं देखना) नहीं चाहता हूँ ॥ १९ ॥

रावणः—विभीषण ! अलमलं भयेन ।

कथं लम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते ।
गजो वा सुमहान् मत्तः शृगालेन निहन्यते ॥ २० ॥

धर्मपत्नी प्रदीयताम्, (अहम्) हि इदम् राक्षस-कुलम् त्वया विपद्यमानम् न इच्छामि ।

हे राजन्, प्रसीद=प्रसन्नो भव, मे=मम वचनम्=कथनम् हितम्=हितकरम् (अस्ति), राघवस्य=रामस्य धर्मपत्नी=भार्या सीतेति यावत् प्रदीयताम्=प्रत्यर्प्यताम् (अहम्) हि=यतः इदम्=एतत् राक्षसानाम्=असुराणाम् कुलम्=वंशम् त्वया=रावणद्वारा विपद्यमानम्=विनश्यत् (विनाश को प्राप्त होते हुए) न इच्छामि=अभिलषामि । अर्थात् त्वत्कारणात् सकलमपि राक्षसकुलं विनाशमेष्यतीति द्रष्टुमहं नेच्छामि । उपेन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ १९ ॥

व्याकरण—प्रसीद=प्र+सद्+लोट् मध्य० । धर्मपत्नी=धर्मेण=शास्त्रोक्तविधिना कृता पत्नी धर्मपत्नी (मध्यमपदलोपी०) । पत्नी=पति+ङीप् नकारादेशश्च । ध्यान रहे कि पत्नी पति के साथ बैठकर यज्ञ करने और यज्ञ-फल भोगने वाली स्त्री को ही कहते हैं क्योंकि दम्पत्ति का यज्ञ और यज्ञ-फल में सम्मिलित अधिकार हुआ करता है । 'पुङ्गव' के लिए पिछला १८वां श्लोक देखिए । विपद्यमानम्=वि+पद्+शानच् ।

टीका—कथमिति—अन्वयः—लम्बसटः सिंहः कथं मृगेण विनिपात्यते ? वा सुमहान् मत्तः गजः शृगालेन निहन्यते ।

लम्बा=दीर्घा सटा=केशराः (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (लम्बे केशरों—अयालों वाला) सिंहः=मृगेन्द्रः कथम्=केन प्रकारेण मृगेण=हरिणेन विनिपात्यते=धराशायीक्रियते व्यापाद्यते इत्यर्थः न कथमपीति काकुः । सुमहान्=विशालकायः इत्यर्थः मत्तः=उत्कटमदः गजः=हस्ती शृगालेन=जम्बूकेन कथम् निहन्यते=मार्यते न—कथमपीति काकुः । अत्र अप्रस्तुतेन सिंहेन अप्रस्तुतेन

रावण—विभीषण ! बस, बस डरो मत ।

लम्बे-लम्बे केशरों वाला सिंह मृग द्वारा कैसे धराशायी किया जा सकता है ? अथवा विशाल मद-मत्त हाथी गीदड़ द्वारा कैसे मारा जा सकता है ? ॥२०॥

हनूमान्—भो रावण ! विपद्यमानभाग्येन भवता किं युक्तं राघवमेवं वक्तुम् । मा तावद् भोः !

नक्तञ्चरापसद ! रावण ! राघवं तं
वीराग्रगण्यमतुलं त्रिदशेन्द्रकल्पम् ।

गजेन च प्रस्तुतः रावणः अप्रस्तुतेन मृगेण शृगालेन च प्रस्तुतः रामः व्यज्यते इति अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारयोः संसृष्टिः । अनुष्टुप् छन्दः ॥ २० ॥

व्याकरण—सिंहः=हिनस्ति=व्यापादयतीति √हिस्+अच् वर्ण-व्यत्यय से (पृषोदरादित्वात्) सिंह शब्द बनता है । कथम्=किम्+थम् (प्रकारार्थ में) कादेशश्च । विनिपात्यते=वि+नि+√पत्+णिच्+लट् । मत्त=√मद्=क्त । निहन्यते=नि+√हन्+लट् (कर्मवाच्य में) ।

टिप्पणी—सिंहो मृगेण—हम देखते हैं कि भास अपने नाटकों में दो प्रतिद्वन्द्वियों में से बलवान् की तुलना सिंह अथवा व्याघ्र से और दुर्बल की तुलना हाथी अथवा मृग या बछड़े से करते हैं । इस साम्य को वे कहीं उपमा, कहीं अर्थान्तरन्यास अथवा कहीं अप्रस्तुत प्रशंसा के रूप में प्रतिपादित करते हैं। प्रकृत श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा है । उपमा रूप में जैसे—'नागं मृगेन्द्र इव पूर्वकृतावलोक्य' (बालच० ४ । १३), 'गजपतिमिव मत्तं तीक्ष्णदंष्ट्रो मृगेन्द्रः' अभिषेक (६ । ११), 'हरिमिव मृगपोती तेजसामिप्रयाती' (दूतवाक्य १०), 'व्याघ्रानुसारचकितो वृषभः सधेनुः' (मध्यम० ३), 'मृगीव सीता परिभूय नीयते, (प्रतिमा ?), 'सिंहदर्शनवित्रस्ता मृगीव परितप्यते' (अभि० २ । १३) 'हरिरिव हरिणीनामन्तरे चेष्टमाना' (अभि० २ । ९) । अर्थान्तरन्यास के रूप में जैसे—'दृष्टोऽपि कुञ्जरो वन्यो न व्याघ्रं धर्षयेद्वने' (मध्यम० ४४) 'न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति' (प्रतिमा ५ । १८) इत्यादि ।

टीका—नक्तेति - अन्वयः—(हे) नक्तञ्चरापसद ! प्रक्षीण-पुण्य ! गतसार ! रावण ! वीराग्र-गण्यम् अतुलम् त्रिदशेन्द्रकल्पम् भुवनैकनाथम् तं राघवम् एवम् नीचैः वक्तुम् भवता उचितम् किम् ? । नक्तम्=रात्री चरन्तीति=

हनूमान—हे रावण ! बुराई की ओर जा रहे भाग्य वाले आपको राम के लिए ऐसा कहना क्या उचित है ? ओ ! मत (कहो) ऐसा । ओ नीच राक्षस !

प्रक्षीणपुण्य ! भवता भुवनैकनाथं
वक्तुं किमेवमुचितं गतसार ! नीचैः ॥ २१ ॥

रावणः—कथं कथं नामाभिधत्ते। हन्यतामयं वानरः। अथवा दूत-वधः खलु वचनीयः। शङ्कुकर्ण ! लाङ्गूलमादीप्य विसृज्यतामयं वानरः।

यथोक्ता राक्षसा इत्यर्थः तेषु अपसदः=नीचः (ष० तत्पु०) तत्सम्बुद्धौ (नीचराक्षसः) प्रक्षीणानि=नष्टानि पुण्यानि=सत्कर्माणि (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) तत्सम्बुद्धौ (जिसके पुण्य नष्ट हो गए हैं) गतः=नष्टः सारः= स्थिरांशः (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) तत्सम्बुद्धौ (निकम्मा) वीर०— गण्यते इति गण्यः अग्रेगण्यः इति अग्रगण्यः(ष० तत्पु०) वीरेषु अग्रगण्यः (स० तत्पु०) वीरेषु मुख्यः (वीरों के अग्रणी) अतुलम्=न तुला=साम्यम् यस्य तम् (ब० व्री०) (अद्वितीय) त्रिदशाः=देवाः तेषाम् इन्द्रः=स्वामी शक्र इत्यर्थः तस्मात् ईषत् ऊनः इति०कल्पः तम् इन्द्रसदृशमित्यर्थः भुवनस्य=जगतः एकम्= एकमात्रं नाथं=तम्=प्रभुम् सिद्धम् राघवम्=रामम् एवम्=एतेन प्रकारेण नीचैः= सावज्ञम् भवता वक्तुम्=कथयितुम् उचितम्=योग्यम् किम् ? नैवेति काकुः। रामसम्बन्धे भवता 'कथं लम्ब-सटः सिंहो मृगेण' इत्यादिरूपेण अत्यन्तम् अनुचित-मुक्तम् इति भावः। अत्र त्रिदशेन्द्रकल्पम् इत्यत्र उपमालङ्कारः, 'अतुलम्' इत्यत्र च अनन्वयः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २१ ॥

व्याकरण—नक्तंचरः = नक्तम्+√चर्+अच्। गण्य=√गण्+यत्। प्रक्षीण=√प्र+क्षि+क्त तकारस्य नत्वम् इकारस्य च दीर्घत्वम्। त्रिदशेन्द्र+ कल्पप्। वक्तुम्=√वच्+तुम्। भवता=उचितम्। यहाँ भवतः उचितम् होना चाहिए था।

क्षीणपुण्य वाले, निकम्मे रावण ! वीरों में सबसे आगे गिने जाने वाले अद्वितीय देवताओं में इन्द्र के सदृश, जगत् के एक मात्र प्रभु उन राम को इस तरह गिरा-कर कहना क्या आपके लिए उचित है ? ॥२१॥

रावण—कैसे (बोल रहा है), कैसे नाम लेता है ? इस वानर को मार दिया जाय। अथवा दूत का वध सचमुच निन्दनीय है। शङ्कुकर्ण ! पूंछ जला कर इस वानर को छोड़ दो।

शङ्कुकर्णः—यदाज्ञापयति महाराजः इत इतः ।

रावणः—अथवा एहि तावत् ।

हनूमान्—अयमस्मि ।

रावणः—अभिधीयतां मद्वचनात् स मानुषः ।

अभिभूतो मया राम ! दारापहरणादसि ।
यदि तेऽस्ति धनुःश्लाघा दीयतां मे रणो महान् ॥ २२ ॥

टीका—नाम = रावणेति मम नाम अभिधत्ते=कथयसि, रावणशब्देन मम संबोधनं मम महान् अपमान इति भावः । हन्यताम् (√हन्+लोट् कर्मणि) व्यापाद्यताम् दूतस्य वधः=मारणम् वचनीयः=निन्दनीयः । लांगूलम्=पुच्छम् आदीप्य=प्रज्वाल्य विसृज्यताम्=मुच्यताम् (वि+√सृज्+लोट् कर्मणि) अभिधीयताम् उच्यताम् (अभि+√धा+लोट् कर्मणि) मम वचनम् (प०तत्पु०) तस्मात् (मेरी ओर से) ।

अभीति--अन्वयः—हे राम ! दारा० मया (त्वम्) अभिभूतः असि । यदि ते धनुः-श्लाघा अस्ति (तर्हि) मे महान् रणः दीयताम् ।

हे राम ! दाराणाम्=(तव) धर्मपत्न्याः अपहरणात्=अपनयनात् (ष० तत्पु०) मया (त्वम्) अभिभूतः=परास्तीकृतः असि (परास्त कर रखा है) यदि ते=तव धनुषः=चापस्य श्लाघा=अभिमानः (ष० तत्पु०), मे=मह्यम् महान् रणः=युद्धं दीयताम्=अर्प्यताम् । मया सह महायुद्धं क्रियतामिति भावः । अनुष्टुप् ॥ २२ ॥

व्याकरण--अपहरणम् = अप+√हृ+ल्यु० । अभिभूतः=अभि+√भू+क्तः । श्लाघा=√श्लाघ्+अ+टाप् । दीयताम्=√दा+लोट् कर्मणि ।

शंकुकर्ण—जैसी महाराज की आज्ञा । इधर-उधर,

रावण--अथवा इधर तो आ जरा ।

हनूमान--यह (आ गया) हूँ ।

रावण--मेरी तरफ से उस मनुष्य को कह देना--मैंने (तुम्हें) परास्त कर दिया है । यदि तुम्हें (अपने) धनुष का अभिमान है (तो) मुझे महायुद्ध प्रदान करो ॥ २२ ॥

हनूमान् – अचिराद् द्रक्ष्यसि,
अभिहतवरवप्रगोपुराट्टां
रघुवरकार्मुकनादनिर्जितस्त्वम् ।
हरिगणपरिपीडितैः समन्तात्
प्रमदवनैरभिसंवृतां स्वलङ्काम् ॥ २३ ॥

टीका – अचिरात्=शीघ्रमेव द्रक्ष्यसि=अवलोकयिष्यसि ।

अभिहतेति–अन्वय–रघुवर० त्वम् स्वलङ्काम् अभिहत० समन्तात् हरिगण० प्रमदवनैः अभिसंवृत्ताम् (अचिरात् द्रक्ष्यसि) ।

रघुषु=रघुवंशवीयेषु राजसु वरः श्रेष्ठ रामः इत्यर्थः (ष० तत्पु०) तस्य कार्मुकस्य=चापस्य नादेन=शब्देन टंकारेणेत्यर्थः (ष० तत्पु०) निर्जितः= पराजित० (राम के धनुष की टंकार-मात्र से पराजित) त्वम् स्वस्य=आत्मनः= लङ्का ताम्=(ष० तत्पु०) अभिहत० वप्रः=प्रकारश्च गोपुरम्=पुरद्वारञ्च 'गोपुरं तु पुरद्वारम्' इत्यमरः । अट्टा=अट्टालिकाश्चेति वरवप्रगोपुराट्टाः (द्वन्द्वः) वराश्च ताः=वप्र० (कर्मधा०) अभिहताः=विनाशिताः वप्र० (कर्मधा०) यस्या ताम् (ब० व्री०) (जिसका सुन्दर परकोटा नगर-द्वार और अट्टालिकायें नष्ट-ध्वस्त कर दी गई हैं) समन्तात्=परितः हरि० हरीणाम्=वानराणां गणैः=समूहैः (ष० तत्पु०) परिपीडतः=परिमृदितैः (तृ० तत्पु०) (वानर-समूहों से पद-दलित) प्रमदवनै=क्रीडोद्यानैः अभिसंवृत्ताम्=अभितः परिवृत्ताम् (घिरी) (अचिरात् द्रक्ष्यसीति पूर्वेण अन्वयः) । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ २३ ॥

व्याकरण—अभिहत=अभि+√हन्+क्त । नादः=√नद्+घञ् । निर्जित= निर्+जि+√क्त । परिपीडित=परि+√पीड्+क्त । अभिसंवृत=अभि+सम्+√वृ+क्त ।

हनूमान्—शीघ्र ही देखेगा—

राम के धनुष की टंकार द्वारा (ही) पराजित हुआ तू अपनी लङ्का नष्ट ध्वस्त हुए परकोटे, नगरद्वार और अटारियों वाली (तथा) वानर-समूहों द्वारा पददलित प्रमदवनों से भरी (शीघ्र ही देखेगा) ॥ २३ ॥

रावणः—आः निर्वास्यतामयं वानरः ।

राक्षसः—इत इतः ।

(रक्षोभिः सह निष्क्रान्तो हनूमान् ।)

विभीषणः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः । अस्ति काचिद् विवक्षा महाराजस्य हितमन्तरेण ।

रावणः—उच्यताम्, तच्छ्रेयो वयमपि श्रोतारः ।

विभीषणः—सर्वथा राक्षसकुलस्य विनाशोऽभ्यागत इति मन्ये ।

रावणः—केन कारणेन ?

विभीषणः—महाराजस्य विप्रतिपत्त्या ।

रावणः—का मे विप्रतिपत्तिः ?

विभीषणः—ननु सीतापहरणमेव ।

टीका—व्याक० —निर्वास्यताम्=निर्+वस्+णिच्+क्त । (निकाल दिया जाय) विवक्षा=वक्तुम् इच्छा √वच्+सन्+अ+टाप् । हितम् अन्तरेण=हित-विषये । 'अन्तरेण' शब्द यहाँ 'विना' के अर्थ में नहीं है, किन्तु 'विषये' के अर्थ में कवि ने प्रयुक्त कर रखा है । कालिदास ने भी कहीं-कहीं 'अन्तरेण' शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त कर रखा है ।

रावण—निकाल दो इस वानर को ।

राक्षस—इधर, इधर (राक्षसों के साथ हनुमान चले गये) ।

विभीषण—प्रसन्न हूजिए महाराज, प्रसन्न हूजिए । महाराज की भलाई के सम्बन्ध में कुछ कहने की इच्छा है ।

रावण—बोल, उस भलाई को हम भी सुनने वाले हैं ।

विभीषण—मैं तो मानता हूँ कि सब तरह राक्षस कुल का विनाश आ गया है ।

रावण—किस कारण ?

विभीषण—महाराज की विपरीत मति के कारण ।

रावण—मेरी क्या विपरीत मति ?

विभीषण—सीता-हरण ही (और क्या) !

रावण:—सीतापहरणेन को दोषः स्यात् ।

विभीषण:—अधर्मश्च ।

रावण:—चशब्देन सावशेषमिव ते वचनम् ? तद् ब्रूहि ।

विभीषण:—तदेव ननु ।

रावण:—विभीषण ! किं गूहसे । मम खलु प्राणैः शापितः स्याः, यदि सत्यं न ब्रूयाः ।

विभीषण:—अभयं दातुमर्हति महाराजः ।

रावण:—दत्तमभयम् । उच्यताम् ।

विभीषण:—बलवद्विग्रहश्च ।

तत् श्रेयः=हितमित्यर्थः (भलाई) । श्रोतारः ध्यान रहे कि 'तृच्' में षष्ठी (श्रेयसः श्रोतारः) और तृन् में द्वितीया होती है । राक्षसानाम् कुलं=वंशः तस्य (ष० तत्पु०) अभ्यागतः=अभि+आ+√गम्+क्त । (आ गया है) विप्रतिपत्त्या=वि=विरुद्धा प्रतिपत्तिः=ज्ञानम् (वि+प्रति+√पद्+क्तिन्) तया (आपकी विपरीत मति होने के कारण) । सीतायाः अपहरणम् (ष० तत्पु०) । सावशेषम्=अवशेषेण सहितम् इति सावशेषम् (ब० व्री०) (कुछ शेष रहा हुआ) । गूहसे=गोपायसे । शापितः=√शप्+णिच्+क्त (प्राणों की शपथ दिला दी गई है) । अभयम्=अभयदानम् । बलवता=प्रबलेन रामेणेत्यर्थः विग्रहः= युद्धम् । सावज्ञम्=अवज्ञया=तिरस्कारेण सहितम् (ब० व्री०) यथा स्यात्तथा ।

रावण--सीताहरण से क्या दोष हो ?

विभीषण--अधर्म और···।

रावण--'और' शब्द से तुम्हारा कहना कुछ रहा हुआ है ?

विभीषण--यही सचमुच ।

रावण--विभीषण ! क्यों छिपा रहे हो ? यदि सच न बोलो तो तुम्हें मेरे प्राणों का सौगन्ध ।

विभीषण--अभय-दान दीजिए महाराज ।

रावण—अभय-दान दे दिया है । कहो ।

विभीषण—और बलवान् के साथ युद्ध ।

रावणः—(सरोषम्) कथं कथं बलवद्विग्रहो नाम ?

शत्रुपक्षमुपाश्रित्य मामयं राक्षसाधमः ।
क्रोधमाहारयंस्तीव्रमभीरुरभिभाषते ॥ २४ ॥'

कोऽत्र ?

ममानवेक्ष्य सौभ्रात्रं शत्रुपक्षमुपाश्रितम् ।
नोत्सहे पुरतो द्रष्टुं तस्मादेव निरस्यताम् ॥ २५ ॥

टीका—शत्रुपक्षमिति—अन्वयः—शत्रुपक्षम् उपाश्रित्य अभीरुः अयम् राक्षसाधमः (मम) क्रोधम आहारयन् माम् तीव्रम् अभिभाषते ।

शत्रोः=अरेः रामस्येत्यर्थः पक्षम् उपाश्रित्य=गृहीत्वा (शत्रु की तरफदारी करके) अभीरुः=न भीरुः इत्यभीरुः (नञ् तत्पु०) निर्भयः अयम्=एषः राक्षसेषु=अधमः=नीचः (स० तत्पु०) नीच-राक्षसः विभीषणः इत्यर्थः (मम) क्रोधम्=आहारयन्=जनयन् तीव्रम्=कटु यथा स्यात्तथा अभिभाषते=कथयति । अनुष्टुप् ॥ २४ ॥

व्याकरण—राक्षसः=रक्षः एवेति रक्षस्+अण् (स्वार्थे) । रक्षः=इस शब्द की व्युत्पत्ति यास्क ने इस प्रकार की है—'रक्षो रक्षितव्यम् अस्मात्' इति √रक्ष्+असुन् अर्थात् जिससे अपनी रक्षा करनी पड़ती है । शत्रुः=शदति (शातयति = हिंसति) इति शद् + क्रुन् । उपाश्रित्य = उप + आ+√श्रि + ल्यप् । अभीरुः=बिभेतीति √भी+क्रु । अभिभाषते=अभि+√भाष्+लट् ।

टीका—ममेति०-अन्वयः—मम सौभ्रात्रम् अनवेक्ष्य शत्रु-पक्षम् उपाश्रितम् (एतम्) पुरतो द्रष्टुम् (अहम्) न उत्सहे, तस्मात् एषः निरस्यताम् ।

सौभ्रात्रम्=सु=शोभनः भ्राता इति सुभ्राता तस्य भाव इति सौभ्रात्रम्=सुभ्रातृत्वम् (अच्छे भ्रातृभाव को) अनवेक्ष्य=न अवेक्ष्य=विचार्य (न विचार

रावण—(तिरस्कार-पूर्वक) क्या कहा, क्या कहा ? बलवान के साथ युद्ध ? यह नीच राक्षस शत्रु-पक्ष ग्रहण करके, निडर हो मेरे क्रोध को भड़काता हुआ कठोरता से बोल रहा है ॥ २४ ॥

यहाँ कौन हैं ?

मेरे अच्छे भ्रातृ-भाव की परवाह न करके शत्रुपक्ष में गये हुए इसे मैं (अपने) सामने नहीं देख सकता, इसलिए इसे निकाल दो ॥ २५ ॥

विभीषणः—प्रसीदतु महाराजः। अहमेव यास्यामि।

शासितोऽहं त्वया राजन्! प्रयामि न च दोषवान्।
त्यक्त्वा रोषं च कामं च यथा कार्यं तथा कुरु॥ २६॥

(परिक्रम्य) अयमिदानीम्—

अद्यैव तं कमललोचनमुग्रचापं
रामं हि रावणवधाय कृतप्रतिज्ञम्।

कर) शत्रु-पक्षम् उपाश्रितः (शत्रु पक्ष में गया हुआ) (एतम्=विभीषणम्) पुरतः=अग्रे द्रष्टुम्=अवलोकयितुम् न उत्सहे=न शक्नोमि (नहीं देख सकता) तस्मात्=अतः एषः=विभीषणः निरस्यताम्=निष्कास्यताम्। अनुष्टुप् ॥२५॥

व्याकरण—सौभ्रात्रम्=सुभ्रातृ+अण्। अवेक्ष्य=अव+√ईक्ष्+ल्यप्। उपाश्रितम्=उप+आ+√श्रि+क्त। द्रष्टुम्=√दृश्+तुमुन्। उत्सहे=उत्+√सह्+लट् उत्त०। निरस्यताम्=निर्+√अस्+लोट् (कर्मणि)।

टीका—शासित इति-अन्वयः—हे राजन्! त्वया शासितः अहम् प्रयामि (अहम्) च दोषवान् न (अस्मि)। रोषम् कामम् च त्यक्त्वा यथा कार्यम् तथा कुरु।

हे राजन्! त्वया शासितः=आज्ञप्तः अहं प्रयामि=गच्छामि, (अहं) दोषवान्=दोषी अपराधीत्यर्थः न अस्मि। रोषं=क्रोधम् कामम्=विषयभोगेच्छाम् च त्यक्त्वा=विहाय यथा=येन प्रकारेण कार्यम्=करणीयम् तथा=तेन प्रकारेण कुरु=विधेहि। अनुष्टुप्॥ २६॥

व्याकरण—शासितः=√शास्+क्त। प्रयामि=√प्र+√या+लट् उत्त०। त्यक्त्वा=√त्यज्+क्त्वा। कार्यम्=√कृ+ण्यत्। कुरु=√कृ+लोट् मध्य०।

टीका—अद्येति-अन्वयः—अद्य एव कमललोचनम् उग्रचापम् रावण-वधाय कृत-प्रतिज्ञम् संश्रितहितप्रथितम् नृदेवम् तम् रामम् संश्रित्य नष्टम् निशाचरकुलम् पुनः उद्धरिष्ये।

विभीषण—प्रसन्न हूजिये महाराज! प्रसन्न हूजिए। मैं स्वयं ही जा रहा हूँ।

हे राजन् तुम्हारी आज्ञा पाकर मैं जा रहा हूँ, (लेकिन) मैं दोषी नहीं हूँ। क्रोध और विषयेच्छा छोड़कर जैसा करना हो, करें॥ २६॥

(घूमकर) अब यह (मैं)—आज ही कमल-जैसे नयनों और भीषण धनुष-वाले, रावण के विनाश हेतु प्रतिज्ञा किये हुए, शरणागतों की भलाई के लिए

संश्रित्य संश्रितहितप्रथितं नृदेवं
नष्टं निशाचरकुलं पुनरुद्धरिष्ये ॥ २७ ॥

(निष्क्रान्तः ।)

रावणः—हन्त निर्गतो विभीषणः । यावदहमपि नगररक्षां सम्पादयामि । (निष्क्रान्तः ।) इति तृतीयोऽङ्कः ॥

कमले इव लोचने=नयने (उपमान-तत्पु०) यस्य तम् (ब० व्री०) उग्रः=भीषणः चापः=धनुः (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) (भीषण धनुष वाले) रावणस्य वधाय=विनाशाय (ष० तत्पु०) कृता=विहिता प्रतिज्ञा=प्रणः (कर्मधा०) येन तम् (ब० व्री०) (कृत-संकल्प) संश्रित०—संश्रितानाम्=शरणे आगतानाम् हिताय=उपकाराय (ष० तत्पु०) प्रथितम्=प्रख्यातम् (च० तत्पु०) (शरणागतों के हितार्थ ख्यात) नृषु=नरेषु देवम्=देवताम् (स० तत्पु०) (मनुष्यों में देवता) तं रामम् संश्रित्य=आश्रित्य, नष्टम्=समाप्तम् निशाचराणाम्=राक्षसानाम् कुलम्–वंशम् पुनः=भूयः उद्धरिष्ये=तस्योद्धारं करिष्ये । कमललोचनमित्यत्र उपमा । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २७ ॥

व्याकरण – प्रतिज्ञा–प्रति+√ज्ञा+अङ्+टाप् । संश्रित=सम्+√श्रि+क्त । प्रथित–√प्रथ्+क्त । संश्रित्य–सम्+श्रि+ल्यप् । नष्टम्=अभी नष्ट नहीं हुआ है, किन्तु निकट भविष्य में राम के हाथों उसके नष्ट होने की पूरी आशंका (आशा) है इसलिए 'आशंसायां भूतवच्च' (पा० ३ । ३ । १३२) से भूतकाल की क्रिया हो गई है । इस सम्बन्ध में प्रथम अंक के चौथे और सातवें श्लोकों का व्याकरण-स्तम्भ भी देखिए । उद्धरिष्ये=उद्+√हृ+लृट् उत्तम० ।

टीका— यावत्=अत्रान्तरे नगरस्य लङ्कापुर्याः रक्षाम्=रक्षणम् सम्पादयामि=(सम्+√पद्+णिच्+लट्) करोमि ॥

इति तृतीयोऽङ्कः

विख्यात, मनुष्यों में देवता उन राम की शरण में जाकर नष्ट हुए राक्षस-वंश का फिर से उद्धार करूँगा ॥ २७ ॥

(चला गया)

रावण—खेद है, विभीषण चला गया । इस बीच मैं भी नगर की रक्षा करता हूँ । (चला गया) ॥ तृतीय अङ्क समाप्त ॥

अथ चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति वानरकाञ्चुकीयः ।)

काञ्चुकीयः—भो भो बलाध्यक्ष ! सन्नाहमाज्ञापय वानरवाहिनीम् ।

(प्रविश्य)

बलाध्यक्षः—आर्य ! किंकृतोऽयं समुद्योगः ?

काञ्चुकीयः—तत्रभवता हनूमतानीतः खल्वार्यरामस्य देव्याः सीताया वृत्तान्तः ।

बलाध्यक्षः—किमिति किमिति ?

काञ्चुकीयः—श्रूयताम्,

टीका —बलस्य=सेनायाः अध्यक्षः=पतिः सेनापतिरित्यर्थः (ष० तत्पु०) तत्सम्बुद्धौ, वानराणाम्=कपीनाम् वाहिनीम्=सेनाम् (ष० तत्पु०) सन्नाहम्=सज्जताम् आज्ञापय=आदिश (√आज्ञाप् धातु की द्विकर्मता पाणिनीय व्याकरण के विरुद्ध है । यह द्विकर्मकों में नहीं आता है) ।

किंकृतः=केन कृतः इति किंकृतः (तृ० तत्पु०) समुद्योगः=समुद्यमः, सज्जीकरणमिति यावत् । तत्रभवता = आदरणीयेन, वृत्तान्तः = समाचारः आनीतः=आहृतः :

चतुर्थ अंक

(तदनन्तर वानर कांचुकीय प्रवेश करता है) :

काञ्चुकीय—हे बलाध्यक्ष (सेनापति !) वानर-सेना को तय्यार हो जाने की आज्ञा दे दो ।

(प्रवेश करके) बलाध्यक्ष—अजी, यह तय्यारी किस हेतु ?

काञ्चुकीय—आदरणीय हनूमान् सचमुच आर्य राम की महारानी सीता का समाचार लाये हैं ।

बलाध्यक्ष—क्या (समाचार) ? क्या (समाचार) ?

काञ्चुकीय—सुनिए—

लङ्कायां किल वर्तते नृपसुता शोकाभिभूता भृशं
पौलस्त्येन विहाय धर्मसमयं संक्लेश्यमाना ततः ।
श्रुत्वैतद् भृशशोकतप्तमनसो रामस्य कार्यार्थिना
राज्ञा वानरवाहिनी प्रतिभया सन्नाहमाज्ञापिता ॥ १ ॥

लङ्कायामिति—अन्वयः-भृशम् शोकाभिभूता धर्म-समयं विहाय पौलस्त्येन संक्लेश्यमाना नृपसुता लङ्कायां वर्तते किल । ततः एतत् श्रुत्वा भृश० रामस्य कार्यार्थिना राज्ञा प्रतिभया वानर-वाहिनी सन्नाहम् आज्ञापिता ।

भृशम्=अत्यन्तम् यथा स्यात्तथा शोकेन=दुःखेन अभिभूता=आक्रान्ता (तृ० तत्पु०) (अत्यन्त दुःखाक्रान्त) धर्मस्य = सदाचारस्य कर्तव्यस्य वा समयम्=सिद्धान्तम् आचरणं वा ('समयः शपथाचार-काल-सिद्धान्तः-संविदः' इत्यमरः) विहाय=त्यक्त्वा पौलस्त्येन=पुलस्त्यस्य गोत्रापत्येन रावणेनेत्यर्थः संक्लेश्यमाना=क्लेशं प्राप्यमाणा (धर्म का आचरण छोड़कर रावण द्वारा सताई जा रही) नृपस्य=राज्ञः जनकस्य सुता=पुत्री सीतेत्यर्थः लङ्कायाम् वर्तते= विद्यते किलेति वार्तायाम् ('वार्ता-सम्भाव्ययोः किल' इत्यमरः) (ऐसा समाचार है) । ततः=हनुमतः एतत्=इदम् वृत्तम् श्रुत्वा=आकर्ण्य भृशेन=अत्यन्तेन शोकेन=दुःखेन (कर्मधा०) तप्तम्=परिपीडितम् (तृ० तत्पु०) मनः=चित्तम् (कर्मधा०) यस्य तस्य (ब० व्री०) (अतिशय दुःख से व्यथित हुए मन वाले) रामस्य कार्यं=सीतोद्धाररूपं कर्म अर्थयते=कामयते इति तथोक्तेन (उपपद तत्पु०) राज्ञा=सुग्रीवेणेत्यर्थः प्रतिभया=शत्रूणां भीतिकरा वानराणां=कपीनाम् वाहिनी=सेना सन्नाहम्=सज्जताम् आज्ञापिता=आदिष्टा । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १ ॥

व्याकरण—अभिभूत=अभि+√भू+क्त । पौलस्त्य=पुलस्त्य=अण् । विहाय+वि+√हा+ल्यप् । संक्लेश्यमाना=सम्+√क्लिश+णिच्+शानच्+टाप् । श्रुत्वा=√श्रु+क्त्वा । कार्यार्थी—कार्य+√अर्थ+इन् । प्रतिभया=प्रति=प्रति-

शोक से अत्यन्त अभिभूत, धर्म का आचरण छोड़कर रावण द्वारा सताई जा रही राजकुमारी (सीता) लंका में हैं(—यह समाचार है) । हनूमान् से यह सुनकर अत्यन्त शोक के कारण सन्ताप को प्राप्त हुए मन वाले राम के कार्य को चाहने वाले राजा (सुग्रीव) ने शत्रुओं को भय पहुँचा देने वाली वानरसेना को तय्यार हो जाने की आज्ञा दी है ॥ १ ॥

बलाध्यक्षः—एवम् । यदाज्ञापयति महाराजः ।

काञ्चुकीयः—यावदहमपि सन्नद्धा वानरवाहिनीति महाराजाय निवेदयामि ।

(निष्क्रान्तौ)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति रामो लक्ष्मणः सुग्रीवो हनूमांश्च)

रामः—

आक्रान्ताः पृथुसानुकुञ्जगहना मेघोपमाः पर्वताः

सिंहव्याघ्रगजेन्द्रपीतसलिला नद्यश्च तीर्णा मया ।

कुलानां मयं यस्मात् । सन्नाहः=सम्+√नह्+घञ् । आज्ञापिता=आ+√ज्ञा+णिच्+क्त । यहाँ भी फिर भास ने √आज्ञाप् धातु को द्विकर्मक बना दिया है, जो पाणिनिव्याकरण के विरुद्ध है ।

सन्नद्धा=सम्+√नह्+क्त+टाप्, सज्जा तय्यार ।

टिप्पणी—विष्कम्भक—इसके लिए द्वितीय अङ्क के प्रारम्भिक श्लोक के बाद 'मिश्र विष्कम्भक' की टिप्पणी देखिये । भेद केवल इतना ही है कि वहाँ मिश्र-विष्कम्भक था और यहाँ (शुद्ध) विष्कम्भक है, क्योंकि इनमें दोनों पात्र मध्य वर्ग के हैं और दोनों संस्कृत बोलते हैं ।

टीका—आक्रान्ता इति—अन्वयः—पृथु० मेघोपमाः पर्वता, आक्रान्ताः, सिंह० नद्यः च मया तीर्णाः, पुष्प० चित्रम् महत् काननम् क्रान्तम्, कपीन्द्र० (अहम्) सांप्रतम् वेला-तटम् संप्राप्तः अस्मि ।

बलाध्यक्ष—ठीक है, जैसी महाराज की आज्ञा ।

काञ्चुकीय—इस बीच में भी महाराज से निवेदन कर देता हूँ कि वानर-सेना तय्यार हो गई है । (चला गया है) ।

(विष्कम्भक)

(तदनन्तर राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और हनूमान् प्रवेश करते हैं ।)

राम—विशाल चोटियों पर झाड़-झंकाड़ों से दुर्गम बने मेघ जैसे पर्वतों पर चढ़ा; शेरों, बघेरों, और गजपतियों द्वारा पिये गये जलों वाली नदियाँ मैंने पार

क्रान्तं पुष्पफलाढ्यपादपयुतं चित्रं महत् काननं
सम्प्राप्तोऽस्मि कपीन्द्रसैन्यसहितो वेलातटं साम्प्रतम् ॥ २ ॥

लक्ष्मणः—एष एष भगवान् वरुणः,

पृथु:०—पृथूनि=विशालानि यानि सानूनि=शिखराणि (कर्मधा०) तेषु ये कुञ्जाः=गुल्मानि (स० तत्पु०) तैः गहना=घनाः (तृ० तत्पु०) (बड़ी बड़ी चोटियों पर झाड़ियों से घने अर्थात् दुर्गम) मेघैः=जलदैः उपमा=साम्यम् (तृ० तत्पु०) येषां ते (ब० व्री०) (मेघ-जैसे) पर्वताः=गिरयः आक्रान्ताः= आरूढाः; सिंह० सिंहाः=केशरिणश्च व्याघ्राः=शार्दूलाश्च गजेन्द्राः=करीन्द्रा- श्चेति ० गजेन्द्राः (द्वन्द्वः) तैः पीतानि=पानविषयीकृतानि (तृ० तत्पु०) सलिलानि=जलानि (कर्मधा०) यासां ताः (ब० व्री०) (जिनका जल सिंह, बघेरे, गजपतियों द्वारा पिया गया है) नद्यः=सरितः च मया तीर्णाः=तासां पारं गतवान्; पुष्प०—पुष्पाणि=कुसुमानि फलानि च (द्वन्द्वः) तैः आढ्याः= भरिताः (तृ० तत्पु०) (पुष्पों और फलों से लदे) पादपाः—वृक्षाः (कर्मधा०) तैः युतम्=युक्तम् चित्रम्=आश्चर्यंकरम् महत्=विशालम् काननम्=वनम् क्रान्तम्=लङ्घितम् (पार किया); कपीनाम्=वानराणाम् इन्द्रः=ईशः सुग्रीवः इत्यर्थः तस्य सैन्येन=सेनया (ष० तत्पु०) सहितः=युक्तः (तृ० तत्पु०) साम्प्रतम्=इदानीम् वेलानाम्=समुद्रतरङ्गाणाम् ('अब्ध्यम्बुविकृतौ वेला' इत्यमरः) तटम्=तीरम् (ष० तत्पु०) समुद्रतीरमित्यर्थः संप्राप्तः=आगतः (अस्मि) अत्र 'मेघोपमाः पर्वताः' इत्यत्र उपमालंकारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २ ॥

व्याकरण—पृथु=√प्रथ्+कु सम्प्रसारण । आक्रान्त=आ+√क्रम्+क्त । तीर्ण=√तॄ+क्त 'त' को 'न', 'न' को 'ण' और ऋ को ईर् । क्रान्त=√क्रम+क्त । सैन्यम्=सेना एवेति सेना+ष्यञ् (स्वार्थे) । सम्प्राप्तः—सम्+प्र+√आप्+क्त ।

टीका - सजलेति—अन्वयः—सजल० विलुलित० समधिगत० सरित्पतिः शयानः हरिः इव भाति ।

की; पुष्प-फलों से लदे वृक्षों वाला अद्भुत विशाल वन लाँघा; सुग्रीव की सेना- सहित अब मैं समुद्र-तट पर पहुँचा हूँ ॥ २ ॥

लक्ष्मण—ये हैं भगवान् वरुण, ये हैं !

सजलजलधरेन्द्रनीलनीरो
विलुलितफेनतरङ्गचारुहारः ।
समधिगतनदीसहस्रबाहु-
र्हरिरिव भाति सरित्पतिः शयानः ॥ ३ ॥

सजल०— इन्द्रनीलः=इन्द्रनीलमणिः इव नीरम्=जलम् इति इन्द्रनील-नीरम् (उपमान-तत्पु०) सजलम्=जलभरितः यः जलधरः=मेघः (कर्मधा०) तद्वत् (नीलं) इन्द्रनीलनीरम् (उपमान-तत्पु०) यस्य सः (ब० व्री०) (जल-भरे मेघ के समान (नीले) (इन्द्रनीलमणि-जैसे जल वाला) विलुलित०—फेन-युक्ताः तरंगाः इति फेन-तरङ्गाः (मध्यमपदलोपी स०) विलुलिताः=उत्क्षिप्ताः उच्छलन्तः इति यावत् फेनतरङ्गाः=फेन-वीचयः (कर्मधा०) चारुः=सुन्दरः हारः=माला (कर्मधा०) इवेति (उपमित तत्पु०) यस्य सः (ब० व्री०) (सुन्दर हार जैसे उछलते झाग-भरे तरंगों वाला), समधि०— नदीनां=सरितां सहस्राणि (ष० तत्पु०) समधिगतानि=प्राप्तानि नदीसहस्राणि-(कर्मधा०) बाहव=भुजाः इवेत्युपमित तत्पु०) यम् यथाभूतः (ब० व्री०) (आई हुई हजारों नदियाँ जिसकी भुजायें जैसी थीं) सरितां पतिः=नदीनां स्वामी (ष० तत्पु०) शयानः=स्वपन् हरिः=विष्णुः इव भाति=शोभते । अत्रोपमालंकारः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ३ ॥

व्याकरण—जलधरः=धरतीति √धृ+अच् धरः जलस्य धरः (ष० तत्पु०)। विलुलित=वि+√लुल्+क्त । समधिगत=सम्+अधि+√गम् + क्त । शयानः = √शी+शानच् । भाति+√भा+लट् ।

टिप्पणी—हरिरिव—यहाँ भास ने अच्छी उपमाच्छटा दिखाई है । सागर को आराम कर रहे विष्णु भगवान् जैसा बताया है । नीला जल भगवान की धारण की हुई इन्द्रनील मणि के समान था । कवि यदि इन्द्रनील मणि के स्थान में कौस्तुभ मणि कहता तो अच्छा रहता, क्योंकि भगवान् कौस्तुभ मणि

जलयुक्त मेघों सदृश (नीले) इन्द्र नीलमणि जैसे जल वाला, सुन्दर हार-जैसे ऊपर उठे झाग भरे तरंगों वाला, और भुजायें-जैसी आ रही हजारों नदियों वाला सागर सो रहे विष्णु की तरह शोभित हो रहा है ॥ ३ ॥

रामः—कथं कथं भो !

रिपुमुद्धर्तुमुद्यन्तं मामयं सक्तसायकम् ।
सजीवमद्य तं कर्तुं निवारयति सागरः ॥ ४ ॥

पहनते हैं। उछलती हुई झागवाली तरंगें मोतियों के हार के समान थीं और समुद्र में आ रहीं हजारों नदियाँ भुजा-जैसी थीं। यहाँ चार उपमायें हैं और उनका परस्पर अङ्गाङ्गिभाव हो रहा है। यद्यपि साहित्य-शास्त्रियों ने रूपक में आए हुए अङ्गाङ्गिभाव को साङ्गरूपक माना है, किन्तु साङ्गोपमा नहीं मानी है। हमारे विचार से साङ्गरूपक की तरह साङ्गोपमा भी होनी चाहिए और वही साङ्गोपमा यहाँ है :

टीका – रिपुमिति—अन्वयः—अयम् सागरः रिपुम् उद्धर्तुम् उद्यन्तम् सक्तसायकम् माम् अद्य तम् सजीवम् कर्तुम् निवारयति ।

अयम्=एषः सागरः=समुद्रः रिपुम्=शत्रुम् रावणमित्यर्थः उद्धर्तुम्= विनाशितुम् (मारने हेतु) उद्यन्तम्=उद्यतं भवन्तम् (तय्यार) सक्तः=धनुषि आरोपितः इत्यर्थः सायकः=बाणः (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) (धनुष पर बाण चढ़ाये) माम्=रामम् अद्य तम्=रिपुम् रावणम् सजीवम्=जीवेन= जीवनेन सहितम् (ब० व्री०) जीवन्तमित्यर्थः कर्तुम्=विधातुम् निवारयति= रुणद्धि (रोक रहा है)। रावणवधोद्यतस्य मे मार्गे बाधको भूत्वा सागरः तम् जीवन्तमेवेच्छतीति भावः। अनुष्टुप् ॥ ४ ॥

व्याकरण—उद्धर्तुम्=उत्+√हृ+तुम्। उद्यन्तम्=उत्+√यम्+शतृ+ द्वि०। सक्त=√सञ्ज्+क्त। कर्तुम्=√कृ+तुमुन्। निवारयति=नि+√वृ+ णिच्+लट्।

टीका—वियति=आकाशे सजलेति—अन्वयः—सजल० कनक० असौ राक्षसः आशु हुताशनम् प्रवेष्टुम् शलभः इव कुतः नु अभिपतति ?

राम—अरे, क्यों—

यह सागर शत्रु-विनाश हेतु तय्यार हुए, (धनुष पर) बाण चढ़ाये मुझे उसको जीवित रखने के लिए आज रोक रहा है ॥ ४ ॥

सुग्रीवः—अये वियति

सजलजलदसन्निभप्रकाशः
कनकमयामलभूषणोज्ज्वलाङ्गः ।
अभिपतति कुतो नु राक्षसोऽसौ
शलभ इवाशु हुताशनं प्रवेष्टुम् ॥ ५ ॥

हनूमान्—भो भो वानरवीराः ! अप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

सजलेति—जलेन=नीरेण सहितः इति सजलः (ब० व्री) स चासौ जलदः=मेघः (कर्मधा०) तत्सन्निभः=तत्तुल्यः (उपमान तत्पु०) प्रकाशः= कान्तिः यस्य सः (ब० व्री०) (जल वाले मेघ की तरह चमकता हुआ) कनक०—कनकस्य विकारः कनकमयानि अमलानि=निर्मलानि च (कर्मधा०) यानि भूषणानि (कर्मधा०) तैः उज्ज्वलानि=देदीप्यमानानि (तृ० तत्पु०) अङ्गानि=अवयवाः (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (सोने के निर्मल आभूषणों द्वारा देदीप्यमान अंगों वाला) असौ=एषः राक्षसः=असुरः आशु= शीघ्रम् हुताशनम्=अग्निम् प्रवेष्टुम्=अग्नौ प्रवेशं कर्तुम् शलभः=पतंगः इव कुतः कस्मात् कारणात् नु इति विवेके अभिपतति=अभिमुखम् आयाति । यथा खलु पतंगः अग्निमभिपतन् विनश्यति, तथैव एष राक्षसोऽपि अत्रागत्य विनाशं यास्यतीति भावः । अत्र राक्षसस्य जलदेन शलभेन च सादृश्यप्रतिपादनात् उपमासंसृष्टिः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ५ ॥

व्याकरण—जलदः=जलं ददातीति जल+√दा+क । प्रकाशः=प्र+√ काश्+घञ् । कनकमय=कनक+मयट् । उज्ज्वल=उत्=ऊर्ध्वं ज्वलतीति उत्+√ ज्वल्+अच् । हुताशनः हुतम् अश्नातीति हुत+√अश्+ल्युट् । प्रवेष्टुम्+प्र+√ विश्+तुमुन् । अभिपतति=अभि+√पत्+लट् ।

सुग्रीव—अरे, आकाश में—

जल-पूर्ण मेघ की जैसी कान्ति वाला (काला-काला), सोने के निर्मल आभूषणों से देदीप्यमान अंगों वाला यह राक्षस शीघ्र ही अग्नि में प्रवेश करने के लिए पतंगे की तरह क्यों इस ओर आ रहा है ? ॥ ५ ॥

हनूमान्—हे वानर-वीरो ! आप सावधान हो जायें ।

शैलैर्द्रुमैः सम्प्रति मुष्टिबन्धैर्दन्तैर्नखैर्जानुभिरुग्रनादैः ।
रक्षोवधार्थं युधि वानरेन्द्रास्तिष्ठन्तु रक्षन्तु च नो नरेन्द्रम् ॥ ६ ॥

रामः—राक्षस इति ? हनूमन् ! अलमलं सम्भ्रमेण ।

हनूमान्—यदाज्ञापयति देवः ।

(ततः प्रविशति विभीषणः ।)

टीका—वानरेषु वीराः=शूराः (स० तत्पु०) अथवा वानराश्च ते वीराः (कर्मधा) अप्रमत्ताः=प्रमादरहिताः सावधाना इत्यर्थः ।

शैलेति—अन्वयः—सम्प्रति वानरेन्द्राः शैलद्रुमैः मुष्टिबन्धैः दन्तैः नखैः जानुभिः उग्रनादैः (च) युधि रक्षोवधार्थम् तिष्ठन्तु नः नरेन्द्रम् च रक्षन्तु ।

सम्प्रति=इदानीम् वानराणाम् इन्द्राः= पतयः [ष० तत्पु०] शैलाः= पर्वताश्च द्रुमाः=वृक्षाश्च (द्वन्द्वः) तैः मुष्टीनां बन्धैः=करबन्धैः (ष० तत्पु०) दन्तैः=दशनैः नखैः=नखरैः जानुभिः=ऊरुसन्धिभिः उग्राः=भीषणाश्च ते नादाः= शब्दाः गर्जनानीत्यर्थः तैः (कर्मधा०) युधि=युद्धे रक्षसः=राक्षसस्य वधायेति वधार्थम् (ष० तत्पु०) तिष्ठन्तु=स्थिताः भवन्तु नः=अस्माकम् नरेन्द्रम्= नराणाम् इन्द्रम् (ष० तत्पु०) राजानम् राममित्यर्थः च रक्षन्तु=पान्तु। उपजातिः वृत्तम् । एतच्च इन्द्रवज्राया उपेन्द्रवज्रायाश्च सम्मिश्रितं रूपं भवति 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः,' 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ' ॥ ६ ॥

व्याकरण—बन्धः√बन्ध्+घञ् । नादः=√नद्+घञ् । युध्=√युध्+ क्विप् । तिष्ठन्तु√स्था+लोट् प्रथ० । रक्षन्तु√रक्ष्+लोट् ।

टीका—व्याकरण—सम्भ्रमः=भयम्, आकुलभावः अलम् इति प्रतिषेधार्थकः तद्योगे च तृतीया । शिविरस्य=सेनानिवासस्य सन्निवेशम्=स्थानम् (ष० तत्पु०) सन्निविशन्ते अत्रेति सम्+नि+√विश्+घञ् (अधिकरणे) अकृत०

इस समय वानरपति ! आप लोग ।

पर्वतों, वृक्षों, बँधी हुई मुठ्ठियों, दाँतों, नाखूनों, घुटनों और भीषण गर्जनों द्वारा युद्ध में राक्षस को मारने के लिए खड़े हो जाओ और नरेन्द्र की रक्षा करो ॥ ६ ॥

राम्—'राक्षस' है यह ? हनूमान ! बस, बस घबराओ मत ।

हनूमान्—जैसी महाराज की आज्ञा ।

विभीषण:—भो: ! प्राप्तोऽस्मि राघवस्य शिबिरसन्निवेशम् । (विचिन्त्य) अकृतदूतसम्प्रेषणमविदितागमनममित्रसम्बन्धिनं कथं नु खलु मामवगच्छेत् तत्रभवान् राघव: । कुत:,

क्रुद्धस्य यस्य पुरत: सहितोऽप्यशक्त:
स्थातुं सुरै: सुररिपोर्युधि वज्रपाणि: ।

दूतस्य सम्प्रेषणम्=सम्प्रेरणम् (ष० तत्पु०) न कृतम् इति अकृतम् (नञ् तत्पु०) अकृतम् दूतसम्प्रेषणम् (कर्मधा०) तेन तथाभूतम् (ब० व्री०) अविदितम्=अज्ञातम् आगमनम्=उपस्थानम् (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) अमित्रस्य=शत्रो: रावणस्येत्यर्थ: सम्बन्धिनम्=बान्धवम् (ष० तत्पु०) अवगच्छेत्=अवधारयेत् तत्रभवान्=आदरणीय: ।

टीका—क्रुद्धस्येति —अन्वय:—क्रुद्धस्य यस्य सुररिपो: पुरत: सुरै: सहित: अपि वज्रपाणि: स्थातुम् अशक्त: (अस्ति) तस्य शरणागतम् अनुजम् माम् रघुपति: किम् वक्ष्यति इति मे हृदयम् परिशङ्कितम् (अस्ति) ।

क्रुद्धस्य=कुपितस्य यस्य सुराणाम्=देवानाम् रिपो:=शत्रो: रावणस्येत्यर्थ: पुरत:=अग्रे सुरै:=देवै: सहित:=सह वर्तमान: अपि वज्रपाणि:=वज्रं पाणौ=हस्ते यस्य स: (ब० व्री०) इन्द्र: इत्यर्थ: स्थातुम् अशक्त:=युद्धं कर्तुं न समर्थ: इत्यर्थ: तस्य शरणे=आश्रयं आगतम्=उपस्थितम अनुजम्=कनीयांसं भ्रातरम् माम् रघुपति:=रघूणाम्=रघुवंशोत्पन्नानाम् पति:=स्वामी राम इत्यर्थ: (ष० तत्पु०) किम् वक्ष्यति=कथयिष्यति । रावणानुजम् माम् शरणागतं दृष्ट्वा राम: न जाने किं विचारयिष्यतीति भाव: । अत्र वज्रपाणिरपि सम्मुखे

विभीषण—लो ! मैं राम के खेमे के स्थान में पहुँच गया हूँ । (विचारकर) जिसने न (पहले) दूत भेजा है और न जिसके आगमन की सूचना मिली है, एवं जो शत्रु का सम्बन्धी है—ऐसे मुझको आदरणीय राम (न जाने) कैसा समझेंगे; क्योंकि—

कुपित हुए जिस देवता-शत्रु (रावण) के आगे देवताओं सहित वज्रधारी (इन्द्र) भी नहीं टिक सकता, उसके छोटे भाई, शरण में आए मुझे रघुपति

तस्यानुजं रघुपतिः शरणागतं मां
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥ ७ ॥

अथवा,
दृष्टधर्मार्थतत्त्वोऽयं साधुः संश्रितवत्सलः।
शङ्कनीयः कथं रामो विशुद्धमनसा मया ॥ ८ ॥

स्थानुं न शक्तः, अन्येषां तु वार्तैव का इत्यर्थात् आपद्यते, अतः अर्थापत्तिः अलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ७ ॥

व्याकरण—क्रुद्ध=√क्रुध्+क्त। स्थातुम् अशक्ताः—साहित्यिक दृष्टि से यहाँ 'न शक्तः' होना चाहिए, क्योंकि यहाँ प्रतिषेध को प्रधानता है और प्रतिषेध की प्रधानता में नञ् का 'शक्तः' के साथ समास नहीं चाहिए था। समास होने से उसकी 'प्रसज्य-प्रतिषेधता' (प्रधानता) नष्ट हो गई है। स्थातुम्=√स्था+तुमुन्। युध् योधनम् युध् इति√युध्+क्विप् भावे। आगत=आ+√गम्+क्तः। वक्ष्यति=√वच्+लृट् प्रथ०। परिशङ्कितम्=परि+√शङ्क्+क्त।

टीका—दृष्टेति—अन्वयः—दृष्ट० संश्रित० अयम् साधुः रामः विशुद्धमनसा मया कथं शङ्कनीयः।

दृष्ट० दृष्टम्=ज्ञातमित्यर्थः=धर्मार्थतत्त्वम् (कर्मधा०) येन सः (ब० व्री०) धर्मस्य अर्थस्य = शब्दार्थस्य अभिप्रायस्येति यावत् तत्त्वम् = याथार्थ्यम् (ष० तत्पु०), संश्रित०—संश्रितेषु शरणागतेषु वत्सलः = स्नेहवान् अयम्=एषः साधुः = धर्मशीलः सत्पुरुषः इति यावत् रामः विशुद्धम् = पवित्रं मनः = चित्तं (कर्मधा०) यस्य तेन (ब० व्री०) मया कथम्= केन प्रकारेण शङ्कनीयः = शङ्क्यः। अहम् शुद्धभावनया रामस्य शरणम् गच्छामि, न तु राक्षसत्वेन रावणभ्रातृत्वेन वा दुर्भावनया। अतः रामविषये शङ्कायाः नास्ति स्थानमिति भावः। अनुष्टुप् ॥ ८ ॥

(राम) क्या कहेंगे—इस सम्बन्ध में मेरा हृदय शंकित है ॥ ७ ॥

अथ वा

धर्म के अर्थ का तत्त्व जाने हुए, शरणागतों को प्रेम करने वाले इस सज्जन राम पर शुद्ध मन वाले मुझे क्यों शंका करनी चाहिए ? ॥ ८ ॥

(अधोऽवलोक्य) इदं रघुकुलवृषभस्य स्कन्धावारम् । यावदवत-
रामि । (अवतीर्य) हन्त इह स्थित्वा ममागमनं देवाय निवेदयामि ।

हनूमान्—(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये कथं तत्रभवान् विभीषणः !

विभीषणः—अये हनूमान् ?, हनूमन् ! ममागमनं देवाय निवेदय ।

हनूमान्—बाढम् । (उपगम्य) जयतु जयतु देवः ।

राजंस्त्वत्कारणादेव भ्रात्रा निर्विषयीकृतः ।
विभीषणोऽयं धर्मात्मा शरणार्थमुपागतः ॥ ९ ॥

व्याकरण— दृष्ट—√ दृश् + क्तः । तत्त्वम्=तस्य भावः इति तत् + त्वः संश्रित = सम् + √ श्रि + क्त । वत्सल = वत्से = पुत्रादिस्नेहपात्रे कामः अस्यास्तीति वत्स + लच् ('वत्सांसाभ्यां कामबले' पा० ५। २।९८) । विशुद्ध = वि + √ शुध् + क्त । कथम् किम् + थमु (प्रकारार्थे) कादेशश्च । शङ्कनीय = √ शङ्क + अनीय ।

टीका—रघूणाम्=रघुवंशीयानां कुले=वंशे । (ष० तत्पु०) वृषभस्य = श्रेष्ठस्य (स० तत्पु०) ('स्युरुत्तरपदं व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः । सिंह - शार्दूल - नागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः' ॥ इत्यमरः) स्कन्धावारम् = सेनासन्निवेशः, शिविरमिति यावत्, अवतीर्य = अव + √तॄ + ल्यप् (उतर-कर) देवस्य = महाराजाय रामायेत्यर्थः निवेदयामि = कथयामि । ऊर्ध्वम्= उपरि अवलोक्य = अव + √लोक् = ल्यप् (देखकर) । बाढम् = [अच्छा] ।

राजन्निति—अन्वयः—सरलः । हे राजन् । = भूपाल ! तव कारणम् त्वत्कारणम् तस्मात् (ष० तत्पु०) तव हेतोः भ्रात्रा =अग्रजेन रावणेनेत्यर्थः ।

(नीचे की ओर देखकर) यह रघुकुल-श्रेष्ठ राम की छावनी है । तो अब उतर जाता हूँ । (उतर कर) अच्छा, यहाँ ठहरकर अपना आना महाराज (राम) को सूचित करता हूँ ।

हनूमान्—(ऊपर देखकर) अरे, यह कैसे ? ये तो मान्य विभीषण हैं ।

विभीषण—ओ, हनूमान्? हनूमान् ! मेरा आना महाराज को सूचित कर दो ।

हनूमान्—अच्छा । [(राम के) पास जाकर] जय जय महाराज !

राजन् ! आप के कारण ही भाई द्वारा देश से निकाला हुआ यह धर्मात्मा विभीषण शरण के लिए (आप के) पास आया है ॥ ९ ॥

रामः—कथं विभीषणः शरणागत इति । वत्स लक्ष्मण ! गच्छ सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

रामः--सुग्रीव ! वक्तुकाममिव त्वां लक्षये ।

सुग्रीवः--देव ! बहुमायाश्छलयोधिनश्च राक्षसाः । तस्मात् सम्प्रधार्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

निर्विषयीकृतः = देशात् तस्य त्वत्पक्षपातित्वं दृष्ट्वा लंकातः निर्वासितः इति भावः । (निष्कासित) अयम् = एवः धर्मात्मा = धर्मशीलः विभीषणः शरणार्थम् = शरणायेति शरणार्थम् अर्थेन सह चतुर्थ्यर्थे नित्यसमासः । उपागतः = त्वत्समीपे आयातः । अनुष्टुप् ॥ ९ ॥

व्याकरण —राजन् = राजते इति √ राज् + कनिन् अथवा रञ्जयति प्रजाः इति √रञ्ज् + कनिन् । निर्विषयीकृतः = निष्क्रान्तः विषयात् (देशात्) इति निर्विषयः अनिर्विषयः निर्विषयः सम्पाद्यमानः कृत इति निर्विषय+च्वि + √कृ + क्त । उपागतः = उप + आ + √ गम् + क्त ।

टीका— व्याक० सत्कृत्य = सत् + √कृ + ल्यप् संमान्य । प्रवेश्यताम् = प्र + √ विश् + णिच् + लोट् प्रविष्टः क्रियताम् । वक्तुम् = कथयितुम् कामः = इच्छा यस्य सः (ब० व्री०) (तुम् - काम - मनसोरपि' इति मकारस्य लोपः) वक्तुमिच्छन् त्वां लक्षये = पश्यामि । बहुमायाः = बह्वी = विपुला मायः = मोहनोच्चाटनादिकं (कर्मधा०) येषां ते (ब० व्री०) (बड़े जादू-टोने वाले) छलेन=कपटेन युद्धयन्ते युद्धं कुर्वन्तीति छल+√युध्+णिन् (उपपदतत्पु०) (छल-कपट के साथ लड़ने वाले) । संप्रधार्य=सम् + प्र+√धृ + णिच् + ल्यप् सम्यक् विचार्य ।

राम--क्या कहा ? विभीषण शरण में आया है ? तात लक्ष्मण ! जाओ, आदर-सत्कार करके विभीषण को लिवा लाओ ।

लक्ष्मण—जैसी महाराज की आज्ञा ।

राम--सुग्रीव ! तुम्हें बोलना चाहता हुआ जैसा देख रहा हूँ ।

सुग्रीव--महाराज ! राक्षस बहुत तरह की माया वाले और बल से लड़ने वाले हुआ करते हैं । अतः समझ-बूझकर उसे यहाँ आने देना चाहिये ।

हनूमान्—महाराज ! मा मैवं,

देवे यथा वयं भक्तास्तथा मन्ये विभीषणम् ।
भ्रात्रा विवदमानोऽपि दृष्टः पूर्वं पुरे मया ॥ १० ॥

रामः--यद्येवं, गच्छ, सत्कृत्य प्रवेश्यतां विभीषणः ।

लक्ष्मणः--यदाज्ञापयत्यार्यः । (परिक्रम्य) अये विभीषणः । विभीषण ! अपि कुशली भवान् ।

टिप्पणी—शरणागत इति—विभीषण को शरणागत सुनते ही राम का हृदय आनन्द से भर गया और उसे आदर-पूर्वक लिवा लाने लक्ष्मण को भेज दिया। एक के अनुज की अगवानी करने हेतु दूसरे का अनुज जावे—यह समुचित ही है। सुग्रीव ने विभीषण को सन्देह की दृष्टि से देखकर राम को रोकना चाहा, पर उसका राम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। राम की शरणागतों पर पूरी आस्था रहती थी और यही उनके चरित्र की महत्ता थी।

टीका—देवे इति—अन्वयः--देवे यथा वयं भक्ताः, तथा विभीषणम् मन्ये। पूर्वम् मया पुरे भ्रात्रा विवदमानः अपि (सः) दृष्टः।

देवे=महाराजे भवति इत्यर्थः यथा=येन प्रकारेण वयम्=भक्ताः=भक्तिपूर्णाः तथा (अहम्) विभीषणम्=मन्ये=अवगच्छामि, अस्माकं सदृशः विभीषणोऽपि महाराजस्य भक्त इति भावः। पूर्वम्=लङ्का-स्थितिकाले मया पुरे=लङ्कायाम् भ्रात्रा=अग्रजेन रावणेनेत्यर्थः विवदमानः=सीताहरणमधिकृत्य विवादं कुर्वन् दृष्टः=अवलोकितः। अत्र यथा वयं भक्ताः तथा विभीषणोऽपि भक्तः इत्युपमा। अनुष्टुप् ॥ १० ॥

हनूमान्—नहीं महाराज ! ऐसा नहीं।

जैसे हम आपके भक्त हैं, उसी तरह मैं विभीषण को मानता हूँ। पहले तो मैंने उसे (लंका-) पुरी में (अपने) भाई (रावण) के साथ विवाद करते हुए देख रखा है ॥ १० ॥

राम--यदि ऐसा है तो जाओ, आदर-सत्कार करके उसे लिवा लाओ।

लक्ष्मण--जैसी महाराज की आज्ञा। (घूमकर) अरे विभीषण हैं ! विभीषण ! आप सकुशल तो हैं ?

विभीषणः—अये कुमारो लक्ष्मणः !, कुमार ! अद्य कुशली संवृत्तोऽस्मि ।

लक्ष्मणः—विभीषण ! उपसर्पावस्तावदार्यम् ।

विभीषणः—बाढम् ।

(उपसर्पतः)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः ।

विभीषणः—प्रसीदतु देवः । जयतु देवः ।

रामः—अये विभीषणः । विभीषण ! अपि कुशली भवान् ?

विभीषणः—देव ! अद्य कुशली संवृत्तोऽस्मि ।

व्याकरण=भक्त—√भज्+क्त । मन्ये=√मन्+ (आ०) लट् उत्त० । विवदमानः=वि+√वद्+शानच् । दृष्ट=√दृश्+क्त ।

टीका—कुशली=कुशलम् अस्य अस्तीति कुशल+इन् (सकुशल, राजी, प्रसन्न) संवृत्तः=सम्+√वृत्+क्त । उपसर्पावः=उप+√सृप्+लट्=उपगच्छावः तावत्=पूर्वमित्यर्थः आर्यम्=रामम् ।

टिप्पणी—अये कुमारो लक्ष्मणः—रामायण के अनुसार पहले विभीषण की सुग्रीव से भेंट हुई न कि हनूमान् से, किन्तु भास ने उसकी पहले हनूमान् से भेंट कराई है, जो नाटकीय दृष्टि से अच्छी है, क्योंकि हनूमान् और विभीषण पहले लंका में परस्पर मिल चुके थे, अतः एक-दूसरे को पहचानने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई । रामायण में सुग्रीव आदि के साथ राम स्वयं शरणागत विभीषण से मिलने गए, किन्तु नाटक में राम ने लक्ष्मण को उसे बुला लाने

विभीषण—ओ, (यह) कुमार लक्ष्मण हैं ! कुमार ! आज सकुशल हुआ हूँ ।

लक्ष्मण—विभीषण ! तो पहले आर्य (राम) के पास चलते हैं ।

विभीषण—ठीक है । [दोनों चल पड़ते हैं]

लक्ष्मण—महाराज की जय ।

विभीषण—महाराज प्रसन्न हूजिए, महाराज की जय ।

राम—अये विभीषण हैं ! विभीषण ! आप कुशलपूर्वक तो हैं ?

विभीषण—महाराज ! आज सकुशल हुआ हूँ ।

भवन्तं पद्मपत्राक्ष शरण्यं शरणागतः ।
अद्यास्मि कुशली राजंस्त्वद्दर्शनविकल्मषः ॥ ११ ॥

राम।--अद्यप्रभृति मद्वचनाल्लङ्केश्वरो भव ।
विभीषणः--अनुगृहीतोऽस्मि ।

भेजा है। यह भी नाटकीय दृष्टि से अच्छा ही है कि रावण के अनुज के पास राम का अनुज जावे, किन्तु देखते ही ये दोनों एक-दूसरे को पहचान गए—यह बात की कल्पना सरासर अस्वाभाविक है। विभीषण और हनूमान् का एक-दूसरे को पहचानना स्वाभाविक हो सकता है, किन्तु विभीषण ने लक्ष्मण को पहले कभी देखा ही नहीं था, तो उसका यह कहना--'अरे यह तो कुमार लक्ष्मण हैं' विचित्र ही बात है। यह अमनोवैज्ञानिक है।

टीका—भवन्तमिति । अन्वयः—हे राजन् ! पद्मपत्राक्षम् शरण्यम् भवन्तम् शरणागतः (अहम्) अद्य कुशली त्वद्दर्शन० च अस्मि ।

हे राजन् ! पद्मस्य=कमलस्य पत्रम् = दलम् (ष० तत्पु०) इव अक्षि= नयनं (उपमान तत्पु०) यस्य तम् (ब० व्री०) (कमल की पँखुड़ी जैसे नयनों वाले) शरण्यम्=शरणे साधुम् शरणागत-रक्षकमित्यर्थः भवन्तम् शरणागतः=शरणं प्राप्तः (अहम्) अद्य कुशली=सकुशलः त्वद्दर्शन० तव दर्शनम् =त्वद्दर्शनम् (ष० तत्पु०) त्वद्दर्शनेन विकल्मषः=विगत-पापः (तृ० तत्पु०) विगतं कल्मषम् विकल्मषम् (प्रादि तत्पु०) यस्य सः (ब० व्री०) (पापं किल्विष-कल्मषम् इत्यमरः) जातोऽस्मीति शेषः । अत्र अक्ष्णः पद्मपत्रेण साम्य-प्रतिपादनात् उपमालंकारः। अनुष्टुप् ॥ ११ ॥

व्याकरण – शरण्यम्=शरणे साधुः इति शरण+यत् । शरणागतः= शरणम् आगतः (द्वि० तत्पु०) व्याकरण की दृष्टि से 'शरण' शब्द का सम्बन्ध

हे राजन् ! कमल की पँखुड़ियों-जैसे नयन वाले तथा शरण देने वाले आप की शरण आया हुआ मैं आज सकुशल और आपके दर्शनों से पापरहित हो गया हूँ ॥ ११ ॥

राम--आज से लेकर मेरी आज्ञा से तुम लंकाधिपति होओ ।

विभीषण--अनुगृहीत हूँ ।

रामः—विभीषण ! त्वदागमनादेव सिद्धमस्मत्कार्यम् । सागरतरणे खलूपायो नाधिगम्यते ।

विभीषणः - देव ! किमत्रावगन्तव्यम् । यदि मार्गं न ददाति, समुद्रे दिव्यमस्त्रं तावद् विस्रष्टुमर्हति देवः ।

रामः —साधु विभीषण ! साधु । भवतु एवं तावत् करिष्ये ।

(सहसोत्तिष्ठन् सरोषम्)

'भवन्तम्' से है, इसलिए उसका 'आगत' के साथ समास नहीं होना चाहिए था । यहां 'भवन्तं शरणम् आगतः' अपेक्षित है । यदि समास ही अभीष्ट था, तो भवत् शब्द को भी समास में लेकर 'भवच्छरणागतः' होना चाहिए । परस्पर दो सापेक्ष शब्दों में से एक का अन्य पद के साथ समास करना असमर्थ समास कहलाता है, जो पाणिनि व्याकरण के विरुद्ध है । शरण शब्द का आश्रय और आश्रय-दाता दोनों अर्थ होते हैं । यहां आश्रय-दाता अर्थ है, जो यहां राम हैं ।

टीका—अद्यप्रभृति = अस्मात् दिनात् आरभ्य (आज से लेकर) मम वचनं मद्वचनं तस्मात् (ष० तत्पु०) मम आदेशात् इत्यर्थः । लङ्कायाः ईश्वरः=स्वामी लङ्काधिपतिरित्यर्थः । एतेन रावणस्य भावी विनाशः सूच्यते । वाचा रामेण विभीषणः लङ्केशः इदानीमेव कृतः, विधि-विधानतः तस्य राज्याभिषेकस्तु रावणवधानन्तरमेव सम्पत्स्यते । तव आगमनात्=त्वदागमनात् (ष० तत्पु०) सिद्धम्=सफलीभूतम् । सागरस्य तरणे=पारकरणे (ष० तत्पु०) उपायः = साधनम्, न अधिगम्यते = अधि+√गम्+लट् कर्मणि, ज्ञायते । विस्रष्टुम्=वि+√सृज्+तुम्=क्षेप्तुम् ।

टीका— ममेति— अन्वयः— यदि (अयम्) मम मार्गम् न ददाति (तर्हि) शीघ्रम् एनम् मम शर० हृतशत० प्रतिहत० करोमि ।

राम - विभीषण ! तुम्हारे आ जाने से हमारा काम बन गया है, समुद्र पार करने का उपाय समझ में नहीं आ रहा है ।

विभीषण -- महाराज ! इसमें समझ में आने की क्या बात है ? यदि वह मार्ग नहीं देता है, तो आप अपना दिव्य अस्त्र छोड़ दीजिए ।

राम— ठीक है विभीषण ! ठीक । अस्तु, अब ऐसा ही करूंगा ।

[सहसा खड़े होते हुए क्रोध के साथ]

मम शरपरिदग्धतोयपङ्कं हतशतमत्स्यविकीर्णभूमिभागम् ।
यदि मम न ददाति मार्गमेनं प्रतिहतवीचिरवं करोमि शीघ्रम् ।। १२ ।।

(ततः प्रविशति वरुणः ।)

वरुणः—(ससम्भ्रमम्)

नारायणस्य नररूपमुपाश्रितस्य
कार्यार्थमभ्युपगतस्य कृतापराधः ।

मम= मह्यम् मार्गम्= पन्थानम् पारकरणार्थमित्यर्थः न ददाति= प्रयच्छति, शीघ्रम् = त्वरितम् एनम् = सागरम् मम — स्वकीयेन शर०— शरेण= बाणेन परिदग्धे = परितः प्लुष्टे (तृ० तत्पु०) तोयपङ्के (कर्मधा०) तोयञ्च पंकञ्चेति तोयपंके (द्वन्द्वः) जलकर्दमौ यस्य तथाभूतम् (ब. व्री.) (अपने बाण से जले पड़े जल और कीचड़ वाला) हतशत० हताः=मृताः शतानि = अनेकशतसंख्यकानि ये मत्स्याः = मीनाः (कर्मधा०) तैः विकीर्णः =व्याप्तः (तृ० तत्पु०) भूमिभागः भूप्रदेशः (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) भूमिभागः = भूमेः= भागः (ष० तत्पु०) (मारे गए सैकड़ों मछलियों से बिखरे पड़ भूभाग वाला) प्रतिहत०— प्रतिहतः = नष्टः समाप्तः इति यावत् वीचीनाम् = तरङ्गाणाम् रवः = शब्दः (ष० तत्पु०) यस्य तम् (ब० व्री०) करोमि = विदधे। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ।। १२ ।।

व्याकरण— मम न ददाति—यहाँ सम्प्रदान मे चतुर्थी प्राप्त है, किन्तु सम्बन्ध-विवक्षा षष्ठी हो गई है। मम शर०— यहाँ भी 'मम' का शर के साथ सम्बन्ध होने से असमर्थ समास है । यहाँ या तो 'मम' का भी शर से समास करके

यदि (सागर) मुझे मार्ग नहीं देता तो मैं शीघ्र ही इसे अपने बाण द्वारा सुखा दिये गये जल और कीचड़ वाला, मारी गई सैकड़ों मछलियों से व्याप्त भूभाग वाला तथा (हमेशा के लिए) समाप्त हुए तरंग-ध्वनि वाला बना देता हूँ ।। १२ ।।

[तदनन्तर वरुण प्रवेश करता है।]

वरुण (घबराकर)

मनुष्य का रूप अपनाये, नारायण के कार्य हेतु [अवतार- रूप में) आए

देवस्य देवरिपुदेहहरात् प्रतूर्णं

भीतः शराच्छरणमेनमुपाश्रयामि ॥ १३ ॥

'मच्छर०; होना चाहिए या 'शर' को समास से पृथक् कर के 'मम शरेण'। परिदग्ध = परि + √ दह् + क्त । हत = √ हन् + क्त । विकीर्ण = वि + √ कॄ + क्त, 'त' को 'न' और 'ॠ' को 'ईर्' । रवः = √ रु + अप् ।

टीका— नारायणस्येति— अन्वयः— नर-रूपम् उपाश्रितस्य नारायणस्य कार्यार्थम् अभ्युपगतस्य देवस्य कृतापराधः (अहम् , देव-रिपु० भीतः सन् प्रतूर्णम् एनम् शरणम् उपाश्रयामि ।

नर०—नरस्य=मनुष्यस्य रूपम् + आकारम् (ष० तत्पु०) उपाश्रितस्य = धारयतः इत्यर्थः नारायणस्य = भगवतः विष्णोः कार्याय इति कार्यार्थम् चतुर्थ्यर्थे अर्थेन नित्यसमासः अभ्युगतस्य = संसारे आगतस्य देवस्य = महाराजस्य रामस्येत्यर्थः कृतः = विहितः अपराधः = आगः (कर्मधा०) येन सः (ब० व्री०) अहम् देव० —देवानाम् =सुराणां ये रिपवः =शत्रवः (ष० तत्पु०) तेषां देहानां = शरीराणाम् हरात् = हरति = विनाशयतीति हरः तस्मात् (ष० तत्पु०) शरात् = बाणात् भीतः = त्रस्तः) प्रतूर्णम् = शीघ्रम् एनम् = राममित्यर्थः शरणम् = आश्रयम् उपाश्रयामि= गृह्णामि । 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' इत्युक्त्यनुसारेण स्वयं नारायणः मनुष्य-देहं धृत्वा रामरूपे अवतीर्णोऽस्ति । तस्य कृते समुद्र-पार-करण-मार्गमदत्त्वा अहं अपराधी अस्मि, अतः तद्बाणप्रहारात् भीतोऽहं तस्य शरणं गच्छामीतिभावः । हेतूपादानात् काव्यलिङ्गम् । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १३ ॥

व्याकरण— उपाश्रित = उप + आ + √ श्रि + क्त । अभ्युपगत = अभि + उप + √ गम् + क्त । हरः = √ हृ + अच् कर्तरि । प्रतूर्णम् = प्र + √ त्वर् + क्तः, तस्य नत्वम् ऊट् च । भीत = √ भी + क्त । उपाश्रयामि = उप + आ + श्रि + लट् उत्त० ।

हुए महाराज (राम) का अपराधी बना हुआ मैं (उनके) देवताओं के शत्रुओं की देहों का नाश कर देने वाले बाण से डरा इनकी शरण लेता हूँ ॥ १३ ॥

(विलोक्य) अये अयं भगवान्,

मानुषं रूपमास्थाय चक्रशार्ङ्गगदाधरः ।
स्वयं कारणभूतः सन् कार्यार्थी समुपागतः ॥ १४ ॥

नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय नारायणाय ।

टिप्पणी—एनमुपाश्रयामि—रामायण के अनुसार राम तीन दिन तक सागर के तीर पर बैठे रहे कि वह पार जाने के लिए मार्ग देगा, पर वह क्यों मार्ग देता ? राम क्रोध मे आ गए और उन्होंने सागर सुखाने हेतु धनुष पर बाण चढ़ा दिया और मारने को ही थे कि इतने में वरुण हाथ जोड़े खड़ा हो जाता है और बाण को अन्यत्र फेंकने का अनुरोध करता है। उसकी प्रार्थना पर राम ने बाण उत्तर दिशा की ओर फेंका जहां धरती सूखकर मरुस्थल बन गई। कहते हैं वह धरती राजस्थान का रेगिस्तान है। किन्तु भास राम के हाथ में धनुष-बाण नहीं चढ़वाता है। केवल उसका संकल्प-मात्र करते ही वरुण को उपस्थित कर देता है। वाल्मीकि ने राम को एक वीर के रूप में चित्रित किया है जब कि भास उन्हें नारायण के रूप में उल्लिखित कर रहा है। तभी तो नारायण के संकल्प-मात्र से भयभीत वरुण उनको शरण पकड़ लेता है।

टीका—मानुषमिति—अन्वयः—स्वयम् (जगतः) कारणभूतः चक्र० मानुषं रूपम् आस्थाय कार्यार्थी सन् समुपागतः ।

स्वयम्=आत्मना कारणं भूतः कारणभूतः जगदुत्पादकः इत्यर्थः (कर्मधा०) चक्र०—धरतीति धरः चक्रं=आयुधविशेषश्च शार्ङ्गम्=धनुश्च गदा=मुद्गरश्चेति ०गदाः (द्वन्द्वः) तासां धरः=धारकः (ष० तत्पु० । भगवान् विष्णुरित्यर्थः मानुषम्=मानुषस्य=मनुष्यस्य इदम् इति मानुषम् रूपम्=आकारम् आस्थाय= आश्रित्य कार्यम्=रावण-विनाशरूपं कर्म अर्थयते=इच्छतीति तथोक्तः समुपागतः= अत्रागतः । एतेन रामस्य विष्णुरूपत्वं सिद्धयति । अनुष्टुप् ॥ १४ ॥

(देखकर) अरे, ये भगवान् हैं ।

स्वयं (जगत् के) कारण-रूप, चक्र, शार्ङ्ग, और गदा धारी (विष्णु) मनुष्य का रूप अपना कर कार्य-हेतु (संसार में) आए हैं ॥ १४ ॥

तीनों लोकों के कारण-भूत भगवान नारायण को नमस्कार ।

लक्ष्मणः—(विलोक्य) अये को नु खल्वेषः ?

मणिविरचितमौलिश्चारुताम्रायताक्षो
नवकुवलयनीलो मत्तमातङ्गलीलः ।

व्याकरण—मानुषम्=मानुष+अण् । आस्थाय=आ+√स्था ल्यप्, आ उपसर्ग आ जाने से 'स्था' धातु सकर्मक हो रहा है । शार्ङ्गम्=शृङ्गस्य इदम् इति शृङ्ग+अण् । विष्णु का धनुष शृङ्ग का बना हुआ होता है, इसीलिए उनको शार्ङ्गी भी कहते हैं । धरः=√धृ+अच् । भूत=√भू+क्त । कार्यार्थी=कार्य+√अर्थ+णिनि । समुपागतः=सम्+उप+आ+√गम्+क्त ।

टिप्पणी—भगवान् के चार हाथ हैं और चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म रहते हैं, परन्तु यहाँ भास ने तीन ही चीजें बताई हैं । पद्म छोड़ दिया है और शंख के स्थान में शार्ङ्ग दिया है । शार्ङ्ग वास्तव में कन्धे पर रहता है । कार्यार्थी—हम पीछे संकेत कर आए हैं कि भगवान् दुष्टों के निग्रह और सज्जनों की रक्षा हेतु अवतार लेते हैं । यही उनका कार्य है, जिसे वे चाहते हैं और राम-रूप में कर रहे हैं ।

टीका—मणीति—अन्वयः सरलः ।

मणि०—मणिभिः=रत्नैः विरचितः=खचितः (तृ० तत्पु०) मौलिः=मुकुटम् (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) मणि—जड़े मुकुट वाला । चारु०—चारुणी=सुन्दरे च ताम्रे=रक्ते च आयते=विशाले च (कर्मधा०) अक्षिणी=नयने (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (सुन्दर लाल और विशाल नयनों वाला) नव०—नवम्=नूतनम् विकसितमित्यर्थः यत् कुवलयम्=नीलकमलम् (कर्मधा०) तद्वत् नीलः=नीलवर्णः (उपमान-तत्पु०) (नये नील कमल-जैसा नीला) मत्त०—मत्तः=उत्कटमदः यः मातङ्गः=हस्ती (कर्मधा०) तस्य इव लीला=विलासः (उपमान तत्पु०) यस्य सः (ब० व्री०) मदमत्त हाथी की सी चाल वाला) सलिल०—सलिलस्य=जलस्य मध्यात्=अन्तरालात् (ष० तत्पु०) उत्थितः=उद्गतः (पं० तत्पु०) (जल के भीतर से निकला) शीघ्रम्

लक्ष्मण—(देखकर) अरे, यह कौन है—

मणि-जड़ित मुकुट वाला, सुन्दर, लाल, विशाल आँखों वाला, नील

सलिलनिचयमध्यादुत्थितस्त्वेष शीघ्र-
मवनतमिव कुर्वंस्तेजसा जीवलोकम् ॥ १५ ॥

विभीषण:—देव ! अयं खलु भगवान् वरुण: प्राप्तः।
राम:—किं वरुणोऽयम् ? भगवन् ! वरुण। नमस्ते।
वरुण:—न मे नमस्कारं कर्तुमर्हति देवेशः। अथवा,

राजपुत्र ! कुतः कोपो रोषेण किमलं तव।
कर्तव्यं तावदस्माभिर्वद शीघ्रं नरोत्तम ! ॥ १६ ॥

तेजसा=वर्चसा जीवलोकम्=जीवानाम्=प्राणिनां लोकम् (ष० तत्पु०) संसार-मित्यर्थ: अवनतम् कुर्वन्=नमयन् इव एषः ('को नु खल्वेषः' इति पूर्वतोऽनु-वृत्तम्। अत्र नवकुवलय-नीलः, मातङ्गलीलः इत्युपमाद्वयस्य तथा अवनतमिव कुर्वन् इत्युत्प्रेक्षायाश्च संसृष्टिः अलंकारः। मालिनी वृत्तम् ॥ १५ ॥

व्याकरण—मत्त=√मद्+क्त। चयः=√चि+अच्। उत्थित=उद्+स्था+क्त। अवनत=अव+√नी+क्त। कुर्वन्=√कृ+शतृ।

टीका—राजपुत्रेति—अन्वयः सरलः।

हे राजपुत्र !=राजकुमारः ! कुतः=कस्मात् कोपः=क्रोधः, तव=ते रोषेण=क्रोधेन किम्=कोऽर्थः अलम् तेन क्रोधो न कार्य इत्यर्थः। हे नरेषु=पुरुषेषु उत्तम=श्रेष्ठ ! पुरुषोत्तम ! इत्यर्थः अस्माभिः कर्तव्यम्=करणीयम् कार्यम् तावत्=पूर्वम् शीघ्रम्=त्वरितं वद=कथय। अनुष्टुप् ॥ १६ ॥

कमल-जैसा नीला, मदमत्त हाथी की तरह चाल वाला, जल के बीच से उठा हुआ, शीघ्र ही अपने तेज से संसार को झुकाता हुआ-जैसा (यह कौन है ?) ॥ १५ ॥

विभीषण—महाराज ! ये भगवान वरुण पहुँच गए हैं।

राम—क्या ये वरुण हैं ? भगवन् वरुण ! नमस्ते।

वरुण—देवताओं के स्वामी को मुझे नमस्कार नहीं करना चाहिए।

अथवा

हे राजपुत्र ! आपका क्रोध किस लिए है ? क्रोध से क्या ? बस करो। हे पुरुषोत्तम ! पहले शीघ्र यह बोलो कि हमें क्या काम करना है ॥ १६ ॥

रामः—लङ्कागमने मार्गं दातुमर्हति भवान् ।

वरुणः—एष मार्गः । प्रयातु भवान् । (अन्तर्हितः ।)

रामः—कथमन्तर्हितो भगवान् वरुणः । विभीषण ! पश्य पश्य भगवत्प्रसादान्निष्कम्पवीचिमन्तं सलिलाधिपतिम् ।

विभीषणः—देव ! साम्प्रतं द्विधाभूत इव दृश्यते जलनिधिः ।

रामः—क्व हनूमान् ?

हनूमान्—जयतु देवः ।

व्याकरण—पुत्रः—यास्क के अनुसार पु=पुरु बाहुल्यर्थः त्रायते=रक्षतीति पुत्रः, जो माँ-बापों को बडी रक्षा करता है । परन्तु मनु के अनुसार पुत्=नरक-विशेषः तस्मात् त्रायते इति ('पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात् त्रायते पितरं सुतः । तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा' ।। मनु० ९ । १३८) कोपः=√कुप्+घञ् । रोषः+√रुष्+घञ् । किम् और अलम् ये दोनों पर्याय-शब्द हैं जो निषेधार्थक हैं । 'किम्' से ही काम चल जाता है, अलम् व्यर्थ है । कर्तव्यम्=√कृ+तव्य ।

टीका—दातुम् अर्हति भवान्=भवता दातव्यम् । प्रयातु=गच्छतु । अन्तर्हितः=तिरोहितः अदृश्यो जातः इत्यर्थः । भगवतः=वरुणस्य प्रसादात्=अनुग्रहात्, निष्कम्पाः=निर्गतः कम्पः=कम्पनम् यस्मात् तथा भूताः (ब० व्री०) निश्चला इत्यर्थः वीचयः=तरङ्गाः (कर्मधा०) सन्ति अस्येति तथोक्तम् ०वीचि+मतुप्, सलिलस्य=जलस्य अधिपतिम्=अधिष्ठातृ-देवम् वरुणमिति यावत्,

---

राम—आप हमें लङ्का में जाने का मार्ग दें ।

वरुण—यह है मार्ग । आप जाइये ।

राम—यह क्या ? भगवान् वरुण अन्तर्धान हो गये हैं । विभीषण ! भगवान् की कृपा से सागर को निश्चल तरंगों वाला बना हुआ सा देखो ।

विभीषण—महाराज ! समुद्र इस समय दो भागों में विभक्त हुआ-जैसा दिखलाई दे रहा है ।

राम—हनूमान् कहाँ हैं ?

हनूमान्—महाराज की जय !

रामः—हनूमन् ! गच्छाग्रतः ।

हनूमान्—यदाज्ञापयति देवः ।

(सर्वे परिक्रामन्ति ।)

रामः—(विलोक्य सविस्मयम्) वत्स लक्ष्मण ! वयस्य विभीषण ! महाराज सुग्रीव ! सखे हनूमन् ! पश्यन्तु पश्यन्तु भवन्तः । अहो विचित्रता सागरस्य । इह हि,

---

द्विधाभूतः=द्वयोः भागयोः विभक्तः इव दृश्यते=अवलोक्यते (कर्मणि) जलनिधिः=जलस्य निधिः=गृहम् समुद्र इत्यर्थः (ष० तत्पु०) ।

टिप्पणी—रामायण के अनुसार जल के भीतर से शरीरधारी सागर प्रकट हुआ और राम को बोला—'आपके साथ विश्वकर्मा का पुत्र नल है । वह सेतुनिर्माण-कार्य में दक्ष है, एवं सेतु (पुल) बना सकता है' । फिर तो क्या था, वानर पर्वत-शृंगों को तोड़-तोड़ कर लाते रहे और नल को देते गए । शिलाओं के पड़ने से जल उठ आया और पुल बन गया जिसके बनाने में पूरे चार दिन लगे और जो 'शत-योजन' लम्बा था । कहते हैं कि सेतु बन जाने पर राम ने तीर पर भगवान् शंकर की पूजा की जिन्हें आजकल 'सेतुबन्ध-रामेश्वर' कहा जाता है और जो हिन्दुओं का एक पवित्र तीर्थ-स्थान है । किन्तु भास ने सेतु कोई नहीं बंधवाया । उसने वरुण द्वारा सागर के जल को दो भागों में बँटवाकर बीच में से जाने का मार्ग (गलियारा) बनवा दिया । यह भास की अपनी कल्पना है । सम्भवतः भास रामायण के स्थान में भागवत से प्रभावित है जहाँ वसुदेव द्वारा ले जाये जाते हुए भगवान कृष्ण के पाद-स्पर्श से यमुना-जल का दो भागों में विभक्त होकर मार्ग देने और वसुदेव का सहज में ही यमुना पार हो जाने का उल्लेख है ।

राम—हनूमान् ! आगे-आगे चलो ।

हनूमान्—जैसी महाराज की आज्ञा ।

राम—(देखकर आश्चर्य के साथ) तात लक्ष्मण ! मित्र विभीषण ! महाराज सुग्रीव ! सखे हनूमन् ! आप लोग देखिये । समुद्र की विचित्रता आश्चर्य-जनक है । यहाँ—

क्वचित् फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः ।
क्वचिद् वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः
क्वचिद् भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ।। १७ ॥

भगवत्प्रसादादतीतः सागरः ।

हनूमान्:—देव ! इयमियं लङ्का ।

क्वचिदति—अन्वयः—सरलः ।

क्वचित्=कस्मिश्चित् प्रदेशे फेनम्=हिंडीरम् उद्गिरति=उद्वमतीति तथोक्तः (उपपद तत्पु०) मीनैः=मत्स्यैः आकुलम्=व्याप्तम् (तृ० तत्पु०) जलम्= (कर्मधा०) यस्य सः (ब० ब्री०) शङ्खैः=कम्बुभिः = आकीर्णः =भरितः (तृ० तत्पु०) नीलः=नीलवर्णः यः अम्बुदः=मेघः (कर्मधा०) तन्निभः= तत्तुल्यः (उपमानतत्पु०) वीचीनाम्=तरङ्गाणां माला=श्रेणी (ष० तत्पु०) यस्मिन् तथाभूतः (ब० ब्री०) नक्रैः=कुम्भीरैः प्रतिभयः=भयङ्करः (तृ० तत्पु०) भीमाः=भीषणाः आवर्ताः=जल-भ्रमयः (कर्मधा०) यत्र यथाभूतः (ब० ब्री०) निर्गतः कम्पः=यस्मात् तथाभूतम् (ब० ब्री०) सलिलं=जलं यत्र सः (ब० ब्री०) निश्चल-जल इत्यर्थः । शिखरिणी वृत्तम् ।। १७ ॥

व्याकरण—फेनोद्गारी=फेन + उत्+√गॄ + णिनि । आकीर्णा=आ + √कॄ + क्त । अम्बुदः = अम्बु = जलं ददातीति अम्बु + √दा + क (उपपद तत्पु०) आवर्तः=आ + √वृत् + घञ् । कम्पः=कम्प् + घञ् ।

टीका—भगवतः=वरुणस्य प्रसादात्=अनुग्रहात् (ष० तत्पु०) अतीतः= अतिक्रान्तः । राक्षसस्य=रावणस्य नगरस्य=पुरस्य (ष० तत्पु०) श्री लक्ष्मीः समृद्धिरित्यर्थः विपत्स्यते=विनङ्क्ष्यति ।

(यह) कहीं फेन उगल रहा है और कहीं जल-मछलियों से भरा हुआ है, कहीं शंख बिखरे पड़े हैं और कहीं यह काले मेघ की तरह है, कहीं तरंगों की पंक्ति चल रही है और कहीं यह नाकुओं से भयानक बना हुआ है, कहीं भीषण भँवरों वाला और कहीं शान्त जल वाला बना हुआ है ।। १७ ।।

भगवान् (वरुण) की कृपा से सागर पार हो गये हैं ।

हनूमान्—महाराज ! यह है लङ्का यह ।

राम:—(चिरं विलोक्य) अहो राक्षसनगरस्य श्रीरचिराद् विपत्स्यते।
मम शरवरवातपातभग्ना कपिवरसैन्यतरङ्गताडितान्ता।
उदधिजलगतेव नौर्विपन्ना निपतति रावणकर्णधारदोषात् ॥ १८ ॥
सुग्रीव ! अस्मिन् सुवेलपर्वते क्रियतां सेनानिवेशः। (उपविशति।)

ममेति—अन्वयः—मम शरवर० कपिवर० उदधि-जल-गता (लङ्कापुर्याः श्रीः रावण० विपन्ना उदधिजलगता नौः इव निपतति।

मम शरवर०—शरेषु=बाणेषु वराः=श्रेष्ठाः (ष० तत्पु०) एव वातः= वायु०: (कर्मधा०) तस्य पातेन=आक्रमणेन भग्ना = भिन्ना (तृ० तत्पु०) (मेरे उत्तम बाण-रूपी तूफान के झपट् से टूटी) कपि०—कपीनाम्=वानराणाम् वराणि = श्रेष्ठानि (ष० तत्पु०) सैन्यानि=सेनाः (कर्मधा०) एव तरङ्गाः= वीचयः (कर्मधा०) तैः ताडिताः=आहताः (तृ० तत्पु०) अन्ताः=प्रान्त-मागाः (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री) (वानरों की प्रबल सेना-रूपी तरंगों द्वारा आहत प्रान्त भागों वाली) उदधि०—उदधेः=सागरस्य जले=सलिले (ष० तत्पु०) गता=स्थिता (स० तत्पु०) श्रीः श्रीसम्पन्ना लङ्केत्यर्थः रावणः एव कर्णधारः=नाविकः (कर्मधा०) तस्य दोषात्=अपराधाद् (ष० तत्पु०) विपन्ना = नष्टा उदधिजलगता = सागरजलस्थिता नौः=नौका इव पतति= मज्जतीत्यर्थः। अत्र शरवरेषु वातत्वारोपस्य, सैन्येषु तरङ्गत्वारोपस्य, रावणे च कर्णधारत्वारोपस्य परस्परम् अङ्गाङ्गिभावात् साङ्गरूपकम्, तस्य नौः इवेत्युपमया सङ्करः। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ १८ ॥

व्याकरण—मम शरवर०—यहाँ 'मम' का 'शरवर' के साथ सम्बन्ध होने से 'शरवर' का अन्य शब्दों से समास कर देने से असमर्थ समास है जो पाणिनि-

---

राम—(देर तक देखकर) दुःख की बात है कि राक्षस (रावण) के नगर की श्री (शोभा-समृद्धि) शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगी।

मेरे उत्तम बाण-रूपी तूफान के थपेड़ों से टूटी, वानरों की प्रबल सेनाओं-रूपी तरंगों द्वारा प्रान्त भागों में आघात खाये, रावण-रूपी कर्णधार की गलती के कारण विनष्ट हुई, सागर के जल-मध्य-स्थित नौका जैसी सागर के जल-मध्य-स्थित राक्षस-नगर की श्री (श्री-समृद्ध लंका) डूब रही है ॥ १८ ॥

सुग्रीव ! इस त्रिकूटा चल पर सेना का खेमा जमाओ (बैठ जाते हैं)।

सुग्रीवः—यदाज्ञापयति देवः। नील ! एवं क्रियताम्।

(प्रविश्य)

नीलः—यदाज्ञापयति महाराजः। (निष्क्रम्य, प्रविश्य) जयतु देवः। क्रमान्निवेश्यमानासु सेनासु वृन्दपरिग्रहेषु परीक्ष्यमाणेषु पुस्तकप्रामाण्यात् कुतश्चिदप्यविज्ञायमानौ द्वौ वनौकसौ गृहीतौ। वयं न जानीमः कर्तव्यम्। देवस्तस्मात् प्रमाणम्।

रामः—शीघ्रं प्रवेशयत्वेतौ।

व्याकरण के विरुद्ध है। पातः=√पत्+घञ्। मग्न=√मज्ज+क्त। सैन्यम्=सेना एवेति सेना+ष्यञ् स्वार्थे। ताडित=√ताड्+क्त। उदधिः=उदकं धीयते अत्रेति उदक+√धा+किः, उदकस्य उदादेशश्च। कर्णधारः=कर्णम्=अरित्रम् धारयतीति कर्ण+√धृ+णिच्+अण् (कर्मण्यण् उपपद-तत्पु०) विपन्न=वि+√पद्+क्त। तस्य नः।

टिप्पणी—नौरिव—भास ने यहाँ परवर्ती अलंकृत शैली के कवियों की तरह बड़ा अच्छा प्रतीक-विधान किया है। उसने श्री-समृद्धि-सम्पन्न लंका की तुलना उस नौका में की है, जो समुद्र में तूफान की लपेट में आई हुई है, भीषण तरंगों की थपेड़े खा रही है और प्रमादी नाविक द्वारा चलाई जा रही है। यही हाल लङ्का का भी है। इसका कर्णधार रावण विवेक खो बैठा है, वह कामान्ध हो गया है। राम के बाण भीषण तूफान और वानर-सेना विकट तरङ्गों के रूप में आकर उसे तहस-नहस कर देंगे।

सुग्रीव—जैसी महाराज की आज्ञा। नील ! ऐसा ही करो। (प्रवेश करके) जैसी महाराज की आज्ञा। (जाकर और फिर आकर) जय जय महाराज ! यथाक्रम सेनाओं के टिकाये जाने पर, (सेनानियों द्वारा अपने-अपने) सैनिक दलों के ग्रहण की जाँच-पड़ताल की जाने पर किसी भी पुस्तक (पंजिका रजिस्टर) के प्रमाण से पहचान में न आने वाले दो वानर गिरफ्तार कर लिये गये हैं। समझ में नहीं आ रहा है कि उनका क्या किया जाय ! जैसी महाराज आज्ञा करें।

राम—उन्हें शीघ्र पेश करो।

नील: --यदाज्ञापयति देव: । (निष्क्रान्त: ।)

(तत: प्रविशति नीलो वानरैर्गृह्यमाणो वानररूपधारिणो सम्पुटिकाहस्तौ शुकसारणौ च ।)

वानरा: – अङ्घो भणथ । के तुम्हे ? भणथ । [अङ्घो भणतं को युवां भणतम् ।]

उभौ – भट्टा ! अम्हे अय्यकुमुदस्स सेवआ । [भत: ! आवामार्यकुमुदस्य सेवकौ ।]

वानरा: भट्टा ! अय्यकुमुदस्स सेवअत्ति अत्ताणं अवदिसन्ति । (भर्त: ! आर्यकुमुदस्य सेवकावित्यात्मानमपदिशत: ।)

टीका--सुवेल:=एतन्नामक: पर्वत: त्रिकूटाचल इति यावत् तस्मिन् । सेनाया:=सैन्यस्य निवेश:=स्थापनम् (ष० तत्पु०) क्रमात्=क्रमश: व्यस्थित-रूपेणेत्यर्थ: निवेश्यमानसु=नि + √विश् + णिच्+शानच् (कर्मणि) स्थाप्य-मानासु सेनासु=सैन्येषु, वृन्दानां=सैनिकदलानाम् परिग्रहेषु=ग्रहणेषु परीक्ष्य-माणेषु = अवेक्ष्यमाणेषु कुतश्चित् = कस्मादपि पुस्तकानाम् = पंजिकानाम् गणनापत्राणामिति यावत् प्रामाण्यात्=प्रमाणात् आधारादिति यावत् (ष० तत्पु०) अविज्ञायमानौ = अप्रत्यभिज्ञायमानौ द्वौ वनौकसौ = वानरौ गृहीतौ=धृतौ स्त: इति शेष: ।

टिप्पणी--नील: निष्क्रम्य, प्रविश्य--भास ने यहाँ भी फिर स्टेज डाइ-रेक्शन की गलती कर रखी है । सेनापति नल के चले जाने और फिर वापस आने में पर्याप्त समय लगा होगा क्योंकि सेना-सन्निवेश तत्काल हो नहीं हो सकता यह कुछ समय मांगता है । इस बीच राम और सुग्रीव स्टेज पर निष्क्रिय ही बैठे रहे । भास को उनसे कुछ वार्तालाप करवाना अथवा किसी अन्य पात्र का प्रवेश

नील—जैसी महाराज की आज्ञा ।

(तदनन्तर नील और वानरों द्वारा पकड़े, वानर का रूप बनाये, डोला हाथ में लिये शुक्र और सारण प्रवेश करते हैं) ।

वानर– अरे बोलो, तुम दोनों कौन हो ? बोलो ।

दोनों—स्वामी ! हम आदरणीय कुमुद के सेवक हैं ।

वानर:—स्वामी ! 'आदरणीय कुमुद के सेवक हैं' यह (कहकर) ये अपना ढोंग रच रहे हैं ।

विभीषण:--(सावधानं शुकसारणौ विलोक्य)

स्वसैनिकौ न चाप्येतौ न चाप्येतौ वनौकसौ।
प्रेषितौ रावणेनैतौ राक्षसौ शुकसारणौ ॥ १९ ॥

करवा कर खाली समय काम में लाना चाहिए था। वृन्दपरिग्रहेषु--आजकल की तरह ही सारे सैनिक दल अपने-अपने पृथक् सेनानियों के अधीन हुआ करते थे। जब सेनानियों ने अपने-अपने सैनिक दलों को ले लिया तो उसकी पूरी जांच-पड़ताल हुई कि रजिस्टरों के अनुसार वह काम ठीक हुआ है या नहीं। जांच-पड़ताल पर दो वानर सेना में अधिक निकले, जिसका नाम किसी भी सैनिक रजिस्टर में नहीं लिखा हुआ था और न किसी सेनानी ने ही पहचाना कि वे उसके सैनिक दल के अन्तर्गत है। फलतः उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इससे सिद्ध होता है कि भास के काल में भी ऐसी ही सैनिक-व्यवस्था रही होगी।

टीका—वानर०—वानरस्य रूपम् [ष० तत्पु०] धारयतः इति तथोक्तौ (उपपदतत्पु०), सम्पुटिका=पेटिका हस्ते=करे ययोः तथाभूतौ (ब० व्री०) शुकश्च सारणश्च (द्वन्द्व)। अङ्गो इति सम्बोधने, भणतम्=√ भण्+लोट् मध्य० द्वि० कथयतम् आर्यः=आदरणीयः कुमुदः=एतन्नामा सुग्रीवस्य सेनापतिः तस्य (कर्मधा०) सेवकौ=भृत्यौ अपदिशतः=छलं कुरुतः छलपूर्वकं कथयत इत्यर्थः।

स्वेति—अन्वयः—सरलः।

एतौ=इमौ न च अपि स्वौ=स्वकीयौ सैनिकौ=भटौ स्तः इति शेषः न च अपि वनौकसौ=वानरौ स्तः। एतौ तु रावणेन प्रेपितौ=प्रहितौ शुक-सारणौ नाम राक्षसौ स्तः। अनुष्टुप् ॥ १६ ॥

टीका—विज्ञातौ=प्रत्यभिज्ञातौ ; राक्षसानाम्=असुराणां राजा=अधिपः रावण इत्यर्थः (ष० तत्पु०) तस्य विप्रतिपत्त्या=विपरीत-मत्या विपद्यमानम्=विपत्स्यमानम्, विनाशं, गमिष्यत् [यहां निकट भविष्य में वर्तमान काल कर रखा है] राक्षसानाम् कुलं=वंशम् दृष्टवा=अवलोक्य आस्पदम्=

विभीषण—(ध्यान से शुक और सारण को देखकर) ये दोनों न तो (हमारे) अपने सैनिक हैं, और न ये दोनों वानर हैं। ये दोनों रावण के भेजे शुक और सारण राक्षस हैं ॥ १९ ॥

उभौ—(आत्मगतम्) हन्त कुमारेण विज्ञातौ स्वः। (प्रकाशम्) आर्य। आवां खलु राक्षसराजस्य विप्रतिपत्त्या विपद्यमानं राक्षसकुलं दृष्ट्वास्पदमलभमानौ आर्यसंश्रयार्थं वानररूपेण सम्प्राप्तौ।

रामः—वयस्य ! विभीषण ! कथमिव भवान् मन्यते।

विभीषणः—देव !

एतौ हि राक्षसेन्द्रस्य सम्मतौ मन्त्रिणौ नृप !।
प्राणान्तिकेऽपि व्यसने लङ्केशं नैव मुञ्चतः॥ २०॥

तस्माद् यथार्हं दण्डमाज्ञापयतु देवः।

स्थानम् अलभमानौ=न प्राप्नुवन्तौ, आर्यस्य=भवतः संश्रयाय इति संश्रयार्थम् (चतुर्थ्यर्थे अर्थेन नित्यसमासः) शरणार्थम् सम्प्राप्तौ=आगतौ।

टीका एताविति—अन्वयः—सरलः = हे नृप ! महाराज ! राक्षसानाम्=असुराणाम् इन्द्रस्य=अधिपस्य रावणस्येत्यर्थः सम्मतौ=इष्टौ प्रियौ इत्यर्थः मन्त्रिणौ=अमात्यौ स्तः। प्राणानाम् = जीवनस्य अन्तः = समाप्तिः अस्मिन् अस्तीति (प्राण+अन्त+ ठन्, ठस्येकः) प्राणान्तिकः तस्मिन् प्राणघातके इति यावत् (प्राण लेने वाले) व्यसने=संकटे अपि लङ्केशम् = रावणम् न एव मुञ्चतः=त्यजतः तौ रावणस्य परमविश्वस्तौ प्रियौ च मन्त्रिणौ स्तः। तयोः कथने विश्वासो नैव करणीयः करणीयः इति भावः। अनुष्टुप्॥ २०॥

यथार्हम्=यथायोग्यम् दण्डम् आज्ञापयतु=आदिशतु।

दोनों—(अपने मन में) खेद है कि कुमार (विभीषण) ने हमें पहचान लिया है। (प्रकट में) आर्य ! सचमुच हम दोनों राक्षसराज की दुर्मति के कारण नष्ट हो रहे राक्षसकुल को देखकर (कहीं अन्य) स्थान न पाते हुए वानररूप में आपकी शरण हेतु आए हैं।

राम— मित्र विभीषण ! आप की सम्मति किस तरह है ?

विभीषण— महाराज !

हे राजन् ! ये दोनों निश्चय ही राक्षराज के माने हुए मंत्री हैं। ये प्राणान्त कर देने वाले संकट में भी लंकेश को नहीं छोड़ते॥ २०॥

इसलिए इन्हें यथायोग्य दण्ड देने की आज्ञा दीजिए महाराज !

रामः--विभीषण ! मा मैवम् ।

अनयोः शासनादेव न मे वृद्धिर्भविष्यति ।
क्षयो वा राक्षसेन्द्रस्य तस्मादेतौ विमोचय ॥ २१ ॥

लक्ष्मणः--यदि विमुञ्चेत्, सर्वस्कन्धावारं प्रविश्य परीक्ष्य पुनर्मोक्षमाज्ञापयत्वार्यः ।

राम—सम्यगभिहितं लक्ष्मणेन । नील ! एवं क्रियताम् ।

नीलः—यदाज्ञापयति देवः ।

अनयोरिति— अन्वयः सरलः ।

अनयोः=एतयोः राक्षसयोः शासनात्=दण्डात् एव न मे वृद्धिः=उत्कर्षः न वा राक्षसेन्द्रस्य=रावणस्य क्षयः=अपकर्षो भविष्यति । तस्मात्=अतः एतौ=राक्षसौ विमोचय=मुक्तौ कारय । अनुष्टुप् ॥ २२ ॥

यदि विमुञ्चेत् = आर्यं एनं मुक्तं कुर्यात् तर्हि सर्वश्चासौ स्कन्धावारः= शिविरम् सेनासन्निवेशमिति यावत् (कर्मधा०) प्रविश्य=गत्वा परीक्ष्य=निरीक्ष्य, अस्माकं सेनां दर्शयित्वेत्यर्थः पुनः मोक्षम् एतयोः विमुक्तिम् आज्ञापयतु=आदिशतु आर्यं । अस्माकं सैन्य-शक्तितः तौ रावणं परिचितं करिष्यतः इति भावः ।

व्याकरण—'सर्वस्कन्धावारं प्रविश्य, परीक्ष्य'—पाणिनिव्याकरण के अनुसार पूर्वकालिकी क्रिया से क्त्वा प्रत्यय तभी होता है जब उसकी और प्रधान क्रिया की एककर्तृकता हो अर्थात् दोनों क्रियाओं का कर्ता एक हो ('समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' पा० ३ । ४ । २१), पर यहाँ 'आज्ञापयतु' का कर्ता आर्य (राम) हैं, जबकि 'प्रविश्य, परीक्ष्य' का कर्त्ता दो राक्षस हैं । क्त्वान्त क्रिया को राम की तरफ लगाकर यह अर्थ होगा कि राम शिविर में जायें और सेना

राम—नहीं, ऐसा नहीं ।

इन दोनो को दण्ड देने से न मेरी वृद्धि होगी, और न राक्षसराज की हानि अतः इन्हें छोड़ दिया जाय ।

लक्ष्मण—यदि छोड़ना है, तो इन्हें सारे खेमें में ले जाकर और (सारी सेना को) दिखाकर तब आप इन्हें छोड़ने की आज्ञा दें ।

राम—लक्ष्मण ने ठीक कहा है । नील ! ऐसा ही करो ।

नील—जैसी महाराज की आज्ञा ।

रामः—अथवा एहि तावत् ।

उभौ—इमौ स्वः ।

रामः—अभिधीयतां मद्वचनात् स राक्षसेन्द्रः ।

मम दारापहारेण स्वयङ्ग्राहितविग्रहः ।
आगतोऽहं न पश्यामि द्रष्टुकामो रणातिथिः ॥ २२ ॥

अथवा उन दो राक्षसों का परीक्षण करें तब उन राक्षसों को छोड़ने की आज्ञा दें, किन्तु यहाँ अभीष्ट अर्थ यह है कि राक्षसों को शिविर में ले जाया जाय और उन्हें सारी सेना दिखा दी जाय, तब छोड़ा जाय जिससे कि वे रावण को राम की सैनिक शक्ति से परिचित करा सकें । इस तरह 'प्रविश्य' और 'परीक्ष्य' दोनों को णिजन्त बनाकर ही उनकी 'राम' के साथ समानकर्तृकता होती है, अन्यथा नहीं ।

टीका—अभिधीयताम्=अभि+√धा+लोट् (कर्मवाच्य) कथ्यताम्, मम वचनं तस्मात् (ष० तत्पु०) मम प्रतिनिधित्वेनेत्यर्थः, राक्षसेन्द्रः=रावणः ।

ममेति—अन्वयः—मम दारा० स्वयंग्राहित० आगतः रणातिथिः (अहम्) द्रष्टुकामः (त्वाम् अद्य यावत्) न पश्यामि ।

मम दाराणाम्=भार्यायाः सीतायाः इत्यर्थः अपहारेण=अपहरणेन स्वयम्=आत्मना एव ग्राहितः=ग्रहणं कारितः, स्वीकारितः इति यावत् विग्रहः=युद्धम् (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (जिसे तुमने स्वयं युद्ध करने को बाध्य किया है) आगतः=आयातः रणाय=युद्धाय अतिथिः=प्राघुणिकः (च० तत्पु०) (अहम्) द्रष्टुम्=(त्वाम्) अवलोकयितुं कामः=अभिलाषः यस्य सः (ब० व्री०) ('तुम् काममनसोरपि' इति तुमुन्-प्रत्ययस्य मकारस्य लोपः) सन् न पश्यामि=अवलोकयामि । त्वया अहं युद्धार्थम् आमन्त्रितः अहञ्च समागतः किन्तु योद्धुमागतं त्वां न पश्यामिति भावः । अनुष्टुप् ॥ २२ ॥

राम—अथवा इधर तो आओ ।

दोनों—ये हम (आ गये) हैं ।

राम—मेरी ओर से उस राक्षसराज को कहना—"मेरी पत्नी हर ले जाने के कारण स्वयं तुम्हारे द्वारा युद्ध ग्रहण करने के लिए प्रेरित हो आया हुआ युद्धार्थ अतिथि मैं (तुम्हें) देखना चाहता हुआ नहीं देख पा रहा हूँ" ॥ २२ ॥

इति ।

उभौ — यदाज्ञापयति देवः (निष्क्रान्तौ ।)

रामः—विभीषण ! वयमपि तावदानन्तरीयं बलं परीक्षिष्यामहे ।

विभीषणः—यदाज्ञापयति देवः ।

राम।—(परिक्रम्य विलोक्य) अये अस्तमितो भगवान् दिवाकरः । सम्प्रति हि,

---

व्याकरण—अपहारः=अप्+√हृ+घञ् । ग्राहित=√ग्रह् + णिच्+क्त । आगत=आ+√गम्+क्त । अतिथिः=न तिथिः=नियत समयः यस्य अर्थात् अकस्मात् आयातः पुरुषः ।

टीका—आनन्तरीयम्= अन्तरम्=व्यवधानम्, न अन्तरम् इत्यनन्तरम् (नञ् तत्पु०) अव्यवधानम् सामीप्यमित्यर्थः तस्य इदम् इति आनन्तरीयम् (अनन्तर+ छ) समीपस्थितम् बलं=सेनाम् परीक्षिष्यामहे=निरीक्षिष्यामहे । अस्तम् इतः =गतः दिवाकरः=सूर्यः ।

अस्तेति—अन्वयः— सरलः ।

अस्त०—अस्तस्य=अस्तंगमनस्य अद्रिः=पर्वतः अस्ताचलः इत्यर्थः (ष० तत्पु०) अथवा अस्ताभिन्नः अद्रिः (कर्मधा०) (अस्तस्तु चरमक्ष्माभृत् इत्यमरः) अस्ताद्रेः मस्तकम् = शिरः शिखरमिति यावत् गतः=प्राप्तः (द्वि० तत्पु०) (अस्ताचल के शिखर पर गया हुआ प्रतिसंहृताः=संकोचिताः अंशवः=किरणा (कर्मधा०) येन सः (ब० व्री०) (जिसने किरणें सिकोड़ ली हैं) सन्ध्या०— सन्ध्यया=सन्ध्याकालेन अनुरञ्जितम्=रक्तीकृतम् (तृ० तत्पु०) वपुः=शरीरम् (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (सन्ध्याकाल द्वारा लाल बना दिए गए शरीर वाला) सूर्यः रक्तो०—रक्तम्=रक्तवर्णम् उज्ज्वलम्=भासुरं च (कर्मधा०)

दोनों—जैसी महाराज की आज्ञा ।

राम—विभीषण ! हम भी इस बीच समीप में स्थित सेना का निरीक्षण करेंगे ।

विभीषण—जैसी महाराज की आज्ञा ।

राम—(घूमकर, देखकर) भगवान् सूर्य अस्त हो गये हैं । इस समय सचमुच—

अस्ताद्रिमस्तकगतः प्रतिसंहृतांशुः
सन्ध्यानुरञ्जिततवपुः प्रतिभाति सूर्यः ।
रक्तोज्ज्वलांशुकवृते द्विरदस्य कुम्भे
जाम्बूनदेन रचितः पुलको यथैव ॥ २३ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

चतुर्थोऽङ्कः

य त् अंशुकम्=कौशेयवसनम् (कर्मधा०) तेन वृते=वेष्टिते (तृ० तत्पु०) (लाल चमकीले रेशमी कपड़े से ढके हुए) द्विरदस्य= द्वौ रदौ=(बहिर्निर्गतौ) दन्तौ यस्य सः (ब० व्री०) तस्य हस्तिन इत्यर्थः कुम्भे=शिरसो भागे ('कुम्भौ घटेभमूर्धांशौ' इत्यमरः) जाम्बूनदेन=सुवर्णेन रचितः=निर्मितः पुलकः=गोलाकारः आभरण-विशेषः यथा=इव एव प्रतिभाति=शोभते । अत्र सूर्यस्य पुलकेन साम्य-प्रतिपादनात् उपमा । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २३ ॥

व्याकरण—गत=√गम् + क्त । प्रतिसंहृत–प्रति + सम्+√हृ+ क्त । अनुरञ्जित=अनु+√रञ्ज्+णिच् +क्त । वृत्त=√वृ+क्त । रचित=√रच्+क्त । प्रतिभाति=प्रति+√भा+लट् ।

चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः

अस्ताचल के शिखर पर स्थित, किरणों को समेटे हुए, सन्ध्याकाल द्वारा लाल बनाये शरीर वाले भगवान् सूर्य इस तरह शोभित हो रहे हैं जैसे हाथी के लाल चमकीले रेशमी कपड़े से ढके मस्तक-भाग पर सोने का बना पुलक-भूषण (शोभा पाता है) ॥ २३ ॥

(सब के सब चले गए ।)

चतुर्थ अङ्क समाप्त

(ततः प्रविशति राक्षसकाञ्चुकीयः)

राक्षसकाञ्चुकीयः—क इह भोः ! प्रवालतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ।

(प्रविश्यान्यो राक्षसः)

राक्षसः—आर्य ! अयमस्मि । किं क्रियताम् ।

काञ्चुकीयः—गच्छ, महाराजस्य शासनाद् विद्युज्जिह्वस्तावदाहूयताम् ।

राक्षसः—आर्य ! तथा ! (निष्क्रान्तः)

काञ्चुकीय—अहो नु खलु विपद्यमानाभ्युदये राक्षसकुले विपन्नसर्व-

---

टीका—प्रवालस्य=विद्रुमस्य तोरणद्वारम्=बहिर्द्वारम् कः अशून्यं=न शून्यम्=रहितम् (नञ्-तत्पु०) कुरुते=विधत्ते अर्थात् कः तोरणद्वाररक्षाकर्मणि स्थितोऽस्ति । शासनात् = आदेशात्, विद्युज्जिह्वः = एतन्नामा राक्षसविशेषः, आहूयताम्=आकार्यताम् । विपद्यमानः=विनश्यन् अभ्युदयः=समृद्धिः (कर्मधा०) यस्य तस्मिन् (ब० व्री०) राक्षसानां कुले=वंशे (ष० तत्पु०) विपन्नानि= (वि+√पद्+क्त) नष्टानि सर्वाणि=निखिलानि साधनानि=उपायाः (कर्मधा०) यस्य तस्य (ब० व्री०) निहताः=मारिताः वीराः=शूराः पुरुषाः (कर्मधा०) यस्य तस्य (ब० व्री०) स्वयं च=आत्मना च प्राणानां=जीवनस्य संशयम्= संदेहम् संकटमित्यर्थः (ष० तत्पु०) प्राप्तस्य = अधिगतस्य महाराजस्य =

पञ्चम अङ्क

(तदनन्तर राक्षस-काञ्चुकीय प्रवेश करता है) ।

राक्षस काञ्चुकीय—यहाँ मूँगे के तोरण-द्वार पर कौन (पहरा दे रहा) है ?

(प्रवेश करके दूसरा राक्षस) ।

राक्षस—आर्य ! यह मैं हूँ । क्या करूँ ?

काञ्चुकीय—जा, महाराज की आज्ञा से विद्युज्जिह्व को तो बुला ला ।

राक्षस—अच्छा आर्य ! (चला गया) ।

काञ्चुकीय—दुःख की बात है कि राक्षस-वंश के वैभव के नष्ट होते हुए

साधनस्य निहतवीरपुरुषस्य स्वयं च प्राणसंशयं प्राप्तस्यदानीमपि प्रसन्नत्वं नोपगच्छति महाराजस्य बुद्धिः । को हि नाम,

चलत्तरङ्गाहतभीमवेलमुदीर्णनक्राकुलनीलनीरम् ।
समुद्रमाक्रान्तमवेक्ष्य तस्मै दारप्रदानान्न करोति शान्तिम् ॥ १ ॥

अपि, च

देवस्य रावणस्येति यावत् बुद्धिः = मतिः = इदानीम् (इदम्+दानीम्) अपि= सम्प्रति अपि प्रसन्नत्वम्=प्रसन्नस्य भावम् निर्मलतामिति यावत् न उपगच्छति= प्राप्नोति । स दुर्मतिं न त्यजतीति भावः ।

चलदिति—अन्वयः—सरलः ।

चलत०—चलन्तः = उद्गच्छन्तः ये तरङ्गाः = वीचयः (कर्मधा०) तैः आहता=प्रताडिता भीमा=भीषण वेला=तीरम् (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) (जिसके भीषण तटों पर उछलती हुई तरङ्गें आघात कर रही हैं), उदीर्ण०—उदीर्णाः = उपरि आयाता ये नक्राः = कुम्भीराः (कर्मधा०) तैः आकुलम्=व्याप्तम् (तृ० तत्पु०) नीलम्=नीलवर्णम् नीरम्=जलम् (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) (जिसका नीला जल ऊपर उठे हुए नाकुओं से भरा हुआ है) समुद्रम्=सागरम् आक्रान्तम्=तीर्णम् अवेक्ष्य=दृष्ट्वा तस्मै=रामाय दाराणाम् = भार्यायाः प्रदानात् अर्पणात् शान्तिम् = सन्धिम् न करोति= विधत्ते । अत्र शान्ति-कारणप्रतिपादनात् काव्यलिङ्गम् । उपजातिः वृत्तम् ॥ १ ॥

व्याकरण—चलत्=√चल्+शतृ । आहत = आ+√हन्+क्त । उदीर्ण= उत्+√ईर्+क्तः, तस्य न । आक्रान्त=आ+√क्रम्+क्त । अवेक्ष्य=अव+√ईक्ष्+ +ल्यप् । प्रदानम्=प्र+√दा+ल्युट् । शान्तिः=√शम्+क्तिन् ।

(अपने) सभी साधनों को खोये वीर पुरुषों से हाथ धोकर बैठे और स्वयं प्राणों के सन्देह में पड़े हुए महाराज रावण की मति साफ नहीं हो रही है । कौन है जो—

उठती हुई तरंगों के थपेड़े खाये, भीषण तीर वाले, ऊपर आये हुए नाकुओं से भरे हुए नील जल वाले समुद्र को पार किए हुए (व्यक्ति) को देखकर उसे (उसको) पत्नी दे देने से सन्धि नहीं करता ? ॥ १ ॥

और भी—

प्रहस्तप्रमुखा वीराः कुम्भकर्णपुरस्सराः ।
निहता राघवेणाद्य शक्रजिच्चापि निर्गतः ॥ २ ॥

एवमपि गते,

मदनवशगतो महानयार्थं
सचिववचोऽप्यनवेक्ष्य वीरमानी ।

टीका—प्रहस्तेति—अन्वयः—प्रहस्तप्रमुखा कुम्भ० वीराः राघवेण निहताः अद्य शक्रजित् च अपि निर्गतः ।

प्रहस्तः=एतन्नामकः रावणस्य सेनापतिविशेषः प्रमुखः=मुख्यः येषु ते (ब० व्री०) कुम्भ०—कुम्भकर्णः = रावणस्य भ्राता पुरस्सरः = अग्रणीः येषां ते (ब० व्री०) वीराः=शूराः राघवेण=रामेण निहताः=मारिताः । अद्य=अस्मिन् दिने शक्रजित्=रावणपुत्रः मेघनादः च अपि निर्गतः = युद्धाय चलित इत्यर्थः ।

व्याकरण—प्रमुख=प्र=प्रगतः मुखे=अग्रे इति । पुरस्सरः=पुरः=अग्रे सरति= गच्छतीति पुरस्+√सृ+अच् । निहत=नि+√हन्+क्त । शक्रजित् = शक्रम्= इन्द्रम् जयतीति शक्र+√जि+क्विप् । निर्गत=निर्+√गम्+क्त ।

टीका—मदनेति—अन्वयः—मदन० वीरमानी सचिव-वचः अपि अनवेक्ष्य योद्धुकामः महानयार्थम् तस्य रघुकुलवृषभस्य देवीं जनकसुतां न ददाति ।

मदनस्य=कामस्य वशे=अधीनतायाम् (ष० तत्पु०) गतः प्राप्तः (स० तत्पु०) (काम के वश में हुआ) वीर-मानी=आत्मानं वीरं मन्यमानः (अपने को वीर समझता हुआ) सचिवानाम्=अमात्यानाम् वचः=वचनम् (ष० तत्पु०) अपि (मन्त्रियों की बात को भी) अनवेक्ष्य=अगणयित्वा (कुछ न समझ कर) योद्धुम्=युद्धं कर्तुम् कामः=अभिलाषः यस्य सः (ब० व्री०) सन् अयः= शुभावहो विधिः ('अयः शुभावहो विधिः' इत्यमरः) सौभाग्यमित्यर्थः न अयः इत्यनयः (नञ् तत्पु०) दौर्भाग्यम् तस्मै इति (चतुर्थ्यर्थे अर्थेन नित्य-समासः)

जिन वीरों का मुखिया प्रहस्त और अग्रणी कुम्भकर्ण था, उन्हें राम ने मार डाला है और आज इन्द्रजित् भी (युद्ध हेतु) चला गया है ॥ २ ॥

ऐसा होने पर भी—

काम के अधीन हुआ, अपने को वीर मानने वाला (रावण) मन्त्रियों की

रघुकुलवृषभस्य तस्य देवीं
जनकसुतां न ददाति योद्धुकामः ॥ ३ ॥

(प्रविश्य)

विद्युज्जिह्वः—अपि सुखमार्यस्य ।

काञ्चुकीयः—विद्युज्जिह्वः ! गच्छ, महाराजवचनाद् रामलक्ष्मणयोः शिरःप्रतिकृतिरानीयताम् ।

विद्युज्जिह्वः—यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः ।)

स्वमहादौर्भाग्याय मृत्यवे इति यावत् (अपने बड़े भारी दौर्भाग्य के लिए) तस्य=प्रसिद्धस्य रघूणाम्=रघुवंशीयानां राज्ञाम् कुलम्=वंशः (ष० तत्पु०) तस्मिन् वृषभस्य=श्रेष्ठस्य ('स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः । सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः' इत्यमरः) (ष० तत्पु०) देवीम्=महीषीम् जनकस्य सुताम्=पुत्रीम् सीतामित्यर्थः (ष० तत्पु०) न ददाति=न प्रत्यर्पयति । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ३ ॥

व्याकरण—वीरमानी=वीरम् आत्मानं मन्यते इति वीर+√मन्+णिन् । वचस्=वचनम् इति √ वच्+असुन् । अनवेक्ष्य=न+अव+√ईक्ष्+ल्यप् । योद्धुकामः='तुम् काम-मनसोरपि' इति तुमुन्-प्रत्ययस्थमकारस्य लोपः ।

टीका—शिरसोः=मूर्ध्नोः प्रतिकृतिः=प्रतिमा प्रतिरूपमिति यावत् आनीयताम्=आह्रियताम् । प्रत्यन्तरीभवामि=प्रत्यन्तरः=समीपस्थः अप्रत्यन्तरः प्रत्यन्तरः सम्पद्यमानो भविष्यामीति प्रत्यन्तर+√भू+च्वि+लृट् उत्त० ।

टिप्पणी—विष्कम्भक—इस शब्द की परिभाषा के लिए द्वितीय और तृतीय अंकों के प्रारम्भ के विष्कम्भक देखिए । यहाँ (शुद्ध) विष्कम्भक है, क्योंकि राक्षस काञ्चुकीय, राक्षस और विद्युज्जिह्व तीनों उच्चवर्गीय पात्र हैं

बात की अवहेलना करके युद्ध करना चाहता हुआ उन रघुकुल के श्रेष्ठ (पुरुष) की महिषी जनकनन्दनी को नहीं दे रहा है ॥ ३ ॥

(प्रवेश करके) विद्युज्जिह्व—आप सानन्द तो हैं ?

काञ्चुकीय—विद्युज्जिह्व ! जाओ, महाराज के कहने से राम और लक्ष्मण के शिरों की प्रतिकृति (मूर्ति) ले आओ ।

विद्युज्जिह्व—जैसी महाराज की आज्ञा (चला गया) ।

काञ्चुकीयः—यावदहमपि महाराजस्य प्रत्यन्तरीभविष्यामि ।

(निष्क्रान्तः ।)

विष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति राक्षसीगणपरिवृता सीता)

सीता—किण्णु हु अय्यउत्तस्स आगमणेण पह्ळादिअस्स हिअअस्स अज्ज आवेओ विअ संवुत्तो। अणिट्ठाणि णिमित्ताणि अ दिस्सन्ति। एवं वि दाणि (अच्चाहिअं ?) हिअअस्स महन्तो अब्भुदओ वड्ढइ। सव्वहा इस्सरा सन्ति करन्तु। [किन्नु खल्वार्यपुत्रस्यागमनेन प्रह्लादितस्य हृदयस्या-

---

और वे सब संस्कृत बोलते हैं। इनके परस्पर संलाप से इस बीच हुए कुम्भकर्ण, आदि के वध की सूचना और साथ ही भविष्य में फिर रावण द्वारा सीता के प्रणय-निवेदन और अन्त में उसके 'महानय' (मृत्यु) की सूचना भी मिल जाती है। इस तरह 'वृत्त' और 'वर्तिष्यमाण' घटनाओं का संकेत दर्शकों को देकर ये तीनों पात्र मञ्च से चले जाते हैं और उसके बाद संकेतित घटनायें प्रारम्भ हो जाती हैं।

टीका—आर्यपुत्रस्य = प्राणनाथस्य (लङ्कायां मद्विमोचनाय) आगमनेन प्रह्लादितस्य=प्रहृष्टस्य हृदयस्य=मनसः अद्य आवेगः=आकुलता इव संवृत्तः= जातः। अनिष्टानि=न इष्टानि=अभिलषितानि (नञ् तत्पु०) अशुभानीत्यर्थः निमित्तानि=लक्षणानि शकुनानीति यावत् दृश्यन्ते=अवलोक्यन्ते एवम् अपि= एवं सत्यपि इदानीम्=साम्प्रतम् हृदयस्य महान्=विपुलः अभ्युदयः=प्रसन्न- तेत्यर्थः वर्धते=वृद्धिं गच्छति। सर्वथा= (सर्व+थाल् प्रकारवचने) सर्व- प्रकारैः ईश्वराः=देवताः शान्तिम्=उपद्रवोपशमम् कुर्वन्तु=अनुतिष्ठन्तु।

काञ्चुकीय—इस बीच में भी महाराज का समीपवर्ती होऊँगा।

(चला गया)

विष्कम्भक

(तदनन्तर राक्षसियों के दल से घिरी सीता प्रवेश करती है)

सीता—क्या बात होगी जो प्राणनाथ के आ जाने से प्रसन्न हृदय को (आज) बेचैनी-सी हो रही है। अशुभ लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इस तरह होने

शावेग इव संवृत्तः। अनिष्टानि निमित्तानि च दृश्यन्ते। एवमपीदानीं हृदयस्य महानभ्युदयो वर्धते। सर्वथेश्वराः शान्तिं कुर्वन्तु।]

(ततः प्रविशति रावणः।)

रावणः—मा तावद्,

एषा विहाय भवनं मम सम्प्रयाता
नारी नवामलजलोद्भवलग्नहस्ता।
लङ्का यदा हि समरे वशमागता मे
पौलस्त्यमाशु परिजित्य तदा गृहीता ॥ ४ ॥

एषेति—अन्वयः—समरे पौलस्त्यं आशु परिजित्य यदा हि एषा नवामल० मे वशम् आगता, तदा (मया) गृहीता (किन्तु इदानीम् एषा) मम भवनं विहाय सम्प्रयाता।

समरे=युद्धे पौलस्त्यं कुबेरम् आशु=शीघ्रम् परिजित्य=पराभूय यदा हि एषा नव०=नवम्=प्रत्यग्रम् अमलम्=निर्मलम् च यत् जलोद्भवम्=जलजं कमलमित्यर्थः (कर्मधा०) तस्मिन् लग्नः=व्यासक्तः (स० तत्पु०) हस्तः=करः (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) लङ्का एव नारी=स्त्री मे वशम्=अधिकारे आगता, तदा (मया) गृहीता=स्वीकृता आत्मीयीकृता इति यावत् (किन्तु इदानीम् एषा) मम भवनम् गृहं विहाय=परित्यज्य सम्प्रयाता=गता। गच्छतीत्यर्थः। अत्र लङ्कायाम् नारीत्वारोपात् रूपकम्। वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ४ ॥

व्याकरण—पौलस्त्यम्=पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यं पुमान् इति पुलस्त्य+अण्। हम पीछे बता आए हैं कि पौलस्त्य कुबेर को भी कहते हैं जो रावण का सौतेला

पर भी इस समय हृदय का अभ्युदय बढ़ रहा है। सब तरह देवता लोग शान्ति करें।

(तदनन्तर रावण प्रवेश करता है)

रावण - तो नहीं—

युद्ध में कुबेर को शीघ्र ही पराजित करके जब नया निर्मल कमल हाथ में पकड़े यह लङ्का-रूपी नारी वश में आ गई तो मैंने इसे अपना लिया। (किन्तु अब यह) मेरा घर छोड़कर चली गई ॥ ४ ॥

भवति ! तिष्ठ तिष्ठ । न खलु न खलु गन्तव्यम् । किं ब्रवीषि—उत्सृज्य त्वां राममुपगच्छामीति । आः ! अपध्वंस ।

बलादेव गृहीतासि तदा वैश्रवणालये ।
बलादेव ग्रहीष्ये त्वां हत्वा राघवमाहवे ॥ ५ ॥

किमनया । यावदहमपि सीतां विलोभयिष्ये । (मदनावेशं निरूप्य) अहो नु खल्वतुलबलता कुसुमधन्वनः । कुतः,

---

भाई था । कुबेर ही पहले लंका में राज्य किया करता था । रावण ने युद्ध करके उससे उसकी नगरी छीन ली । पुष्पक विमान भी उसका रावण ने छीन लिया था । तब से ही वह हिमालय जाकर अलकापुरी में रहने लगा । युद्धम्=√युध्+क्त भावे । परिजित्य=परि+जि+ल्यप् । गृहीत=√ग्रह्+क्त । इदानीम्=इदम्+दानीम् । विहाय=वि+√हा+ल्यप् । सम्प्रयाता=सम्+प्र+√या+क्त ।

टीका—ब्रवीषि=कथयसि, विसृज्य=त्यक्त्वा, आः इति क्रोधे, अपध्वंस=विनाशं गच्छ (जा काला मुंह कर) ।

बलादिति—अन्वयः—तदा वैश्रवणालये बलात् एव गृहीता असि, (इदानीम्) आहवे राघवम् हत्वा बलात् एव त्वाम् ग्रहीष्ये ।

तदा=तस्मिन् समये वैश्रवणस्य=कुबेरस्य आलये=गृहे बलात्=बलपूर्वकम् एव गृहीता=आत्मायत्तीकृता असि=विहिता असि । आहवे=समरे राघवम्=रामम् हत्वा=व्यापाद्य बलात् एवं ग्रहीष्ये=आत्माधीनां करिष्ये । अनुष्टुप् ॥ ५ ॥

व्याकरण— वैश्रवणः=विश्रवणस्य अपत्यं पुमान् इति विश्रवण+अण् । गृहीत=√ग्रह्+क्त । आहवः=आहूयन्ते=युद्धार्थम् आकार्यन्ते वीरा यत्रेति+आ+√ह्वे+अप् अधिकरणे । हत्वा=√हन्+क्त्वा । ग्रहीष्ये=√ग्रह्+लृट् उत्त० (आत्मने०) ।

ओ नारी ! ठहर, ठहर, न जा, न जा । क्या यह कह रही है कि मैं तुझे छोड़कर राम के पास जा रही हूँ । ओह ! जा काला मुँह कर ।

तब कुबेर के घर में बल-पूर्वक ही मैंने तुझे लिया था । युद्ध में राम को मारकर बल-पूर्वक ही लूँगा ॥ ५ ॥

इस (लंका) से क्या ? इस बीच में भी सीता को लुभाऊँगा (कामावेश दिखाकर) आश्चर्य है कि कामदेव का बल कितना अपरिमित है, क्योंकि

निद्रां मे निशि विस्मरन्ति नयनान्यालोक्य सीताननं
तत्संश्लेषसुखार्थिनी तनुतरा याता तनुः पाण्डुताम् ।
सन्तापं रमणीयवस्तुविषये बध्नाति पुष्पेषुणा
कष्टं निर्जितविष्टपत्रयभुजा निर्जीयते रावणः ॥ ६ ॥

टीका—अनया=लङ्कया किम्=कोऽर्थः । विलोभयिष्ये=वि+√लुभ्+णिच्+लृट् उत्त० आत्मानं प्रति आकर्षामीत्यर्थः । मदनस्य=कामस्य आवेशम्=आवेगम् निरूप्य=प्रकटय्य, कुसुमानि एव धनुः=चापः (कर्मधा०) यस्य तस्य (ब० व्री०) कामदेवस्य, न तुला=साम्यम् अथवा मानम् इति अतुला (नञ्-तत्पु०) यस्य तत् (ब० व्री०) इति अतुलम्=अद्वितीयम् अपरिमितं वा तस्य भावः तत्ता ।

टिप्पणी—कुसुमधन्वा— यह प्रसिद्ध है कामदेव के धनुष-बाण फूलों के हुआ करते हैं । जिन फूलों के बाणों से वह कामी-कामिनियों पर प्रहार किया करता है उनकी संख्या पाँच हैं, इसीलिए वह 'पञ्चशरः' अथवा 'पञ्चेषु' भी कहा जाता है । वे पाँच पुष्प-शर ये हैं—"अरविन्दमशोकञ्च चूतं च नवमल्लिका । नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः" । इन फूलों पर बाण की कल्पना शायद इसलिए की गई हो कि इनके सौरभ से कामवासना भड़क उठती है ।

टीका— निद्रामिति । अन्वयः -- सीताननम् आलोक्य मे नयनानि निशि निद्राम् विस्मरन्ति । तत्संश्लेष० तनुः तनुतराः (सती) पाण्डुताम् याता रमणीय० (च) सन्तापं बध्नाति । कष्टम् ! निर्जित० रावणः पुष्पेषुणा निर्जीयते ॥ ६ ॥

सीतायाः = जानक्याः आननम् = मुखम् (ष० तत्पु०) आलोक्य = दृष्ट्वा मे = मम नयनानि = नेत्राणि निशि = रात्रौ निद्राम् = स्वापम् विस्मरन्ति = विस्मृतिविषयीकुर्वन्ति रात्रौ तस्याः=मुखस्य स्मरणेन रात्रौ अहं निद्रां न लभे इति भावः । तत्संश्लेष० तस्याः = सीतायाः संश्लेषः = आलिङ्गनम्

सीता का मुख देखकर मेरी आँखें रात को नींद भूल जाती हैं : उसके आलिंगन का आनन्द चाहने वाली देह क्षीण-क्षीणतर होती हुई पीली पड़ गई एवं उसके बिना सुन्दर-सुन्दर पदार्थों के विषय में दुःख अनुभव कर रही है । दुःख की बात है कि जीते हुए तीनों लोकों का भोक्ता रावण कामदेव के हाथों हार खा रहा है ॥ ६ ॥

(उपेत्य)

सीते ! त्यज त्वमरविन्दपलाशनेत्रे !
चित्तं हि मानुषगतं मम चित्तनाथे ! ।
शस्त्रेण मेऽद्य समरे विनिपात्यमानं
प्रेक्षस्व लक्ष्मणयुतं तव चित्तकान्तम् ।। ७ ।।

सीता—हं मूढो खु सि रावणओ, जो मन्दरं हत्थेण तुळयिदुकामो।
[हं मूढः खल्वसि रावणकः, यो मन्दरं हस्तेन तुलयितुकामः ।]

(ष० तत्पु०) तस्य सुखम् =आनन्दम् (ष० तत्पु०) अर्थयते = कामयते इति (उसके आलिंगन का सुख चाहने वाला, तथोक्ता सीतालिङ्गनेच्छुकेति भावः) तनुः= शरीरम् अतिशयेन तनुः = क्षीणा इति तनुतरा कृशतरा सती पाण्डुताम् = पीतवर्णत्वम् याता = प्राप्ता (सुखती-सुखती पीली हो गयी है) । रम० —रमणीयानि = सुन्दराणि च यानि वस्तूनि पदार्थाः (कर्मधा०) तेषां विषये = सम्बन्धे (ष० तत्पु०) सन्तापम् = विषादम् बध्नाति = धारयतीत्यर्थः (सुन्दर चीजों के सम्बन्ध में दुःख उठा रही हूं) कष्टम् ! = दुःखस्य वार्ताऽस्ति निर्जित० निर्जितम् = पराजितम् विष्टपत्रयम् = त्रैलोक्यम् (कर्मधा०) भुङ्क्ते=निर्विशते इति तयोक्तः (उपपद-तत्पु०) विष्टपानाम् = लोकानां त्रयम् (ष० तत्पु०) रावणः पुष्पेषुणा = पुष्पाणि इषवः = वाणाः (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) कामदेवः तेन निर्जीयते = पराभूयते । शार्दूल-विक्रीडितं वृत्तम् ।। ७ ।।

व्याकरण—आलोक्य = आ + लोक् + ल्यप् । संश्लेषः = सम् + श्लिष् + घञ् । सुखार्थिनी = सु + ख + √ अर्थ + णिन् + ङीप् तनुतरा = तनु + तर + टाप् । पाण्डुताम् = पाण्डु + तल् + टाप् । सन्तापः = सम् + √ तप् +

(पास जाकर)

हे कमल की पँखुड़ी-जैसे नयनों वाली, मेरी हृदयेश्वरी सीता ! मनुष्य (राम) में लगा हुआ (अपना) हृदय हटा ले । आज मेरे शस्त्र द्वारा धराशायी किये जा रहे अपने प्राणप्रिय को देख ।। ७ ।।

सीता—धुत् ! तू रावण सचमुच मूर्ख है, जो हाथ से मन्दराचल को उठाना चाहता है ।

(प्रविश्य)

राक्षस।—जयतु महाराजः।

एते तयोर्मानुषयोः शिरसी राजपुत्रयोः।
युधि हत्वा कुमारेण गृहीते त्वत्प्रियार्थिना ॥ ८॥

घञ्। रमणीय = रम्यते अत्रेति √ रम् + अनीय अधिकरणे। त्रयम् = त्रयः अवयवाः अस्येति त्रि अयच्। ०त्रयभुजः = √ भुज् + क कर्तरि। निर्जीयते = निर् + जि + लट् कर्मवाच्य।

टीका—सीते इति—अन्वयः – हे अरविन्द मम चित्तनाथे ! त्वम् हि मानुषगते चित्तं त्यज। अद्य समरे मे शस्त्रेण विनिपात्यमानं लक्ष्मण-युतं तव चित्तकान्तं प्रेक्षस्व।

अरविन्द०—अरविन्दस्य=कमलस्य यत् पलाशम् = दलम् (ष० तत्पु०) (पंखुड़ी, तद्वत् नेत्रे = नयने (उपमान-तत्पु०) यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ, (ब०व्री०) मम = रावणस्य। चित्तस्य = हृदस्य नाथे ! (ष० तत्पु०) स्वामिनि। मम हृदयेश्वरि ! इत्यर्थः त्वम् हि= निश्चयेन मानुषे = मनुष्ये रामे इत्यर्थः गतम् आलम् (स० तत्पु०) चित्तम् = हृदयम् त्यज– विसृज। अद्य समरे = युद्धे मे=मम शस्त्रेण = आयुधेन विनिपात्यमानम् = धराशायी-क्रियमाणम् (धराशायी किये) लक्ष्मणेन = युतम् = सहितमित्यर्थः तव = स्वकीयम् चित्तस्य = हृदयस्य कान्तम्=प्रियम् प्रेक्षस्व = पश्य। अत्र नेत्रयोः अरविन्द पलाशेन सादृश्यप्रतिपादनात् उपमा। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ८॥

व्याकरण— नाथः = नाथते इति √ नाथ् + अच् ('आशिषि नाथ इति वाच्यम्' सिद्धा०) विनिपात्यमानम् = वि + नि + √ पत् + णिच् + शानच् कर्मणि। कान्तः = काम्यते + अभिलष्यते इति √ कम् + क्त। प्रेक्षस्व = प्र + √ ईक्ष् + लोट् मध्य०।

(प्रवेश करके)

राक्षस—महाराज की जय।

आपका हित चाहने वाले कुमार (मेघनाद) ने युद्ध में मारकर उन दोनों मनुष्य राजपुत्रों (राम-लक्ष्मण) के ये शिर ले लिये हैं ॥ ८॥

रावणः—सीते ! पश्य पश्य तयोर्मानुषयोः शिरसी ।

सीताः—हा अय्यउत्त ! (इति मूर्च्छिता पतति) [हा आर्यपुत्र !]

रावणः—

सीते ! भावं परित्यज्य मानुषेऽस्मिन् गतायुषि ।
अद्यैव त्वं विशालाक्षि ! महतीं श्रियमाप्नुहि ॥ ९ ॥

टीका—रावणकः =कुत्सितः रावणः (कुत्सायां कः) मन्दरम् = मन्दराचलम् हस्तेन = करेण तुलयितुम् = उत्थापयितुम् कामः = अभिलाषः यस्य सः (ब० व्री०) 'तुम् काम-मनसोरपि' इति मकार-लोपः । रामस्य विनिपातनम् करेण मन्दरोत्थापनमिव असम्भवमिति भावः ।

टिप्पणी—मन्दरं हस्तेन तुल०– भास बड़े भारी कठिन काम करने की तुलना मन्दराचल को हाथ से उठाने के साथ करता है । अपने नाटकों में उसने स्थान २ में इस बात का उल्लेख कर रखा है ; बालचरित में हाथों में रथाङ्गपाणि (बाल-कृष्ण) को लिये देवकी का वर्णन देखिए – 'बाहुभ्यां गिरिमिव मन्दरं वहन्ती' (१।६); इसी तरह प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में वत्सराज के पकड़े जाने को महासेन 'व्यावर्तनं करतलैरिव मन्दरस्य' (२\३) समझता है । दूत वाक्य' में कृष्ण द्वारा बुलाये 'सुदर्शनचक्र' का कथन भी देखिए — 'किं मेरु-मन्दर कुलं परिवर्तयामि' (४४) ।

टीका—एते इति—अन्वयः—त्वत्प्रियार्थिना कुमारेण युधि हत्वा तयोः मानुषयोः राजपुत्रयोः एते शिरसी गृहीते ।

त्वत०—तव प्रियम् = अभीष्टम् (ष० तत्पु०) अर्थयते = कामयते इति तथोक्तेन (उपपद तत्पु०) कुमारेण=मेघनादेन युद्धि=युद्धे हत्वा=मारयित्वा तयोः मानुषयोः=मर्त्ययोः राजपुत्रयोः=राजकुमारयोः रामलक्ष्मणयोरित्यर्थः एते=इमे शिरसी=शीर्षे गृहीते स्तः । अनुष्टुप् ॥ ८ ॥

रावण—सीता ! देख-देख उन दोनों मनुष्यों के शिर ;

सीता—हाय ! प्राणनाथ ! (मूर्छित हो जाती है) ।

रावण—सीता ! मरे हुए इस मनुष्य के प्रति अनुराग छोड़कर, हे विशाल नयनों वाली ! आज ही तू विशाल लक्ष्मी को प्राप्त कर ॥ ९ ॥

सीता—(प्रत्यभिज्ञाय) हा अय्यउत्त ! परिमळणवकमलसण्णिहे वदणे परिवुत्तणअणे पेक्खन्ती अदिवीरा खु म्हि मन्दभाआ। हा अय्य-उत्त ! एदस्सि दुःखसाअरे मं णिक्खिविअ कहिं गदो सि । जाव ण मरामि। किं णु खु अळिअं एदं भवे । भद्द ! जेण असिणा अय्यउत्तस्स असदिसं किदं, तेण मं वि मारेहि। [हा आर्यपुत्र ! परिमलनवकमलसन्निभे वदने परिवृत्तनयने पश्यन्ती अतिधीरा खल्वस्मि मन्दभागा। हा आर्यपुत्र एतस्मिन् दुःखसागरे मां निक्षिप्य कुत्र गतोऽसि । यावन्न म्रिये । किन्नु खल्वलीकमेतद् भवेत् । भद्र ! येनासिनार्यपुत्रस्यासदृशं कृतं तेन मामपि मारय ।]

व्याकरण—त्वत्प्रियार्थी=त्वत्-प्रिय + √अर्थ √णिन् । प्रिय=√प्री+क । युध्=√युध्+क्विप् । हत्वा=√हन्+क्त्वा । गृहीत √ग्रह+क्त ।

टीका—सीते इति—अन्वयः—हे सीते ! गतायुषि अस्मिन् मानुषे भावं परित्यज्य, हे विशालाक्षि ! त्वम् अद्य एव महतीम् श्रियम् आप्नुहि ।

गतम्—समाप्तमित्यर्थः आयुः=जीवितकालः (कर्मधा०) यस्य तस्मिन् (बं० व्री०) अस्मिन् मानुषे=मर्त्ये रामे इत्यर्थः भावम्=अनुरागम् परित्यज्य=परिमुच्य, हे विशाले=आयते अक्षिणी=नयने (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) तत्सम्बुद्धौ, त्वम् अद्य एव=अस्मिन् एव दिने महतीम्=विशालाम् श्रियम्=लक्ष्मीम् आप्नुहि=लभस्व । मम महिषी भवेति भावः । अनुष्टुप् ॥९॥

व्याकरण—भावः=√भू+घञ् । परित्यज्य = परि + √त्यज्+ल्यप् । आप्नुहि=√आप्+लोट् मध्य० ।

टीका—प्रत्यभिज्ञाय = प्रति+अभि+√ज्ञा+ल्यप् संज्ञां लब्ध्वा परिमल०—परिमलः=सौरभम् तद्युक्तं नव-कमलम् (मध्यमपदलो०) नवं च तत् कमलम्=नवकमलम् (कर्मधा०) तत्सन्निभे=तत्सदृशे (उपमान तत्पु०) वदने=मुखे परिवृत्ते=घूर्णिते नयने=नेत्रे पश्यन्ती=विलोकयन्ती मन्दो भागः=भाग्यम्

सीता—(होश में आकर) हाय ! प्राणनाथ ! सुगन्धित नये कमल-जैसे मुख पर पलटी हुई आंखों को देखकर अभागिनी मैं बड़ी धीर हूँ । हाय आर्यपुत्र ! मुझे इस दुःख-सागर में डालकर कहाँ चले गये ? अब तक मरती भी नहीं हूँ । क्या सचमुच यह (सब) झूठ ही हो । रे भगवान् ! जिस खड्ग से तूने आर्यपुत्र का यह अनुचित काम किया है, उससे मुझे भी मार दे ।

रावण:—

व्यक्तमिन्द्रजिता युद्धे हते तस्मिन् नराधमे
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा केन त्वं मोक्षयिष्यसे ॥ १० ॥

(कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) मन्दभागा=हतभाग्या अतिधीरा=अतिशयेन धीरा=धैर्यशालिनी (प्रादि-तत्पु०) खलु = निश्चयेन । दुःखम् एव सागरः = समुद्रः (कर्मधा०) तस्मिन् (रूपकालङ्कारः) माम् निक्षिप्य=पातयित्वा गतः=यातः । यावत्=अद्यापि न म्रिये=प्राणान् न त्यजामि । अलीकम् = मिथ्या भवेत्=स्यात् । अर्थात् आर्यपुत्रस्य लक्ष्मणस्य च एते वास्तविक-शिरसी न भवेताम् । असिना=खड्गेन असदृशम् अनुचितम् कार्यम् = वध इति यावत् कृतम् तेन=खड्गेन मारय=जहि ।

टिप्पणी—प्रत्यभिज्ञाय—साधारणतः 'अभि' और 'प्रत्यभि' पूर्वक √ज्ञा धातु का अर्थ 'पहचानना' ही होता है, किन्तु यहाँ भास ने 'प्रकृतिस्थ होने' 'होश में आने' के अर्थ में इसका प्रयोग किया है। यहाँ राम-लक्ष्मण के कटे हुए शिर देखकर सीता को मूर्छित हुआ भास ने बताया है। यहाँ किसी तरह 'पहचान कर' अर्थ यदि कर भी लिया जाय, तो कोई असङ्गति नहीं, किन्तु इसके आगे भी मेघनाद की मृत्यु के समाचार से रावण को 'मूर्च्छितः पतति' लिखकर फिर भास ने 'प्रत्यभिज्ञाय' लिखा है, वहाँ पहचानने की कोई बात ही नहीं, इसलिए दोनों जगह 'होश में आकर' ही अर्थ कवि को अभीष्ट है। भासके काल में प्रत्यभिज्ञा का अर्थ 'होश में आना' भी होता होगा।

टीका—व्यक्तमिति—अन्वयः—भ्रात्रा लक्ष्मणेन सह तस्मिन् नराधमे इन्द्रजिता व्यक्तम् युद्धे हते सति केन त्वम् मोक्षयिष्यसे ?

भ्रात्रा=अनुजेन लक्ष्मणेन सह लक्ष्मणसहिते इत्यर्थः तस्मिन् नराधमे=नरेषु अधमे=अपसदे नीचे रामे इति यावत् (स० तत्पु०) इन्द्रजिता=मेघनादे व्यक्तम्=प्रत्यक्षम् युद्धे=रणे हते=व्यापादिते सति केन=जनेनेत्यर्थः त्वम्=मोक्षयिष्यस्ये=मोचयिष्यसे ? (छुड़ाई जायेगी)। न केनापीति काकुः । इदानीं तव मुक्तिः कथमपि न सम्भवतीति भावः । अनुष्टुप् ॥ १० ॥

रावण—भाई लक्ष्मण सहित उस नराधम के इन्द्रजित् द्वारा युद्ध में प्रत्यक्ष-रूप से मार दिये जाने पर किसके द्वारा तू छुड़ाई जाएगी ? ॥ १० ॥

(नेपथ्ये)

रामेण रामेण।

सीता—चिरं जीव।

(प्रविश्य)

राक्षसः—(ससम्भ्रमम्) रामेण रामेण।

रावणः—कथं कथं रामेणेति ?

राक्षसः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। अतिपाति वृत्तान्तनिवेदन-त्वरयावस्थान्तरं नावेक्षितम्।

व्याकरण—युद्धम्=√युध्+क्तः भावे। हत=√हन्+क्त। इन्द्रजित्=इन्द्र+√जि+क्विप्। मोक्षयिष्यसे=√मोक्ष्+णिच्+लृट् कर्मवाच्ये।

टीका—अतिपातो=अतिशयेन पततीति (प्रा० तत्पु०) अत्यावश्यकः इत्यर्थः यः वृत्तान्तः=समाचारः (कर्मधा०) तस्य निवेदनस्य=विज्ञापनस्य सुचनायाः इति यावत् (ष० तत्पु०) त्वरया=शीघ्रतया (ष० तत्पु०) अवस्थान्तरम् अन्या अवस्था=स्थितिः इत्यवस्थान्तरम् (मयूरव्यंसकादित्वात् समासः) न अवेक्षितम्=न विचारितम् तत्र ध्यानं न दत्तमिति भावः। ब्रूहि=कथय। मनुजः=मानुषश्चासौ तापसः=तपस्वी (कर्मधा०)।

टिप्पणी—'केन मोक्षयिष्यसे ? 'रामेण रामेण'—भास कभी-कभी अपने पात्रों के मुख से ऐसे शब्द रख देते हैं कि घटना-तथ्यों से पूरी तरह अवगत हुए दर्शक लोग उसके झट दो तरह से अर्थ निकाल लेते हैं यद्यपि वक्ता को दूसरे अर्थ का ज्ञान नहीं रहता। इसे नाटकीय भाषा में 'पताकास्थानं' कहते हैं।

(नेपथ्य में) 'राम द्वारा, राम द्वारा'।

सीता—जीते रहो।

(प्रवेश करके) राक्षस—राम द्वारा, राम द्वारा।

रावण—क्या कह रहा है 'राम द्वारा, राम द्वारा' ?

राक्षस—प्रसन्न हूजिए महाराज, प्रसन्न हूजिए। अत्यावश्यक समाचार निवेदन करने की हड़बड़ी में मुझे (आपकी) ओर ही स्थिति का ध्यान नहीं रहा।

रावणः—ब्रूहि ब्रूहि । किं कृतं मनुजातापसेन ?

उदाहरणार्थं यहाँ रावण सीता को कह रहा है कि 'राम-लक्ष्मण के मार दिये जाने पर देखें किसके द्वारा तू छुड़ाई जा सकेगी ?' इतने में 'रामेण-रामेण' चिल्लाता हुआ राक्षस रंगमंच पर आ जाता है । सीता इस उक्ति में रावण के प्रश्न का उत्तर पा लेती है अर्थात् 'राम द्वारा' (छुड़ा दी जाएगी) । सीता प्रसन्न होकर राक्षस को आशीष दे बैठती हैं 'चिरंजीव' । स्त्रियों के साथ वार्तालाप की स्थिति में राक्षस द्वारा बाधा पड़ने के कारण रावण क्रुद्ध हो उठता है—'क्या बक रहा है 'रामेण-रामेण' ? राक्षस झट सँभलकर क्षमा माँगने लग जाता है कि 'अत्यन्त आवश्यक समाचार की सूचना देने हेतु, आपकी स्थिति का ध्यान न रखकर गलती कर बैठा हूँ । वास्तव में 'रामेण-रामेण' से राक्षस का अभिप्राय "प्रसह्य युद्धे निहतः सुतस्ते" से है । ऐसा ही पताकास्थान भास ने 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में भी अपनाया है । महासेन अपनी पुत्री वासवदत्ता के सम्बन्ध में रानी से पूछ रहा है—'कौन सा वर इसके योग्य है ? सहसा बीच में टपककर काञ्चुकीय बोल पड़ता है—'वत्सराज' । वत्सराज देखो तो राजा का परम शत्रु है । काञ्चुकीय को क्या पता की राजा रानी से अपनी पुत्री के लिए वर पूछ रहे हैं । वास्तव में उसका अभिप्राय 'वत्सराजः गृहीतः' (वत्सराज पकड़ा गया है) से है । देखिए प्रतिज्ञा० (२–८)—"राजा-'कस्ते वैतेषां पात्रतां याति' (प्रविश्य) काञ्चुकीयः—वत्सराज । राजा—किं वत्सराजः ? काञ्चुकीयः—प्रसीदतु, प्रसीदतु महासेनः । प्रियवचननिवेदनत्वरया क्रमविशेषो नावेक्षितः ।" इसी तरह का पताकास्थान हम 'अविमारक' में भी पाते हैं । राजकुमारी कुरंगी के विवाह के विषय में विलासिनी और नलिनिका के मध्य चल रहे वार्तालाप के सिलसिले में विलासिनी पूछ बैठती है—'विवाहः कदा भविष्यति ?' झट नेपथ्य से आवाज आती है—'अद्य' । नलिनिका बोलने वाले को आशीष देती है—'चिरं जीव' । वास्तव में 'अद्य' का सम्बन्ध आगे के वाक्य से जुड़ा हुआ है—('अद्य) राजपुरुषाः ! अमात्यः प्रस्थितः' । इन पताकास्थानों के कारण ही बाणभट्ट ने भास के नाटकों की विशेषता बताते हुए लिखा है—'सपताकैः नाटकैः' (हर्षचरित) ।

रावण—बोल, बोल । उस मनुष्य तपस्वी द्वारा क्या किया गया है ?

राक्षसः—श्रोतुमर्हति महाराजः । तेन खलु,

उदीर्णसत्त्वेन महाबलेन लङ्केश्वरं त्वामभिभूय शीघ्रम् ।
सलक्ष्मणेनाद्य हि राघवेण प्रसह्य युद्धे निहतः सुतस्ते ॥ ११ ॥

रावणः—आः दुरात्मन् ! समरभीरो !

देवाः सेन्द्रा जिता येन दैत्याश्चापि पराङ्मुखाः ।
इन्द्रजित् सोऽपि समरे मानुषेण निहन्यते ॥ १२ ॥

टीका—उदीर्णेति—अन्वयः—उदीर्णसत्त्वेन महाबलेन सलक्ष्मणेन राघवेण हि लङ्केश्वरम् त्वाम् शीघ्रम् अभिभूय युद्धे अद्य प्रसह्य हि ते सुतः निहतः ।

उदीर्णम्=उपचितम् प्रवृद्धमिति यावत् सत्त्वं व्यवसायः दृढ-निश्चयः इत्यर्थः (द्रव्यासुव्यवसायश्च सत्त्वमित्यमरः) (कर्मधा०) यस्य तेन (ब०व्री०) महाबलेन=महत् बलं (कर्मधा०) यस्य तेन सलक्ष्मणेन=लक्ष्मणसहितेन राघवेण = रामेण लङ्कायाः ईश्वरम्=अधिपतिम् त्वाम्=रावणम् शीघ्रम्=सत्वरम् अभिभूय=पराभूय अनादृत्येति यावत् युद्धे=समरे अद्य हि=निश्चयेन ते=तव सुतः=पुत्रः मेघनादः हतः=मारितः । अनुष्टुप् ॥ ११ ॥

व्याकरण—उदीर्णं=उत्+ई+क्तः, तस्य नः । अभिभूय=अभि+√भू+ल्यप् । राघवः=रघोः गोत्रापत्यं पुमान् इति रघु+अण् । सुतः=√सु+क्त । निहतः=नि√हन्+क्त ।

टीका—दुरात्मन्=दु=दुष्टः आत्मा (प्रादितत्पु०) यस्य सः (ब० व्री०) तत्सम्बुद्धौ समरात्=युद्धात् भीरुः (पं० तत्पु०) भीरुः=बिभेतीति √भी+क्रु ।

देवा इति—अन्वयः सरलः ।

येन सेन्द्राः=इन्द्रेण सहिताः (ब० व्री०) देवाः=सुराः जिताः=पराजिताः (यस्मात्) दैत्याः=दानवाः अपि पराङ्मुखाः=विमुखाः युद्धात् पलायन्ते स्मेति

राक्षस—सुनिए महाराज, सचमुच उस—

बढ़े हुए दृढ़ निश्चय वाले, महाबली, लक्ष्मण को साथ लिये राम द्वारा, तुम लंकेश्वर का तिरस्कार करके, तुम्हारा पुत्र (मेघनाद) आज युद्ध में बलात् मार दिया गया है ॥ ११ ॥

रावण—ओह ! दुष्ट, युद्धभीरु !

जिसने इन्द्रसहित देवताओं को पराजित कर रखा है । और जिससे दैत्य भी मुँह फेर देते हैं, वह इन्द्रजित् भी (क्या) मनुष्य द्वारा युद्ध में मारा जा (सकता) है ?

राक्षसः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः । महाराजपादमूले कुमार-मन्तरेणानृतं नाभिधीयते ।

रावणः—हा वत्स ! मेघनाद ! । (इति मूर्च्छितः पतति ।)

राक्षसः—महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

भावः । सः अपि इन्द्रजित्=इन्द्रस्य पराजेता मेघनादः मानुषेण=मनुष्येण रामेण समरे=युद्धे निहन्यते=मार्यते, सर्वथा असम्भवमेतत् इति भावः । अनुष्टुप् ॥ १२ ॥

व्याकरण—देवाः=दीव्यन्ति=प्रकाशन्ते इति √दिव्+अच् । जिताः=√जि+क्त । दैत्याः=दितेः अपत्यानि पुमांसः इति दिति+ण्य । पराङ्मुखाः=पराङ्=पश्चात् मुखं येषां ते (ब० व्री०) पराच्=परा+√अञ्च्+क्विप् । इन्द्रजित्=इन्द्र+√जि+क्विप् । निहन्यते=नि+√हन्+लट् कर्मणि ।

टीका—महाराजस्य=देवस्य पादयोः=चरणयोः (ष० तत्पु०) मूले=तले (ष० तत्पु०) कुमारम्=मेघनादम् अन्तरेण=अधिकृत्य तस्य विषये इत्यर्थः । अनृतम्=मिथ्या न अभिधीयते=अभि+√धा+लट् कर्मणि कथ्यते कुमारविषये नानृतं कथयामीत्यर्थः स रामेण निहतः इति सत्यमेव । समाश्वसिहि=धैर्यं धर । प्रत्यभिज्ञाय=संज्ञां लब्ध्वा ।

टिप्पणी—प्रसी० महाराजपादमूले......अनृतं नाभिधीयते—ऐसी ही शब्दावली कवि ने अपने अन्य नाटकों में भी प्रयुक्त कर रखी है, देखिए प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण—'प्रसीदतु महासेनः । ... न महासेनसमीपेऽनृतमभिहितपूर्वम् ।' 'बालचरित' में भी देवकी के उत्पन्न हुए पुत्र का समाचार लाने वाले काञ्चुकीय पर जब कंस का संदेह होता है तो काञ्चुकीय भी ऐसा ही कहता है—'महाराज ! अनृतं नाभिहितपूर्वं मया ।

टीका—हा वत्सेति—अन्वयः सरलः ।

राक्षस—प्रसन्न हूजिए महाराज । प्रसन्न हूजिए । कुमार के विषय में महाराज की चरण-सेवा में झूठ नहीं कहता ।

रावण—हाय बच्चा ! मेघनाद ! (मूर्छित हो जाता है) ।

राक्षस—महाराज । धैर्य रखिए, धैर्य रखिए ।

रावणः—(प्रत्यभिज्ञाय)

हा वत्स ! सर्वजगतां ज्वरकृत् ! कृतास्त्र !
हा वत्स ! वासवजिदानतवैरिचक्र ! ।
हा वत्स ! वीर ! गुरुवत्सल ! युद्धशौण्ड !
हा वत्स ! मामिह विहाय गतोऽसि कस्मात् ॥ १३ ॥

हा वत्स !=पुत्र ! सर्वाणि च तानि जगन्ति=लोकाः तेषाम् (कर्मधा०) ज्वरं=सन्तापं करोतीति तत्सम्बुद्धौ (उपपद तत्पु०) कृतानि=शिक्षितानि अस्त्राणि=आयुधानि (कर्मधा०) येन सः (ब० व्री०) तत्सम्बुद्धौ, अस्त्रविद्या-निपुण ! इत्यर्थः, वासवम्=इन्द्रम् जयतीति तत्सम्बुद्धौ (उपपद तत्पु०) आनतम्= आ=समन्तात् नतम्=प्रणतमित्यर्थः वैरि-चक्रम्=शत्रुदलम् (कर्मधा०) यस्य तत्सम्बुद्धौ (ब० व्री०) अथवा आनतम्=आनमितम् (अन्तर्भावितणिच्) वैरि-चक्रं येन । वैरि-चक्रम्=वैरिणां चक्रम् (ष० तत्पु०) । गुर्वोः=माता-पित्रोः (एकशेष द्व०) वत्सल !=प्रिय ! (ष० तत्पु०) युद्धे=समरे शौण्ड=निपुण ! (स० तत्पु०) इह माम् विहाय=परित्यज्य कस्मात्=कस्मात् कारणात् गतः= प्रयातः असि । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १३ ॥

व्याकरण—ज्वरकृत्=ज्वर+√कृ+क्विप् (कर्तरि), वासवजित्=वासव+ √जि+क्विप् । आनत=आ+√नम्+क्त । वैरी=वैर+इन् । वत्सल=वत्से पुत्रादिस्नेहपात्रे कामः अस्य अस्तीति वत्स+लच् । विहाय=वि+√हा+ल्यप् ।

टिप्पणी—रावण के करुण विलाप के इस श्लोक की तुलना राम के वन-गमन पर दशरथ के करुण विलाप से कीजिए—

"हा वत्स ! राम ! जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स ! लक्ष्मण ! सुलक्षणसर्वगात्र !
हा साध्वि ! मैथिलि ! पतिस्थितचित्तवृत्ते !
हा हा ! गताः किल वनं बत मे तनूजाः ॥" (प्रतिमा २।४) ।

रावण—(होश में आकर)

हाय मेरे बच्चे ! हे सारे लोकों को ज्वर पैदा कर देने वाले ! शस्त्रास्त्रों में निपुण ! हाय बच्चे ! इन्द्र को पराजित कर देने वाले ! शत्रु-दल को झुका देने वाले ! हाय बच्चे ! वीर ! माता-पिता के प्यारे ! युद्ध-कुशल ! हाय बच्चे ! मुझे यहां छोड़ क्यों चल बसे ? ॥ १३ ॥

(इति मोहमुपगतः ।)

राक्षसः—हा धिक् त्रैलोक्यविजयी लङ्केश्वर एतामवस्थां प्रापितो हत-केन विधिना । महाराज ! समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

रावणः—(समाश्वस्य) इदानीमनर्थहेतुभूतया सीतया किमनया त्रैलोक्यविजयविफलया चपलया श्रिया च ! किं भोः कृतान्तहतक ! अ-द्यापि भयविह्वलोऽसि ।

टीका—मोहम्=मूर्छाम् उपगतः=प्राप्तः । त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी (समाहार द्वन्द्वः) त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम् इति त्रिलोकी=ष्यञ् तत् विजयते इति तथोक्तः (उपपद तत्पु०) अवस्थाम्=दशाम् प्रापितः=नीतः हतकेन=दग्धेन विधिना=भाग्येन । समाश्वस्य=धैर्यं धृत्वा, अनर्थस्य=विपत्तेः हेतुः=कारणम् (ष० तत्पु०) भूता (कर्मधा०) तया अनया सीतया किम्= किम् प्रयोजनम् ? न किमपीति काकुः । त्रैलोक्यस्य विजये विफलया=व्यर्थया (स० तत्पु०) चपलया=चञ्चलया श्रिया=राजलक्ष्म्या च । किम् इति पूर्वतोऽ-नुवृत्तम् । कृतान्तश्चासौ हतकश्च (कर्मधा०) दग्ध-यमराज ! भयेन=भीत्या विह्वलः=आकुलः असि=वर्तसे ? इतः पूर्वं मत्तः ते भयमासीत्, इदानीं नास्तीति भावः ।

इदानीमिति—अन्वयः=निःस्नेहः (सन्) वत्सेन इन्द्रजिता विना इदानीम् अपि कठोर० एषः दशाननः जीवति इति कष्टम् ।

निःस्नेहः=निर्गतः स्नेहः=प्रेम (कर्मधा०) यस्य स (ब० व्री०) वत्सेन= पुत्रेण इन्द्रजिता=मेघनादेन विना=अन्तरेण इदानीम् अपि=सम्प्रति अपि कठोरं=

(मूर्छित हो जाता है)

राक्षस—हा धिक्कार है ! तीनों लोकों के विजेता लंकाधीश को नीच विधाता ने इस हालत में पहुँचा दिया है । महाराज ! धैर्य रखिए, धैर्य रखिए ।

रावण—(होश में आकर) अब (मेरे) अनर्थों का कारण बनी हुई इस सीता से क्या ? और तीनों लोकों के विजय करने पर भी व्यर्थ हुई इस चञ्चल राजलक्ष्मी से भी क्या ? अरे नीच यमराज ! क्या अब भी भयाकुल हो ?

इदानीमपि निःस्नेहो वत्सेनेन्द्रजिता विना।
कष्टं कठोरहृदयो जीवत्येष दशाननः ॥ १४॥

(इति सन्तापात् पतति)

राक्षसः—हा भो रजनीचरवीराः ! एवंगते राजन्यन्तःकक्ष्यास्थिता रक्षिणश्चाप्रमत्ता भवन्तु भवन्तः ।

नेपथ्ये

भो भो रजनीचरवीराः ! समरमुखनिरस्तप्रहस्तनिकुम्भकुम्भकर्णेन्द्र-जिद्विकलबलजलधिजनितभयचकितविमुखाः ! चपलपलायनमनुचितम-

---

दारुणम् हृदयम्=मनः (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) एषः दशाननः= दश आननानि=मुखानि यस्य सः (ब० व्री०) रावणः इत्यर्थः जीवति=प्राणिति इति कष्टम् ! दुःखस्य वार्ता वर्तते । अनुष्टुप् ॥ १४ ॥

टीका-व्याक०—रजन्यां=रात्रौ चरन्तीति रजनी+√चर्+टः, निशाचराश्च ते वीराश्च तत्सम्बुद्धौ (कर्मधा०) राजनि=लङ्केशे एवं गते=एताम् अवस्थाम् गते=प्राप्ते सति अन्तः=आभ्यन्तरी कक्ष्या=प्रकोष्ठः ('कक्ष्या प्रकोष्ठे हर्म्यादेः काञ्च्यां मध्येभबन्धने' इत्यमरः) अन्तःपुरमित्यर्थः तत्र स्थिताः=वर्तमानाः (स० तत्पु०) रक्षिणः=रक्षन्तीति √रक्ष्+इन् रक्षकाः भवन्तः अप्रमत्ताः=न प्रमत्ताः (नञ् तत्पु०) सावधानाः इत्यर्थः भवन्तु । समर०—समरस्य= युद्धस्य मुखे=अग्रभागे निरस्ताः=हताः इत्यर्थः (स० तत्पु०) प्रहस्तश्च निकुम्भश्च कुम्भकर्णश्च इन्द्रजित् मेघनादश्चेति० जितः (द्वन्द्वः) तैः

स्नेह-रहित (हुआ), वत्स इन्द्रजित् के विना अब भी कठोर-हृदय यह रावण जी रहा है—दुःख की बात है !

(सन्ताप से गिर पड़ता है)

राक्षस—हाय ! महाराज के इस हालत में पहुँचे, ओ राक्षस-वीरो और अन्तःपुर के रक्षको ! आप सावधान हो जाओ । (नेपथ्य में) ओ राक्षस-वीरो ! युद्ध में अग्रिम सैनिक-पंक्ति में मारे गए प्रहस्त, निकुम्भ, कुम्भकर्ण और इन्द्रजित् से रहित हुई सेना-रूपी समुद्र में उत्पन्न भय से आकुल और पीठ फेरने वालो !

विरतममरसमराणि जितवतां भवताम् अथ च विश्वलोकविजयविख्यात-विंशद्बाहुशालिनि भर्तर्यत्र स्थितवति लङ्केश्वरे ।

रावणः—(श्रुत्वा सामर्षम्) गच्छ भूयो ज्ञायतां वृत्तान्तः ।

राक्षसः--यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः । एष हि रामः,

---

विकलम्=रहितम् (तृ० तत्पु०) बलम्=सैन्यम् एव जलधिः=समुद्रः (कर्मधा०) (रूपकालंकारः) तस्मिन् जनितम्=उत्पादितम् यत् भयम् (कर्मधा०) तेन चकिताः=आकुलाः (तृ० तत्पु०) विमुखाः=पराङ्मुखाश्च (कर्मधा०) तत्सम्बुद्धौ, विमुख=वि=विरुद्धम् प्रतिकूलमिति यावत् मुखम् (प्रादितत्पु०) यस्य सः (ब० व्री०), अविरतम्=सततम् यथा स्यात्तथा अमरैः=देवैः (सह) समराणि=युद्धानि (तृ० तत्पु०) जितवताम्=जेतृणाम् भवताम् चपलम्=त्वरितं पलायनम्—युद्ध-क्षेत्रात् विमुखीभूय धावनम् अनुचितम्=अयोग्यम्, अथ च विश्वस्य=जगतः विजये=जयने (ष० तत्पु०) विख्याताः=प्रसिद्धाः ये विंशत्=पाणिनिव्याकरणदृष्ट्या अत्र विंशतिः इति वक्तव्यमासीत् । भुजाः=बाहवः तैः शालितुं=शोभितुम् शीलं यस्य तथाभूते (उपपद तत्पु०) भर्तरि=स्वामिनि स्थितवति=जीवति सतीत्यर्थः । भूयः=पुनः ज्ञायताम्=उपलभ्यताम् वृत्तान्तः=समाचारः ।

टिप्पणी—हम पीछे भास की जिस स्टेज-डाइरेक्शन की गलती की ओर संकेत कर आए हैं, वही 'निष्क्रम्य, प्रविश्य' यहाँ भी है । समाचार मिलने तक भास का रावण स्टेज पर निष्क्रिय ही बैठा रहता है ।

लगातार देवताओं के साथ युद्ध जीतने वाले आप लोगों के लिए (युद्ध-क्षेत्र से) शीघ्र भाग जाना अनुचित है और (वह भी) विश्वविजय में विख्यात बीस भुजाओं वाले स्वामी लंकाधीश के यहाँ रहते ।

रावण—(सुनकर क्रोध के साथ) जा, फिर हाल-समाचार जान ।

राक्षस—जैसी महाराज की आज्ञा । (बाहर जाकर और प्रविष्ट होकर) महाराज की जय । सचमुच यह राम—

धनुषि निहितबाणस्त्वामतिक्रम्य गर्वा-

द्धरिगणपरिवारो हाससम्फुल्लनेत्रः ।

रणशिरसि सुतं ते पातयित्वा तु राज-

न्नभिपतति हि लङ्कां सन्दिधक्षुर्यथैव ॥ १५ ॥

टीका—धनुषीति । अन्वयः—हे राजन् ! गर्वात् त्वाम् अतिक्रम्य धनुषि निहितबाणः हरि० हास० (एष हि रामः) रण-शिरसि ते सुतम् पातयित्वा यथा लङ्काम् सन्दिधक्षुः एव हि अभिपतति ।

हे राजन् ! रावण इत्यर्थं : गर्वात्=अभिमानात् त्वाम्=रावणम् अतिक्रम्य= अवज्ञाय इत्यर्थं, धनुषि=चापे निहितः=आरोपितः बाणः=शरः (कर्मधा०) येन सः (ब० व्री०) (धनुष पर बाण रखने) हरीणाम्=वानराणाम् गणः— दलम् (ष० तत्पु०) परिवारः=अनुयायिवर्गः (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) हासेन=स्मितेन प्रफुल्ले=विकसिते (तृ० तत्पु०) नेत्रे=नयने (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) (एष रामः) रणस्य=युद्धस्य शिरसि= अग्रे अग्रिमपङ्क्त्यामित्यर्थः ते=तव सुतम्=पुत्रम् मेघनादमित्यर्थः पातयित्वा= धराशायीकृत्य यथा=येन प्रकारेण लङ्काम् संदिधक्षुः संदग्धुमिच्छुः एव अभि- पतति=आक्रामति । संदधिक्षुः यथेत्यत्र उत्प्रेक्षा । मालिनी वृत्तम् ॥ १५ ॥

व्याकरण०—अतिक्रम्य=अति+√क्रम्+ल्यप् । निहित=नि+√धा+क्त । परिवारः=परिव्रियते अनेनेति परि+√वृ+घञ् करणे । हासः=√हस्+घञ् भावे । फुल्ल=√फल्+क्त, उत्वम्, तकारस्य लत्वम् । पातयित्वा=√पत्+णिच् +क्त्वा । संदिधक्षुः=सम्+√दह्+सन्+उः ।

टिप्पणी—यथैव—'व वा यथा तथैवैवं साम्ये' इस अमरकोष के आधार पर यथा शब्द हमेशा साम्यवाचक होता है और उसके प्रयोग से उपमालंकार

हे राजन् ! गर्व के कारण आपका अपमान करके धनुष पर बाण चढ़ाये, वानर-दल से घिरा, मुस्कराने से आँखें विकसित किये, (यह राम) युद्ध की अग्र-पंक्ति में तुम्हारे पुत्र (मेघनाद) को धराशायी करके लंका को फूँकना चाहता हुआ हो जैसे धावा बोल रहा है ॥ १५ ॥

रावण:—(सहसोत्थाय परामृश्य) क्वासौ क्वासौ ? (असिमुद्यम्य)

वज्रीभकुम्भतटभेदकठोरधार:
क्रोधोपहारमसिरेष विधास्यति त्वाम् ।
सम्प्रत्यवन्त्वनिमिषा इह मत्करस्थ:
क्षुद्र ! क्व यास्यसि कुतापस ! तिष्ठ तिष्ठ ॥ १६ ॥

ही बनता है किन्तु यहाँ 'यथा' से साम्य का प्रतिपादन नहीं, प्रत्युत संभावना का प्रतिपादन हो रहा है । इसीलिए यहाँ उत्प्रेक्षा है ।

टीका—असिम्=खड्गम् उद्यम्य=उत् + √यम्+ल्यप् उत्थाप्य ।

वज्रीति अन्वय:—वज्रीभकुम्भ० मत्करस्थ: एष: असि: त्वाम् क्रोधोपहारम् विधास्यति । सम्प्रति अनिमिषा: इह (त्वाम्) अवन्तु । हे क्षुद्र ! कुतापस ! क्व यास्यसि ? तिष्ठ, तिष्ठ ।

वज्रीभ०—वज्रम्=कुलिशम् अस्य अस्तीति तथोक्त: इन्द्र: इत्यर्थ: तस्य इभ:=गज: ऐरावत: इत्यर्थ: (ष० तत्पु०) तस्य कुम्भयो:=गण्डस्थलयो:=(ष० तत्पु०) तटयो:=प्रान्तयो: भेदेन=छेदेन (ष० तत्पु०) कठोरा=कठिना (तृ० तत्पु०) धारा=अग्रम् (कर्मधा०) यस्य स: (ब० व्री०) (इन्द्र के हाथी के गण्ड स्थलों के प्रान्त-भागों के भेदन से कठोर बनी हुई धार वाला) मम=मे कर:=हस्त: (ष० तत्पु०) तत्र तिष्ठतीति तथोक्त: (उपपद तत्पु०) एष:=अयम् असि:=खड्ग: त्वाम्=रामम् क्रोधस्य=कोपस्य उपहारम्=बलिम् विधास्यति=करिष्यति मम खड्ग: मे क्रोधाय ते बलिं दास्यतीति भाव: । सम्प्रति=इदानीम् मम क्रोधसमये इति यावत्, अनिमिषा=न नि—मिष:=चक्षुर्निमीलनम् (नञ्-तत्पु०) येषां ते (ब० व्री०) देवा इत्यर्थ: देवाहि निर्निमेषा भवन्ति इह=अत्र रणस्थले त्वाम् अवन्तु=रक्षन्तु अर्थात् देवा: कथमपि त्वाम् रक्षितुं न प्रभवन्ति । हे क्षुद्र ! अधम ! कुत्सित: तापस:=तपस्वी तत्सम्बुद्धौ क्व=

रावण—(एकदम खड़े होकर क्रोध के साथ) कहाँ है वह ? कहाँ है वह ? (तलवार उठा कर) इन्द्र के हाथी के गण्डस्थलों के किनारे फाड़ देने से कठोर बनी धारवाला, मेरे हाथ में स्थित यह खड्ग तुझे (मेरे) क्रोध की बलि बना देगा । अब देवता यहाँ तेरी रक्षा करें । ओ नीच दुष्ट तपस्वी ! (अब) कहाँ जाएगा ? ठहर, ठहर ॥ १६ ॥

राक्षसः—महाराज ! अलमतिसाहसेन ।

सीता—अणिट्ठाणि अणरुहाणि अणिमित्ताणि इदाणिं करअंतस्स रावणस्स अइरेण मरणं भविस्सदि । [अनिष्टान्यनर्हाण्यनिमित्तानीदानीं कुर्वतो रावणस्याचिरेण मरणं भविष्यति ।]

रावणः—अस्याः कारणेन बहवो भ्रातरः सुताः सुहृदश्च मे निहताः । तस्मादमित्रविषयमस्या हृदयं भित्त्वा कृष्टान्त्रमालालङ्कृतः खड्गाशनिपातेन समनुजयुगलं सकलवानरकुलं ध्वंसयामि ।

कुत्र यास्यसि=गमिष्यसि । तिष्ठ=विरम । अत्र रामे बलित्वारोपात् रूपकम् । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १६ ॥

व्याकरण वज्री=वज्र+इन् । भेदः=√भिद्+घञ् । उपहारः=उप+√हृ+घञ् । विधास्यति=वि+√धा+लृट् । निमिषः=नि+√मिष्+कः । करस्थः=कर+√स्था+कः । तापसः=तपसः अयम् इति तपस्+अण् (तप से सम्बन्ध रखने वाला) (तपस्वी) ।

टीका—अलम् इति प्रतिषेधे=अतिशयितं=अत्यन्तम् साहसम् (प्रादितत्पु०) अतिसाहसं न कर्त्तव्यमिति भावः अनिष्टानि=न इष्टानि=अशुभानीत्यर्थः (नञ् तत्पु०) अनर्हाणि=अयोग्यानि अनिमित्तानि=निमित्तरहितानि व्यर्थानीति यावत् कर्माणीतिशेषः कुर्वतः=अनुतिष्ठतः निहताः=मारिताः । तस्मात्=तत्कारणात् अमित्रम्=शत्रुभूतम् विषयं=स्थानम् मम शत्रुता-पात्रमिति भावः । अस्याः=सीतायाः हृदयम् भित्त्वा=छित्वा कृष्टानि=बहिर्निस्सारितानि यानि अन्त्राणि=पुरीतन्ति (कर्मधा०) तेषां मालया=स्रजा अलङ्कृतः=भूषितः अहम् खड्गः=कृपाणः अशनिः=वज्रम् इवेति (उपमित-तत्पु०) तस्य निपातेन=पातनेन प्रहारेण-

---

राक्षस—महाराज ! अतिसाहस न कीजिए ।

सीता—बुरे, अनुचित और निष्प्रयोजन कार्यों को करते हुए रावण की अवश्य मृत्यु होगी ।

रावण—इस (सीता) के कारण मेरे बहुत से भाई पुत्र और मित्र मारे गये हैं । इसलिए (मेरी) शत्रुता का आश्रयभूत इस (सीता) के हृदय का भेदन करके बाहर खींच निकाली आँतों की माला से अलंकृत हुआ मैं दोनों मनुष्यों (राम-लक्ष्मण) सहित सारे वानर-समूह का विनाश कर देता हूँ ।

राक्षसः—प्रसीदतु प्रसीदतु महाराजः। अलमलमिदानीमरिबलावलेप-मन्तरेणानवरतवृथाप्रयासेन। अवश्यं च स्त्रीवधो न कर्तव्यः।

रावणः—तेन हि स्यन्दनमानय।

राक्षसः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः। इदं स्यन्दनम्।

रावणः—(रथमारुह्य)

त्यर्थः मनुजयोः = मनुष्ययोः युगलम्=द्वयम् (ष० तत्पु०) तेन सह विद्यमानम् (ब० व्री०) सकलम्=निखिलम् यत् वानर-कुलम् = कपिसमूहः (कर्मधा०) वानराणाम् कुलम् (ष० तत्पु०) ध्वंसयामि = विनाशयामि। अलमिति प्रतिषेधे अरेः = शत्रोः रामस्येत्यर्थः यत् बलम् = सैन्यम् (ष० तत्पु०) तस्य अवलेपः=गर्वः तम् कृदभिहितो भावः सत्त्वं बोधयतीति न्यायेन अत्र अवलेप-शब्देन अवलिप्तार्थो ग्राह्यः अर्थात् अवलिप्तम्=गर्वितम् बलम् तत्। अथवा अवलेप-शब्देन अत्र आक्रमणमपि ग्रहीतुं शक्यते अरिबले = अरि-सेनायाम् अवलेपः= आक्रमणम् तत् अन्तरेण = अधिकृत्य तद्विषये इत्यर्थः 'अन्तरेण' इत्यव्ययमत्र विध्यात्मकं न तु प्रतिषेधात्मकम् अनवरतः=सततम् यः वृथा=व्यर्थः, प्रयासः= प्रयत्नः (कर्मधा०) शत्रु-गर्वित-सेनाविरुद्धं सततं व्यर्थप्रयासः न कर्तव्य इति भावः। स्त्रियाः वधः = हिंसा न कर्तव्यः शास्त्रेषु स्त्रीवधनिषेधात्। स्यन्दनम्= रथम्।

समावृतमिति अन्वयः—हे सीते ! सुरैः समावृतम् राघवम् (त्वम्) अद्य मम चाप-च्युतैः तीक्ष्णैः बाणैः आक्रान्त-चेतसम् द्रक्ष्यसि।

राक्षस—प्रसन्न हूजिए महाराज, प्रसन्न हूजिए। बस, बस, अब शत्रु (राम) की मदोन्मत्त सेना पर आक्रमण के विषय मे लगातार व्यर्थ प्रयास न कीजिए। स्त्री-वध अवश्य नहीं करना चाहिए।

रावण—तो रथ का ला।

राक्षस—जैसी महाराज की आज्ञा। (जाकर प्रवेश करके) महाराज की जय, यह है रथ।

रावण—(रथ में चढ़कर)

समावृतं सुरैरद्य सीते ! द्रक्ष्यसि राघवम् ।
मम चापच्युतैस्तीक्ष्णैर्वाणैराक्रान्तचेतसम् ॥ १७ ॥

(निष्क्रान्तः सपरिवारो रावणः ।)

सीता—इस्सरा ! अत्तणो कुलसदिसेण चारित्तेण जदि अहं अणुसरामि अय्यउत्तं, अय्यउत्तस्य विजओ होदु । [ईश्वराः ! आत्मनः कुलसदृशेन चारित्रेण यद्यहमनुसराम्यार्यपुत्रम्, आर्यपुत्रस्य विजयो भवतु ।]

(निष्क्रान्ता ।)

पञ्चमोऽङ्कः ॥

हे सीते ! सुरैः=देवैः समावृतम्=परिगतम् राघवम्=रामम् (त्वम्) अद्य मम चापेन = धनुषा च्युतैः = प्रक्षिप्तैः इत्यर्थः तीक्ष्णैः =तीव्रैः बाणैः=शरैः आक्रान्तम्=परिवृतम् चेतः=हृदयं (कर्मधा०) यस्य तथाभूतम् (ब.व्री.) द्रक्ष्यसि= अवलोकयिष्यसि । रामवक्षसि ममः शराः पतिष्यन्तीति भावः । अनुष्टुप् ॥ १७ ॥

व्याकरण—समावृत = सम् + आ + √वृ + क्त । च्युत=√च्यु + क्त । आक्रान्त=आ + √क्रम्+क्त ।

टीका—परिवारेण=भृत्यवर्गेण सहितः । ईश्वराः ! देवाः ! यदि अहम् आत्मनः = स्वस्य कुलस्य = वंशस्य सदृशेन-उचितेन चारित्रेण=चरित्रम् एव चारित्रम् इति चरित्र+अण् (स्वार्थे) तेन आर्यपुत्रम् = पतिम् अनुसरामि= अनुवर्ते अर्थात् यदि मम स्वभर्तरि दृढा चरित्र-निष्ठा वर्तते ।

(निष्क्रान्ता = निर्गता)

पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ॥

ओ सीता ! देवताओं से घिरे राम को तू आज मेरे धनुष से छूटे हुए तेज बाणों द्वारा हृदय में व्याप्त हुआ देखेगी ॥ १७ ॥

(रावण भृत्यजनसहित चला गया)

सीता—हे देवताओ ! यदि मैं अपने कुलोचित चरित्र से आर्य पुत्र की अनुगामिनी हूँ, तो आर्य पुत्र की विजय हो ।

(सब चले गये)

पञ्चम अङ्क समाप्त

--:०:--

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशन्ति विद्याधरास्त्रयः ।)

सर्वे—एते स्मो भो ! एते स्मः ।

प्रथमः—

इक्ष्वाकुवंशविपुलोज्ज्वलदीप्तकेतोः

द्वितीयः—

रामस्य रावणवधाय कृतोद्यमस्य ।

तृतीयः—

सङ्ग्रामदर्शनकुतूहलबद्धचित्ताः

सर्वे—

प्राप्ता वयं हिमवतः शिखरात् प्रतूर्णम् ॥ १ ॥

टीका—इक्ष्वाक्विति—अन्वयः—इक्ष्वाकु० रावण-वधाय कृतोद्यमस्य रामस्य सङ्ग्राम० वयम् हिमवतः शिखरात् प्रतूर्णम् प्राप्ताः ।

इक्ष्वाकु०—इक्ष्वाकोः = एतन्नामकस्य रघुवंश-प्रवर्तकस्य राजविशेषस्य वंशस्य=कुलस्य (ष० तत्पु०) विपुलः=विशालः उज्ज्वलः=निर्मलः दीप्तः=प्रकाशमानश्चेति विपुल० केतुः = ध्वजः (कर्मधा०) तस्य (इक्ष्वाकु-वंश के विशाल उज्ज्वल, देदीप्यमान झंडे) रावणस्य वधाय=मारणाय (ष० तत्पु०) कृतः=विहितः उद्यमः=उद्योगः (कर्मधा०) येन तस्य (ब० व्री०) (रावण को मारने के लिए उद्यम किये हुए) रामस्य सङ्ग्राम०—सङ्ग्रामस्य=युद्धस्य दर्शने=

षष्ठ अंक

(तदनन्तर तीन विद्याधर प्रवेश करते हैं)

सब—अरे ये हम हैं, हम हैं ।

पहला—इक्ष्वाकु कुल के विशाल उज्ज्वल, देदीप्यमान झंडे ।

दूसरा—रावण-वध हेतु उद्यम किये हुए राम के ।

तीसरा—युद्ध देखने के कौतूहल में मन लगाये ।

सब —हम हिमालय की चोटी से अति शीघ्र आ पहुँचे हैं ॥ १ ॥

प्रथमः—चित्ररथ ! एते देवदेवर्षिसिद्धविद्याधरादयो निरन्तरं नभः कृत्वा स्थिताः। तस्माद् वयमप्येतेषामेतान् गणान् परिहरन्तः स्वैरमेकान्ते स्थित्वा रामरावणयोर्युद्धविशेषं पश्यामः।

(तथा कृत्वा)

अवलोकने (ष. तत्पु.) यत् कुतूहलम्=कौतुकम् (ष. तत्पु.) तस्मिन् बद्धम्= सक्तम् (ष. तत्पु.) चित्तम् = मनः (कर्मधा.) येषां ते (ब. व्री.) (युद्ध देखने के कौतुक में मन लगाये) वयम् हिमवतः=हिमालयस्य शिखरात्= शृङ्गात् प्रतूर्णम्=शीघ्रम् प्राप्ताः=आगताः। अत्र रामे इक्ष्वाकु-वंश-केतुत्वारोपात् रूपकम्। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १ ॥

व्याकरण— उज्ज्वल = उत् + ऊर्ध्वं ज्वलतीति उत् + √ ज्वल् + अच्। दीप्त = √ दीप् + क्त। वधः = √ हन् + अप् वधादेशश्च। उद्यमः = √ उत् + √ यम् + घञ्। दर्शनम = √ दृश् + ल्युट्। बद्ध = √ बंध् + क्त। हिमवत् = हिमम् अस्मिन् अस्तीति हिम + मतुप्, मस्य वः। प्रतूर्णम्= प्रकर्षेण तूर्णम् इति प्र + तूर्णम्। तूर्णम्= √त्वर् + क्त, ऊठ्, तकारस्य नकारः, नकारस्य च णकारः, प्राप्त = प्र + √ आप् + क्त।

टिप्पणी—भास श्लोक के एक-एक पाद को एक-एक पात्र के मुँह से कहलवाने में रुचि दिखाते हैं। उन्होंने अपने प्रतिमा नाटक, अङ्क ३, श्लोक संख्या ६ और पञ्चरात्र, अङ्क १, श्लोक ५५ में भी ऐसा ही कर रखा है।

टीका—चित्ररथ ! = गन्धर्वाणाम् राजविशेषः तत्सम्बुद्धौ देव०-देवाः = सुराश्च देवर्षयः = दिव्याः ऋषयश्च सिद्धाः = देवयोनिविशेषाश्च विद्याधराः = गन्धर्वाश्चेति०विद्याधराः (द्वन्द्वः) आदिः येषां ते (ब० व्री०) नभः = आकाशम् निरन्तरम् = निर्गतम् अन्तरम् = अवकाशः यस्मात् तथाभूतम् (ब० व्री०) अवकाशरहितम् आकीर्णमिति यावत् कृत्वा = विधाय। स्थिताः सन्तीति शेषः।

पहला–चित्ररथ ! देव, देवर्षि, सिद्ध और गन्धर्व आदि आकाश को खचाखच भरे बैठे हैं। इस कारण हम भी इन गणों को छोड़ते हुए इच्छानुसार एकान्त में खड़े होकर राम-रावण का विशिष्ट युद्ध देखते हैं।

दोनों—हाँ, ठीक है।

प्रथम:—अहो प्रतिभयदर्शनीया खल्वियं युद्धभूमि: । इह हि,

रजनिचरशरीरनीरकीर्णा कपिवरवीचियुता वरासिनक्रा ।
उदधिरिव विभाति युद्धभूमी रघुवरचन्द्रशरांशुवृद्धवेगा ॥ २ ॥

तस्मात्=तत्कारणात् एतान् गणान्=समूहान् परिहरन्त:=त्यजन्त: स्वैरम्= = स्वेच्छापूर्वकम् एकान्ते = एकान्तस्थाने युद्ध-विशेषम् = युद्धप्रकारम् पश्याम:=विलोकयाम: । अहो = इति आश्चर्ये । प्रतिभया=भीषणा दर्शनीया= द्रष्टु योग्या च (कर्मधा० युद्धस्य भूमि: = स्थानम् क्षेत्रमिति यावत् ।

टीका—रजनीति । अन्वय:—रजनि० कपिवर० वरासिनक्रा रघुवर० युद्धभूमि: उदधि: इव विभाति ।

रजनि०--रजनिचराणाम् = राक्षसानाम् शरीराणि = देहा: (ष० तत्पु०) एव नीरम् = जलम् (कर्मधा०) तेन कीर्णा = आकीर्णा पूर्णेत्यर्थ: (तृ० तत्पु०) (राक्षसों के शरीररूपी जल से भरी) कपि०—कपिषु= वानरेषु वरा:=श्रेष्ठा: (स० तत्पु०) श्रेष्ठकपय: इत्यर्थ: एव वीचय:=तरङ्गा: (कर्मधा०) ताभि: युता: = युक्ता: (तृ० तत्पु०) (बड़े-बड़े वानर रूपी तरंगों से युक्त) वरा: = श्रेष्ठा: असय:=खड्गा: (कर्मधा०) एव नक्रा:— जलचरजीवविशेषा: (कर्मधा०) यस्यां सा (ब० व्री०) (अच्छे-अच्छे खड्ग – रूपी नाकुओं वाली) रघु०—रघुषु = रघुवंशीयेषु नृपेषु वर:=श्रेष्ठ: राम। इत्यर्थ: एव चन्द्र: = शशी (कर्मधा०) तस्य शरा: = बाणा: एव अंशव: = किरणा: (कर्मधा०) तै: वृद्ध: = वृद्धिं प्राप्त: (तृ० तत्पु०) वेग: = रय: (कर्मधा०) यस्या: सा (ब० व्री०) (राम-रूपी चन्द्रमा के बाण-रूपी किरणों से वृद्धि को प्राप्त हुए वेग वाला) युद्धभूमि: = रणक्षेत्रम् (ष० तत्पु०) उदधि: = समुद्र इव विभाति=शोभते । अत्र रूपकोपमयो:

पहला—आश्चर्य है कि यह युद्ध-भूमि सचमुच भयंकर और दर्शनीय है, क्योंकि यहाँ—

राक्षसों के शरीर-रूपी जल से भरा बड़े-बड़े बानर-रूपी तरंगों से युक्त, बड़े-बड़े खड्गरूपी नाकुओं वाला, राम-रूपी चन्द्रमा के बाणरूपी किरणों द्वारा बढ़े हुए वेग वाला युद्धक्षेत्र समुद्र के समान दिखाई दे रहा है ॥ २ ॥

द्वितीयः—एवमेतत् ।

एते पादपशैलभग्नशिरसो मुष्टिप्रहारैर्हताः
क्रुद्धैर्वानरयूथपैरतिबलैरुत्पुच्छकर्णैर्वृताः ।

अङ्गाङ्गिभावसंकरः । रघुवरे चन्द्रत्वारोपस्य शरेषु अंशुत्वारोपस्य च परस्परं कार्यकारणभावात् परम्परितरूपकम् । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ २ ॥

व्याकरण – रजनिचराः = रजन्यां = रात्रौ चरन्तीति रजनि + √चर टः । कीर्ण = √कॄ + क्तः, ईर, तस्य नः, नस्य णः) । युत = √यु + क्त । वृद्ध = √वृध् + क्त) युद्धम् = √युध् + क्तः, भावे । उदधिः = उदकम् = जलं धीयते अत्रेति उदंक = √धा + कि, उदकस्य उदादेशः । (विभाति = वि + √भा + लट्)

टीका – एत इति—अन्वयः—एते पादप० मुष्टिप्रहारैः हताः, क्रुद्धैः अतिबलैः उत्पुच्छ० वानर० वृताः, कण्ठग्राह० दष्टोष्ठतीव्रैः मुखैः (उपलक्षिताः) रक्षोगणाः समरे वज्राहताः शैला इव आशु पातताः ।

एते = इमे पादप०—पादपाः वृक्षाश्च शैलाः = पर्वताश्च (द्वन्द्व) तैः भग्नानि = खण्डितानि (तृ० तत्पु०) शिरांसि = मस्तकानि (कर्मधा०) येषां ते (ब० व्री०) (जिनके शिर वृक्षों और पर्वतों द्वारा फोड़ दिए गए थे) मुष्टीनाम् = बद्धकराणाम् प्रहारैः = आघातैः हताः = मारिताः, क्रुद्धैः – कुपितैः अति = अतिशयितं बलम् = सामर्थ्यम् (प्रादितत्पु०) येषां तैः (ब० व्री०) उत्—ऊर्ध्वं पुच्छानि = लाङ्गूलानि च कर्णाः = श्रोत्राणि च (द्वन्द्वः) येषां तैः (ब० व्री०) (जिनके पूँछें और कान ऊपर किये हुए थे) वानराणाम् = कपीनाम् यूथपैः = दलपतिभिः वृताः = परिवेष्टिताः (वानरों के मुखियाओं द्वारा घिरे), कण्ठ०—कण्ठस्य = गलस्य ग्राहेण = ग्रहणेन, निपीडनेन गलनिपीडनेन श्वासावरोधं कृत्वेति यावत् विवृत्तानि = घूर्णितानि

दूसरा—ऐसा ही है ।

ये वृक्षों और पर्वतों द्वारा फोड़े गए शिरों वाले, मुट्ठियों की चोटों से मारे हुए, कुपित महाबली, पूँछ और कान ऊपर किये वानरों के दलपतियों से घिरे, गला घोंट देने से पलटी एवं ऊपर से बाहर निकली हुई आँखों वाले

कण्ठग्राहविवृत्ततुङ्गनयनैर्दष्टोष्ठतीव्रैर्मुखैः
शैला वज्रहता इवाशु समरे रक्षोगणाः पातिताः ॥ ३ ॥

तृतीयः— एते चापि द्रष्टव्या भवद्भ्याम्,
निशितविमलखड्गाः क्रोधविस्फारिताक्षा
विमलविकृतदंष्ट्रा नीलजीमूतकल्पाः ।

(तृ० तत्पु०) अत एव तुङ्गानि=उच्चानि निर्गतानि, बहिः प्रलम्बमानानीत्यर्थः नयनानि = नेत्राणि (कर्मधा०) येषां तैः (ब० व्री०) (गला घोट देने से पलटी और ऊपर से निकली हुई आँखों वाले) दष्टाः = दन्तैः खण्डिताः ये ओष्ठाः = दन्तच्छदाः (कर्मधा०) तैः तीव्रैः = भीषणैः (तृ०तत्पु०) मुखैः= आननैः उपलक्षणे तृतीया) (दाँतों द्वारा) काटे हुए ओठों से भीषण बने मुखों वाले) रक्षसाम् = राक्षसानाम् गणाः = समूहाः (ष० तत्पु०) समरे= युद्धे, वज्रेण = कुलिशेन हताः = प्रहृताः शैलाः= पर्वताः इव आशु = शीघ्रम् पातिताः = धराशायिनः कृताः । अत्र वज्राहताः शैलाः इवेत्यत्र उपमा । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३ ॥

व्याकरण--पादपः = पादेन (मूलेन) पिबन्ति जलमिति पाद + √पा+ कः । शैलः=शिलानां समूहः इति शिला + अण् । भग्न= √भञ्ज् + क्तः । प्रहारः=प्र + √हृ + घञ् । हत = √हन् + क्तः । क्रुद्ध = √क्रुध्+क्तः (कर्तरि) । यूथपः=यूथं = दलं पातीति यूथ + √पा+कः । वृत्त = √वृत्+क्तः (कर्मणि) । ग्राहः=√ग्रह् + घञ् । विवृत्त=वि+√वृत्+क्तः । दष्ट=√दंश+ क्तः । पातित=√पत्+णिच्=क्तः ।

टीका - निशितेति—अन्वयः--निशित० क्रोध० विमल० नील० हरिगणसैन्यम् हन्तुकामाः रभस० समन्तात् सम्पतन्तः राक्षसाः (द्रष्टव्याः भवद्भ्याम् इति पूर्वमेवोक्तम्) ।

राक्षसों के दल (इन्द्र द्वारा) वज्र से काटे हुए पर्वतों की तरह युद्ध में शीघ्र धराशायी कर दिए गये हैं ॥ ३ ॥

तीसरा--और आप दोनों इन राक्षसों को भी देखें—

जिनके (हाथों में) चमकते हुए तेज खड्ग हैं, क्रोध में आँखें फाड़ रखी हैं, भयंकर दाढ़ें चमक रही हैं, जो काले मेघों जैसे हैं, वानर-दलों के नेताओं

हरिगणपतिसैन्यं हन्तुकामाः समन्ताद्

रभसविवृतवक्त्रा राक्षसाः सम्पतन्तः ॥ ४ ॥

प्रथमः--अहो नु खलु,

वाणाः पात्यन्ते राक्षसैर्वानरेषु

निशित०—निशिताः=तीक्ष्णाः खड्गाः कृपाणाः (कर्मधा०) येषां ते (ब० व्री०) (जिनकी तलवारें पैनी हैं) क्रोध०--क्रोधेन=कोपेन विस्फारिते स्फारीकृते विस्तारिते इति यावत् अक्षिणी=नयने [कर्मधा०] यैः तथाभूताः (ब० व्री०) (क्रोध में आँखों को फाड़े हुए) विमल०—विमला=स्वच्छा विकृता=कराला च दंष्ट्राः=दीर्घदन्ता (कर्मधा०) येषां ते (ब० व्री०) (सफेद, डरावनी दाढ़ोंवाले) नीलाः नील० नीलवर्णाः श्यामा इति यावत् ये जीमूताः=मेघाः (कर्मधा०) तैः ईषत् ऊनाः इति जीमूतकल्पाः श्यामवर्ण-मेघसमानाः इति यावत् (उपमान तत्पु०) (काले मेघों के समान) हरि० हरीणाम् = वानराणाम् ये गणाः=दलानि (ष० तत्पु०) तेषाम् ये पतयः=अध्यक्षा (ष० तत्पु०) तेषाम् सैन्यम्=सेनाम् (ष० तत्पु०) हन्तुम्=व्यापादयितुं कामः=इच्छा येषां तथाभूताः (ब व्री०) (वानर-दलों के नेताओं की सेना को मारना चाहते हुए) रभस०—रभसेन=वेगेन विवृतानि=उद्घाटितानि वक्त्राणि=मुखानि (कर्मधा०) यैः ते (ब० व्री०) (जोर से मुँह फोड़े हुए) समन्तात्=परितः समन्तात्= आक्रमणं कुर्वन्तः (एते चापि) समन्तात् परितः सम्पतन्तः=आक्रमणं कुर्वन्तः (एते चापि) राक्षसाः=असुराः (भव-दभ्याम् द्रष्टव्याः इति पूर्वोक्तिम् अन्वेति)। अत्र 'जीमूतकल्पा।' इत्युपमा। मालिनी वृत्तम् ॥ ४ ॥

व्याकरण—निशित=नि+√शो+क्त। क्रोधः=√क्रुध्+घञ्। विस्फारित=वि+स्फार+णिच् (तत्करोति तदाचष्टे) + क्त। दंष्ट्रा=√दंश्+ष्ट्रन्+टाप्। जीमूतकल्पा=जीमूत+कल्पप्। हन्तुकामः = हन्तुम्+कामः यस्य (तुमुकाम-

---

की सेना का वध करना चाह रहे हैं, जोर से मुँह को फाड़े हुए हैं और चारों तरफ से आक्रमण कर रहे हैं ॥ ४ ॥

पहला--सचमुच आश्चर्य है।

वानरों के ऊपर राक्षसों द्वारा बाण फेंके जा रहे हैं।

द्वितीयः—

शैलाः क्षिप्यन्ते वानरैर्नैर्ऋतेषु ।

तृतीयः—

मुष्टिप्रक्षेपैर्जानुसङ्घट्टनैश्च

सर्वे—

भीमश्चित्रं भोः ! सम्प्रमर्दः प्रवृत्तः ॥ ५ ॥

प्रथमः—रावणमपि पश्येतां भवन्तौ,

मनसोरपि इति मकारलोपः)। विवृत=वि+√वृ+क्त । सम्पतन्तः सम्+√पत्+शतृ+प्रय० बहु० ।

टीका—वाणा इति—अन्वयः—राक्षसैः वानरेषु बाणाः पात्यन्ते, वानरैः नैर्ऋतेषु शैलाः क्षिप्यन्ते, मुष्टि-प्रक्षेपैः जानुसङ्घट्टनैः च भीमः सम्प्रमर्दः प्रवृत्तः इति भोः चित्रम् ।

राक्षसैः=असुरैः वानरेषु=कपिषु बाणाः=शराः पात्यन्ते=क्षिप्यन्ते, वानरैः नैर्ऋतेषु=राक्षसेषु शैलाः=पर्वताः क्षिप्यन्ते=पात्यन्ते, मुष्टीनां वक्रकराणाम् प्रक्षेपैः=प्रहारैः जानुभ्याम्=ऊरुपर्वभ्याम् संघट्टनैः=अभिघातैः च भीमः=भयङ्करः सम्प्रमर्दः=सम्पीडनम् प्रवृत्तः=प्रारब्धः इति भोः चित्रम्=आश्चर्यकरम् । वैश्वदेवी वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—'पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ ॥ ५ ॥

व्याकरण—पात्यन्ते=√पत्+णिच्+लट् (कर्मणि) क्षिप्यन्ते=√क्षिप्+लट् कर्मणि) नैर्ऋताः=निर्ऋतेः अपत्यानि पुमांसः इति निर्ऋति+अण् । प्रक्षेपः=√प्र+√क्षिप्+ घञ् । सङ्घट्टनम्=सम्+√घट्+ल्युट् । भीमः= बिभेत्यस्मात् इति√भी+मक् अपादाने । सम्प्रमर्दः=सम्+प्र+√मृद्+घञ् । प्रवृत्तः=प्र+√वृत्+क्त ।

दूसरा—वानरों द्वारा राक्षसों के ऊपर पर्वत फेंके जा रहे हैं ।

तीसरा—मुट्ठियों की मारों और घुटनों की टक्करों से

सब—अरे भयंकर संघर्ष छिड़ गया है ॥ ५ ॥

पहला— आप दोनों रावण को भी देखें—

कनकरचितदण्डां शक्तिमुल्लालयन्तं
विमलविकृतदंष्ट्रं स्यन्दनं वाहयन्तम् ।
उदयशिखरिमध्ये पूर्णबिम्बं शशाङ्कं
ग्रहमिव भगणेशं राममालोक्य रुष्टम् ॥ ६ ॥

टीका — कनकेति — अन्वयः—कनक० शक्तिम् उल्लालयन्तम्, विमल०, स्यन्दनम् वाहयन्तम्, उदय० पूर्णबिम्बम् भगणेशम् शशाङ्कम् आलोक्य रुष्टम् ग्रहम् इव रामम् आलोक्य रुष्टम् (रावणम् अपि पश्येताम् भवन्तौ इति पूर्वेण अन्वयः) ।

कनकेन = सुवर्णेन रचितः = निर्मितः (तृ० तत्पु०) दण्डः = यष्टिः (तृ० तत्पु०) यस्याः ताम् (ब० व्री०) (सोने के डंडेवाली) शक्तिम् = प्रक्षेपास्त्र-विशेषम्, उल्लालयन्तम् उपरि घूर्णयन्तम् भ्रमयन्तमिति यावत् (शक्ति को ऊपर घुमाता हुआ) विमल०–विमला = निर्मलता श्वेता इत्यर्थः विकृता = भीषणा च (कर्मधा०) दंष्ट्रा = दीर्घदशनः (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) स्यन्दनम्= रामम् वाहयन्तम् = चालयन्तम्; उदयस्य=सूर्योदयस्य शिखरी=पर्वतः उदया-चलः इत्यर्थः (ष० तत्पु०) तस्य मध्ये मध्यभागे (ष० तत्पु०) पूर्णम्=अविकलम् बिम्बम् = मण्डलम् (कर्मधा०) यस्य तम् (ब० व्री०) (उदयाचल के मध्य पूर्ण मंडलवाले) भानाम्=ग्रह-नक्षत्राणाम् गणः = समूहः (ष० तत्पु०) तस्य ईशम् = अधिपतिम् (ष० तत्पु०) शशाङ्कम्=शशः=शशकः अङ्कः=चिह्नभूतः (कर्मधा०) यस्मिन् सः (ब० व्री०) शशी, चन्द्रः इत्यर्थः तम् आलोक्य = दृष्ट्वा रुष्टम् = युद्धम् ग्रहम् = राहुमित्यर्थः इव रामम् आलोक्य रुष्टम् रावणम् अपि पश्येताम् = अवलोकयेताम् भवन्तौ इति पूर्वेणान्वयः । अत्र ग्रहमि-वेत्यत्र उपमालंकारः : मालिनी वृत्तम् ॥ ६ ॥

व्याकरण —शक्तिः =शक्यते मारयितुम् अनया इति √ शक् + क्ति करणे । उल्लालयन्तम् = उत् + लल् + णिच् + शतृ + द्वि० । वाहयन्तम् = √ वह् + णिच् + शतृ + द्वि० । शिखरी = शिखराणि = शृङ्गाणि अस्य

जो सुवर्ण-रचित डंडे वाली शक्ति को ऊपर घुमा रहा है, जिसकी दाढ़ श्वेत और भीषण है, जो रथ को हांक रहा है और राम को देखकर इस तरह कुपित है जैसे उदयाचल के मध्य पूर्ण मंडल वाले, नक्षत्रसमूह के स्वामी चन्द्रमा को देखकर राहु (कुपित हुआ करता है) ॥ ६ ॥

[illegible]

सव्येन चापमवलम्ब्य करेण वीर-

मन्येन सायकवरं परिवर्तयन्तम् ।

सन्तीति शिखर + इन् । भः = भाति = प्रकाशते इति √ भा + डः । ईशः= ईष्टे इति √ ईश् + कः । आलोक्य=आ + √ लोक् + ल्यप् । रुष्ट = √ रुष् + क्तः ।

टिप्पणी—ग्रहमिव- ग्रह से यहाँ 'राहु' अभिप्रेत है । ज्योतिष में ९ ग्रहों में राहु को भी गिना जाता है । यह जब चन्द्रमा को ग्रसता है, तब ग्रहण कहलाता है । राहु द्वारा चन्द्र-ग्रहण और केतु द्वारा सूर्य-ग्रहण होता है । पौराणिक कथा के अनुसार राहु विप्रचित्ति और सिंहिका का पुत्र एक राक्षस था । समुद्र-मंथन के समय जब अमृत-घट निकला तो देवता लोग उसे आपस में बाँट रहे थे । इतने में राहु वेष बदलकर देवताओं की पंक्ति में जा बैठा । वह भी अमृत पी ही रहा था कि इतने में चन्द्रमा और सूर्य ने उसे पहचान लिया और विष्णु से शिकायत कर दी । विष्णु ने तत्काल चक्र से उसका शिर काट डाला, परन्तु वह अमृत पी चुका था, इसलिए मरा नहीं । शिर और धड़ दोनों जीते ही रहे । शिर को राहु और धड़ को केतु कहते हैं । अपनी पुरानी शत्रुता के कारण राहु चन्द्रमा को देखते ही क्रुद्ध हो जाता है । और उसे निगल जाता है, किन्तु धड़ न होने से चन्द्रमा गले के नीचे से फिर बाहर आ जाता है ।

टीका—सव्येनेति— अन्वयः- सव्येन करेण चापम् अवलम्ब्य अन्येन (अपसव्येन) सायकवरम् परिवर्तयन्तम्, भूमौ स्थितम्, युधि गिरिवरम् क्रौञ्चम् ईक्षमाणम् कार्तिकेयम् यथा (तथा) युधि रिपुम् (रावणम्) ईक्षमाणम् वीरम् (राममपि पश्येतां भवन्तौ इत्यनेन अन्वयः) । सव्येन = वामेन करेण = हस्तेन चापम् = धनुः अवलम्ब्य=आश्रित्य गृहीत्वेत्यर्थः अन्येन सव्येतरेण दक्षिणेनेत्यर्थः (करेण) सायकेषु = बाणेषु वरम् = श्रेष्ठम् (स० तत्पु०) श्रेष्ठबाणमित्यर्थः

दूसरा—राम को भी आप दोनों देखें—

जो बायें हाथ से धनुष पकड़कर दायें (हाथ) से उत्तम बाण को घुमा रहे हैं, भूमि पर खड़े हैं; रथ में बैठे हुए शत्रु (रावण) को इस प्रकार देख रहे हैं

भूमौ स्थितं रथगतं रिपुमीक्षमाणं
क्रौञ्चं यथा गिरिवरं युधि कार्त्तिकेयम् ॥ ७ ॥

तृतीयः—हहह !
रावणेन विमुक्तेयं शक्तिः कालान्तकोपमा ।
रामेण स्मयमानेन द्विधा छिन्ना धनुष्मता ॥ ८ ॥

परिवर्तयन्तम् = धनुषि आरोपणात् पूर्वं निरीक्षणार्थं हस्तेन भ्रमयन्तमित्यर्थः, भूमौ = पृथिव्याम् स्थितम् = वर्तमानम्, युधि = युद्धे गिरिषु = पर्वतेषु वरम् = श्रेष्ठम् (स० तत्पु०) श्रेष्ठगिरिमित्यर्थः क्रौञ्चम् = एतन्नामकम् पर्वतविशेषम् ईक्षमाणम् = पश्यन्तम् कार्तिकेयम् = स्कन्दम् युधि रिपुम् शत्रुम् रावणमित्यर्थः ईक्षमाणम्, वीरम् = शूरम् रामम् अपि पश्येताम् भवन्तौ इति पूर्वेण अन्वेति । अत्र यथा कार्तिकेयम् इत्युपमा । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ७ ॥

व्याकरण--अवलम्ब्य=अव+√ लम्ब्+ल्यप् । परिवर्तयन्तम्=परि+√ वृत्+णिच्+शतृ । स्थित=√स्था+क्तः (कर्तरि) गत=√गम्+क्तः (कर्तरि) ईक्षमाणम्=√ईक्ष्+शानच् । कार्त्तिकेयः=कृत्तिकानाम् अपत्यं पुमान् इति कृत्तिका+ढक् ।

टिप्पणी--क्रौञ्च यथा कार्त्तिकेयम्--इस सम्बन्ध में प्रथम अंक के २४ वें श्लोक की टिप्पणी देखिए ।

टीका—रावणेनेति । अन्वयः--रावणेन कालान्तकोपमः इयम् शक्तिः विमुक्ता धनुष्मता रामेण स्मयमानेन (सा) द्विधा छिन्ना ।

रावणेन कालस्य प्रलयकालस्येत्यर्थं उपमा=सादृश्यं (तृ० तत्पु०) यस्याः (ब०व्री०) इयम्=एषा शक्तिः=प्रक्षेपास्त्रविशेषः विमुक्ता=रामस्योपरि प्रक्षिप्ता धनुष्मता=चापधारिणा रामेण स्मयमानेन=ईषत् हसता सता (सा शक्तिः) छिन्ना =द्वयोः भागयोः छिन्ना=खण्डिता । अत्र कालान्तकोपमेति उपमा । अनुष्टुप् ॥ ८ ॥

जैसे युद्ध में स्वामी कार्तिकेय पर्वतों में श्रेष्ठ क्रौञ्च को (देखते थे) और जो वीर हैं ॥ ७ ॥

तीसरा—हहह ! रावण ने प्रलयकालीन मृत्यु-जैसी यह शक्ति (राम पर) छोड़ी, धनुर्धारी राम ने हँसते-हँसते उसके दो टुकड़े कर दिए ॥ ८ ॥

प्रथमः—

शक्तिं निपातितां दृष्ट्वा क्रोधविस्फारितेक्षणः ।
रामं प्रत्यैषवं वर्षमभिवर्षति रावणः ॥ ९ ॥

द्वितीयः—अहो रामस्य शोभा ।

व्याकरण—अन्तकः=अन्तं करोति इति अन्तयति (नामधा०) अन्तयतीति अन्त+णिच्+ण्वुल् । उपमा=उपमानम् उपमा इति उप+√मा+अङ्+टाप् विमुक्त=वि+√मुच्+क्त । धनुष्मता=धनुः अस्यास्तीति धनुष्+मतुप् । स्मयमान=√स्मि+शानच् । द्विधा=द्वि+धा (क्रियाप्रकारार्थे) छिन्न=√छिद्+क्तः, तस्य नः ।

टिप्पणी – कालान्तक०—भासने यहाँ 'काल' और 'अन्तक' दोनों पर्याय शब्द दे दिए हैं, देखिए अमरकोश—'कालो दण्डधरः श्राद्धदेवो वैवस्वतोऽन्तकः' । इसलिए एक व्यर्थ है । हमने काल से प्रलय-काल अर्थ लिया है, क्योंकि प्रलयकाल का यम बड़ा ही भीषण हुआ करता है और सारे ही जगत् को खा जाता है ।

टीका—शक्तिमिति—अन्वयः सरलः ।

शक्तिम्=प्रक्षेपास्त्रम् निपातिताम्=खण्डीकृत्य भूमौ पातिताम् दृष्ट्वा=विलोक्य क्रोध०—क्रोधेन=कोपेन विस्फारिते=विस्तारिते ईक्षणे=(तृ० तत्पु०) नयने (कर्मधा०) येन सः (ब० व्री०) (क्रोध से आँखें फाड़े हुए) रावणः रामम् प्रति=रामे इत्यर्थः ऐषवम्=इषूणाम् वर्षम्=वृष्टिम् अभिवर्षति पातयतीत्यर्थः । अनुष्टुप् ॥ ९ ॥

व्याकरण—निपातित=नि+√पत्+णिच्+क्त । दृष्ट्वा=√दृश्+क्त्वा । क्रोधः=√क्रुध्+घञ् । विस्फारित=वि+√स्फार+णिच्+क्त । ईक्षणम्=ईक्ष्यते=दृश्यते अनेनेति√ईक्ष्+ल्युट् करणे । ऐषवम्=इषूणाम् अयम् इति इषु+अण् । वर्षः=वर्षणम् वर्षं इति √वृष्+घञ् । अभिवर्षति=अभि+√वृष्+लट् ।

पहला—(राम द्वारा) शक्ति को गिरा डाला हुआ देखकर क्रोध से आँखों को फाड़े हुए रावण राम के प्रति बाणों की वर्षा कर रहा है ॥ ९ ॥

दूसरा—अहो राम की शोभा देखो—

एता रावणजीमूताद् वाणधारा विनिस्सृताः ।
विभान्ति राममासाद्य वारिधारा वृषं यथा ॥ १० ॥

तृतीयः—एष एषः,

कनकरचितचापं तीक्ष्णमुद्यम्य शीघ्रं
रणशिरसि सुघोरं बाणजालं विधून्वन् ।

टीका—एता इति—अन्वयः—रावण-जीमूतात् विनिःसृताः एताः वाण-धाराः रामम् आसाद्य वृषम् (आसाद्य) वारिधाराः यथा (तथा) विभान्ति ।

रावणः एव जीमूतः = मेघः (जीमूतौ मेघ-पर्वतौ' इत्यमरः) (कर्मधा०) तस्माद् विनिःसृताः = विनिर्गता. एताः वाणानाम् = शराणाम् धाराः = परम्पराः (ष० तत्पु०) रामम् आसाद्य = प्राप्य वृषम्=वृषभम् आसाद्य वारिणः जलस्य धाराः = आसाराः यथा = येन प्रकारेण (तथा) विभान्ति = शोभन्ते । अत्र रावणे जीमूतत्वारोपात् रूपकम् । वृषं यथा इति उपमा । अनुष्टुप् ॥ १० ॥

व्याकरण—जीमूतः = जीवनम् = जलम् मुञ्चतीति जीवन+√मुञ्च् पृषोदरादित्वात् साधुः । विनिःसृत = वि+निर्+√सृ+क्त । आसाद्य = आ+√सद् + णिच् + ल्यप् । यथा = यत्+थाल् (प्रकारवचने) विभान्ति = वि + √भा + लट् प्रथ० व० ।

टिप्पणी—राम पर बाण-वृष्टि की तुलना कवि ने बैल पर पड़ी वृष्टि से की है । मस्त साँड घूमता रहता है, उस पर पड़ रही वृष्टि—धारा की वह जरा भी पर्वाह नहीं करता, घूमता ही रहता है । यही हाल राम का भी

रावण-रूपी मेघ से निकली हुई वाणों की वर्षायें राम को प्राप्त करके इस तरह दिखाई दे रही हैं जैसे साँड को प्राप्त कर के (वर्षा) जल की धारायें ॥ १० ॥

तीसरा—

शीघ्र सोने के बने तीक्ष्ण धनुष को उठाकर युद्ध की अग्र पंक्ति में अति भीषण बाण-समूह फेंकते हुए यह राम रथ में बैठे आ रहे रावण की ओर पैदल

रथगतमभियान्तं रावणं याति पद्भ्यां
गजपतिमिव मत्तं तीक्ष्णदंष्ट्रो मृगेन्द्रः ॥ ११ ॥

सर्वे—अये ज्वलित इव प्रभयायं देशः। किन्नु खल्विदम् ?

है। मेघ-रूप में रावण बाण बरसा रहा है, लेकिन राम पर उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ रहा है।

टीका—कनकेति—अन्वयः—एषः रामः शीघ्रम् तीक्ष्णम् कनक० उद्यम्य रण-शिरसि सुघोरम् बाण-जालम् विधून्वन् रथगतम् अभियान्तम् रावणम् तीक्ष्णदंष्ट्रः मृगेन्द्रः मत्तम् गजपतिम् इव पद्भ्याम् याति।

एषः = अयम् राम इत्यर्थः शीघ्रम् = झटिति तीक्ष्णम् = भीषणम् कनकेन = सुवर्णेन रचितम् = निर्मितम् (तृ० तत्पु०) चापम् बाणम् (कर्मधा०) उद्यम्य = उत्थाप्य रणस्य = युद्धस्य शिरसि = अग्रपङ्क्तौ सु+सुष्ठु घोरम् = भयंकरम् बाणानाम् = शराणाम् जालम् = समूहम् (ष० तत्पु०) विधून्वन् = प्रक्षिपन् रथे = स्यन्दने गतम् = स्थितमित्यर्थः अभियान्तम् = रामं प्रति युद्धाय आगच्छन्तम् रावणम् तीक्ष्णा = निशिता दंष्ट्रा = दीर्घदन्तः (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्रो०) मृगाणाम् इन्द्रः = अधिपः सिंहः इत्यर्थः मत्तम् मदोत्कटम् गजानाम् = करिणाम् पतिम् = नायकम् गजेन्द्रमिति यावत् पद्भ्याम् = पादाभ्याम् याति = गच्छति। रथस्थं रावणं प्रति रामः पद्भ्याम् एव गच्छतीति भावः। उपमालंकारः। मालिनी वृत्तं च ॥ ११ ॥

व्याकरण—रचित = √रच् + क्त। उद्यम्य = उत् √+यम्+ल्यप्। विधून्वन् = वि + √धू + शतृ। अभियान्तम् = अभि + √या + शतृ + द्वि०। मत्त √मद् + क्त।

टिप्पणी—गजपतिमिव मृगेन्द्रः—भास बहुधा दो विरोधियों में दुर्बल की गजपति, मृग, या बैल से और प्रबल की मृगेन्द्र या व्याघ्र से तुलना किया

ही इस तरह जा रहे हैं जैसे तेज दाढ़ वाला मृगेन्द्र मदमस्त हाथी की ओर जाया करता है ॥ ११ ॥

सब—अरे, यह स्थान ज्योति से जला हुआ जैसा लग रहा है? यह क्या होगा?

प्रथमः—आ युद्धसामान्यजनितशङ्केन महेन्द्रेण प्रेषितो मातलि वाहितो रथः।

द्वितीयः—उपस्थितं मातलिं दृष्ट्वा तस्य वचनाद् रथमारूढवान् रामः।

तृतीयः—एष हि,

सुरवरजयदर्पदेशिकेऽस्मिन् दितिसुतनाशकरे रथे विभाति।

करते हैं—इस सम्बन्ध में तृतीय अंक के बीसवें श्लोक की टिप्पणी में विवेचन देखिए। मृगेन्द्र जैसे गजपति को तत्काल मार गिरा देता है, उसी तरह राम भी शीघ्र ही रावण को समाप्त कर देंगे—यहाँ यह ध्वनि निकलती है।

टीका—अयं देशः = स्थानम् प्रभया = दीप्त्या ज्वलितः = द्योतितः इवेत्युत्प्रेक्षायाम्। युद्धस्य सामान्यं = समानता (ष० तत्पु०) तस्मिन् जाता = उत्पन्ना (स० तत्पु०) शङ्का = संशयः (कर्मधा०) यस्य तेन (ब० व्री०) महेन्द्रेण = महता इन्द्रेण = शक्रेण (कर्मधा०) प्रेषितः = प्रहितः मातलिना = एतन्नामकेन इन्द्र-सारथिना वाहितः=चालितः (तृ० तत्पु०) रथः = स्यन्दनः अस्तीति शेषः।

टिप्पणी—युद्ध-सामान्य—सामान्य बराबरी को कहते हैं। इन्द्र ने देखा कि रावण तो रथ में चढ़ कर युद्ध कर रहा है जब कि राम पैदल ही लड़ रहे हैं। यह युद्ध बराबरी का नहीं हुआ। इस लिए उसे शंका हो गई और युद्ध में बराबरी लाने हेतु उसने राम के लिए भी अपना रथ भेज दिया।

टीका—सुरवरेति—अन्वयः—सुरवर० दितिसुत० अस्मिन् रथे एषः हि रामः रजनि० सन् पुरा त्रिपुरवधाय यथा कपर्दी तथा विभाति।

सुर०—जयश्च दर्पः = गर्वश्चेति जयदर्पौ (द्वन्द्वः) सुरेषु=वरः =

पहला—ओह! युद्ध की समानता के सम्बन्ध में शंकित हुए इन्द्र द्वारा भेजा हुआ, मातलि द्वारा हाँका हुआ रथ है।

दूसरा—मातलि को उपस्थित देखकर उसके कहने से राम रथ में चढ़ गए।

तीसरा—इन्द्र की विजय और गर्व के पथ-प्रदर्शक, दैत्यों का नाश कर

रजनिचरविनाशकारणः सन्त्रिपुरवधाय यथा पुरा कपर्दी ॥ १२ ॥

प्रथमः--अहो महत् प्रवृत्तं युद्धम् ।

शरज्ञरपरिपीततीव्रबाणं

नरवरनैर्ऋतयोः समीक्ष्य युद्धम् ।

श्रेष्ठः इन्द्रः इत्यर्थः (स० तत्पु०) तस्य जय--दर्पयोः (ष० तत्पु०) देशिके = पथप्रदर्शके (ष० तत्पु०) दिति० दितेः = एतन्नाम्न्याः कश्यप-प्रजापतेः पत्न्याः सुताः = पुत्राः (ष० तत्पु०) तेषां विनाशम् = क्षयम् करोतीति तथोक्ते (उपपदतत्पु०) अस्मिन् = एतस्मिन् रथे = मातलि–सञ्चालिते इन्द्र–रथे स्थितः इति शेषः एषः = अयम् रामः हि = निश्चयेन ('हि हेताव-वधारणे' इत्यमरः) रजनिचरस्य = राक्षसस्य रावणस्येत्यर्थः विनाशस्य = संहारस्य (ष० तत्पु०) कारणः = हेतुः सन् पुरा = प्राचीनकाले त्रिपुरस्य = त्रिपुरासुरस्य वधाय = विनाशाय यथा कपर्दी=महादेवः (विभाति स्म तथा) विभाति = शोभते । अत्रोपमा, पुष्पिताग्रा च वृत्तम् ॥ १२ ॥

व्याकरण—जयः √जि + अच् । दर्प = √दृप् + अच् देशिकः = देशाः = स्थानानि (परिचिताः) सन्ति अस्येति देश + ठन् । रजनिचरः = रजन्यां = रात्रौ चरतीति रजनि + √चर + टः । विनाशः वि + √नश् + घञ् । कारणः = 'हेतुर्ना कारणम्' इत्यमरकोषानुसारम् कारण–शब्देन नपुंसकेन भवितव्यमासीत् । सन् =√अस् + शतृ । वधः = √हन् + अप् वधादेशश्च । कपर्दी = कपर्दः = जटाजूटः अस्यास्तीति कपर्द + इन् ।

टिप्पणी--त्रिपुरवध – 'त्रीणि पुराणि यस्य सः' त्रिपुर नामक एक राक्षस था। मय नाम के शिल्पी ने उसके निवास हेतु आकाश, वायु और पृथिवी में क्रमशः सोने, चाँदी और लोहे के तीन पुर बना रखे थे। वह

देने वाले इस (रथ) में ये राम रावण के विनाश का कारण बने हुए इस प्रकार शोभित हो रहे हैं जैसे प्राचीन काल में त्रिपुरासुर के वध हेतु महादेव (शोभित हुए थे) ॥ १२ ॥

पहला—बाप रे बाप ! बड़ा भारी युद्ध छिड़ गया है। नर-श्रेष्ठ (राम) और राक्षस (रावण) का युद्ध—जिसमें (राम के) उत्कृष्ट बाण (रावण के)

विरतविविधशस्त्रपातमेते

हरिवरराक्षससैनिकाः स्थिताश्च ॥ १३ ॥

द्वितीयः--अहो नु खलु,

देवताओं को बहुत सताने लगा, तो वे महादेव के पास गए और उनसे रक्षा प्रार्थना की। देवताओं की प्रार्थना पर महादेव ने त्रिपुरासुर का वध किया और साथ ही उसके तीनों पुरों का उनमें रहने वाले राक्षसों सहित विध्वंस कर दिया। इसीलिए महादेव को त्रिपुरारि, त्रिपुरहर आदि विशेषणों से संबोधित किया जाता है।

टीका—शरवरेति०--अन्वयः--नरवर-नैर्ऋतयोः शरवर० युद्धम् समीक्ष्य एते हरिवर० विरत० स्थिताः च।

नरेषु=मनुष्येषु वरः = श्रेष्ठः (स० तत्पु०) नरश्रेष्ठः रामः इत्यर्थः च नैर्ऋतः = राक्षसः रावणश्चेति नरवर-नैर्ऋतौ० (द्वन्द्वः) तयो शरवर०-शरेषु =बाणेषु वरैः=श्रेष्ठैः (स० तत्पु०) रामस्य उत्तमैः बाणैरित्यर्थः परितः= समन्तात् पीताः = पानविषयीकृताः विनाशिताः इत्यर्थः (रावणस्य) तीव्राः= तीक्ष्णाः बाणाः=शराः (कर्मधा०) यस्मिन् तथा (ब० व्री०) तम् (जिसमें (रावण) तीक्ष्ण बाण (राम के) उत्तम बाणों द्वारा पिये गए हैं) युद्धम्= रणम् समीक्ष्य = दृष्ट्वा एते=इमे हरिषु=वानरेषु वरस्य=श्रेष्ठस्य (स० तत्पु०) सुग्रीवस्येत्यर्थः राक्षसस्य=असुरस्य च (द्वन्द्वः) रावणस्येत्यर्थः सैनिकाः=भटाः (ष० तत्पु०) विरत०-विरतः = रुद्धः विविधानाम्=नानाप्रकारणाम् शस्त्राणाम् आयुधानाम् (कर्मधा०) पातः = प्रक्षेपः (ष० तत्पु०) यस्मिन् कर्मणि (ब० व्री०) यथा स्यात्तथा (नाना प्रकार के शस्त्रों का प्रहार रोके हुए) स्थिताः=स्थितवन्तः। ते युद्धाद् विरम्य राम-रावणयोः महायुद्धं पश्यन्तीति भावः। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ १३ ॥

व्याकरण०— नैर्ऋतः = निर्ऋतेः अपत्यं पुमान् इति निर्ऋति+अण्।

तीक्ष्ण बाणों को निगल गए हैं—देखकर कपिवर (सुग्रीव) और राक्षस (रावण) के सैनिक (अपने) नाना प्रकार के शस्त्रों का प्रहार रोके खड़े हैं ॥ १३ ॥

दूसरा—सचमुच आश्चर्य है !

चारीभिरेतौ परिवर्तमानौ
रथे स्थितौ बाणगणान् वमन्तौ।
स्वरश्मिजालैर्धरणिं दहन्तौ
सूर्याविव द्वौ नभसि भ्रमन्तौ ॥ १४ ॥

तृतीयः--रावणमपि पश्यतां भवन्तौ।

परिपीत=परि + √पा + क्त। युद्धम्=√युध् + क्तः भावे। समीक्ष्य = सम् + √ईक्ष्+ल्यप्। राक्षसः = रक्षः एव रक्षस्+अण् स्वार्थे। सैनिकः=सेनायाः अयम् इति सेना + ठक्। विरत=वि + √रम् + क्त कर्तरि। पातः = √पत्+ घञ्। स्थित=√स्था + क्त कर्तरि।

टीका—चारीति। अन्वयः—रथे स्थितौ, चारीभिः परिवर्तमानौ, बाणगणान् वमन्तौ एतौ नभसि भ्रमन्तौ स्वरश्मिजालैः धरणिम् दहन्तौ द्वौ सूर्यौ इव (विभातः)।

रथे=स्यन्दने स्थितौ आसीनौ चारीभिः = (युद्धोपयुक्ताभिः) गतिभिः परिवर्तमानौ=इतस्ततः भ्रमन्तौ (युद्धोचित चालों में इधर-उधर घूमते हुए), बाणानाम् = शराणाम् गणान् = समूहान् (ष० तत्पु०) वमन्तौ=उद्गिरन्तौ वर्षन्तौ इत्यर्थः, एतौ=राम-रावणौ नभसि=आकाशे भ्रमन्तौ स्वस्य=आत्मनः रश्मीनाम्=किरणानाम् जालैः = समूहैः धरणिम्=पृथिवीम् दहन्तौ = प्लोषन्तौ द्वौ सूर्यौ = भास्करौ इव दृश्येते इति शेषः। अत्र युद्धस्थले भ्रमतोः बाणान् क्षिपतोश्च राम-रावणयोः आकाशे भ्रमतः रश्मिजालं क्षिपतश्च सूर्यद्वयस्य संभावनात् उत्प्रेक्षालंकारः। उपजातिः छन्दः ॥ १४ ॥

व्याकरण—स्थित=√स्था+क्तः कर्तरि। चारी=चरणम् चारीति √चर्+ घञ्+ङीप्। परिवर्तमान = परि+√वृत् + शानच्। वमन् = √वम्+शतृ। धरणिः = धरति जीवादीनीति √धृ+इनिः। दहन्=√दह्+शतृ। भ्रमन्=√भ्रम्+शतृ।

रथ में स्थित, (युद्धोचित) चालों से घूमते हुए, बाण-समूह छोड़ते हुए ये दोनों (राम और रावण) ऐसे लग रहे हैं मानो आकाश में घूमते हुए, अपने किरण-समूहों से पृथिवी को जलाते हुए दो सूर्य हों ॥ १४ ॥

तीसरा—आप दोनों रावण को भी देखें--

शरैर्भीमवेगैर्हयान् मर्दयित्वा ध्वजं चापि शीघ्रं बलेनाभिहत्य ।
महद् बाणवर्षं सृजन्तं नदन्तं हसन्तं नृदेवं भृशं भीषयन्तम् ॥ १५ ॥

प्रथमः--एष हि रामः,

टीका—शरैरिति–अन्वयः—भीमवेगैः शरैः हयान् मर्दयित्वा, ध्वजम् च अपि बलेन शीघ्रम् अभिहत्य महत् बाण-वर्षम् सृजन्तम्, नदन्तम्, हसन्तम् नृदेवम् भृशम् भीषयन्तम् (रावणम् अपि पश्येताम् भवन्तौ इति पूर्वेण अन्वेति) ।

भीमः = भयङ्करः वेगः = रयः (कर्मधा०) येषां तैः (ब० ब्रो०) हयान्= रामस्य रथस्य अश्वान् मर्दयित्वा=जर्जरीकृत्येत्यर्थः, ध्वजम्=पताकाम् अपि च बलेन=बलपूर्वकम् शीघ्रम्=अभिहत्य=आक्रम्य, महत्=विपुलम् बाणानाम्= शराणाम् वर्षम्=वृष्टिम् सृजन्तम्=जनयन्तम्, नदन्तम्=गर्जन्तम्, हसन्तम्= स्मयमानम् नृणाम्=नराणाम् देवम्=स्वामिनम् राममित्यर्थः भृशम्=अत्यन्तम् यथा स्यात्तथा भीषयन्तम्=भाययन्तम् रावणम् अपि पश्येताम्=अवलोकयेताम् । अत्र एकेन कर्म-कारकेण (रावणेन) अनेकक्रियाभिः योगात् दीपकालङ्कारः । भुजङ्गप्रयातं वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा—भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः ॥ १५ ॥

व्याकरण—भीम-–बिभेत्यस्मात् इति+√भि+मक् अपादानार्थे । मर्द-यित्वा=√मृद्+णिच्+क्त्वा, अभिहत्य=अभि+√हन्+ल्यप् । सृजत्=√सृज्+शतृ । भीषयत्=√भि+णिच्+शतृ । भी धातु को णिजन्त में विकल्प से 'आ' होता है । 'आ' होने के पक्ष में 'भाययति' और 'आ' के अभाव में 'षुक्' होकर आत्मनेपद 'भीषयते' बनता है किन्तु आत्मनेपद 'हेतु-भय' में ही होता है । यहाँ बाणों से भय पैदा करने की विवक्षा में 'करण-भय' में कवि ने परस्मैपद बनाया है । अधिक के लिए सिद्धान्तकौमुदी की ण्यन्त-प्रक्रिया देखिए ।

टीका—स्थानेति –अन्वयः सरलः ।

जो भयंकर वेग वाले बाणों द्वारा (राम के रथ के) घोड़ों को क्षत-विक्षत करके, झण्डे पर भी शीघ्र ही जोर का आघात करके बाण वर्षा कर रहा है, गर्ज रहा है और हँसते हुए नरपति (राम) को खूब डरा रहा है ॥ १५ ॥

पहला--सचमुच यह राम,

स्थानाक्रामणवामनीकृततनुः किञ्चित् समाश्वास्य वै
तीव्रं बाणमवेक्ष्य रक्तनयनो मध्याह्नसूर्यप्रभः ।
व्यक्तं मातलिना स्वयं नरपतिर्दत्तास्पदो वीर्यवान्
क्रुद्धः संहितवान् वरास्त्रममितं पैतामहं पार्थिवः ॥ १६ ॥

स्थानेति—स्थानेन = दृढस्थितया यत् आक्रामणम् = आक्रमणम् (तृ० तत्पु०) तस्मिन् वामनीकृता=न्युब्जीकृता तनुः=शरीरम् (कर्मधा०) येन सः (ब० व्री०) (दृढ़ स्थिति से आक्रमण करने में शरीर को बौना बनाये) किञ्चित्=ईषत् वै=निश्चयेन समाश्वास्य (?)=समाश्वस्य श्वास-ग्रहणं कृत्वेत्यर्थः तीव्रम्=तीक्ष्णम् वाणम्=रावण-प्रेरितं शरम् अवेक्ष्य=दृष्ट्वा, (क्रोधात्) रक्ते=लोहिते नयने=लोचने (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) मध्याह्नस्य= मध्याह्न-समयस्य यः सूर्यः=(ष० तत्पु०) तद्वत् प्रभा=कान्तिः=(उपमान-तत्पु०) यस्य सः (ब० व्री०) (मध्याह्न-सूर्य की-सी कान्ति वाले) व्यक्तम्= स्पष्टम् यथा स्यात्तथा मातलिना-इन्द्र-सारथिना स्वयम्=आत्मना दत्तम्= त्यक्तमित्यर्थः आस्पदम् = स्थानं (कर्मधा०) यस्मै सः (ब० व्री०) (स्वयं मातलि ने जिनको प्रहार हेतु स्थान दे दिया था) वीर्यवान्=वीरः नरपतिः= नराणां पालकः पार्थिवः राजा राम इत्यर्थः क्रुद्धः=कुपितः सन् अमितम्= अपरिमेयम् अतिवृहत् इति यावत् पैतामहम्=ब्राह्मम् वरम्=उत्कृष्टम् अस्त्रम्= प्रक्षेपास्त्रम् संहितवान् = धनुषि आरोपितवान् । रावणवधाय ब्रह्मास्त्रं धनुषि आरोपितवान् इति भावः । अत्र मध्याह्नसूर्यस्य प्रभया रामप्रभाया सादृश्यविधानात् उपमा रामे अनेकक्रियान्वयच्च दीपकमपि । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । ॥१६॥

व्याकरण—स्थानम्= √स्था + ल्युट् भावे । आक्रामणम्=यहाँ आ+√क्रम्+ल्युट् में आक्रमणम् होना चाहिये था । 'प्रज्ञादित्वात्' स्वार्थ में 'अण्' करने

दृढ़ स्थिति से आक्रमण में शरीर को बौना बनाये, कुछ साँस खींचकर, (रावण का) तीक्ष्ण बाण देखकर आँखें लाल किये, मध्याह्नकालीन सूर्य का सा तेज रखे, स्पष्टतः मातलि द्वारा स्वयं (खिसककर रथ में) दिया हुआ स्थान प्राप्त किये सौर्यशाली नरपति राजा (राम) ने क्रुद्ध हो बड़ा भारी उत्कृष्ट ब्रह्मास्त्र (धनुष पर) चढ़ा दिया ॥ १६ ॥

द्वितीयः—एतदस्त्रं,

रघुवरभुजवेगविप्रविमुक्तं
ज्वलनदिवाकरयुक्ततीक्ष्णधारम् ।

से ही 'आक्रामणम्' बन सकेगा । वामनीकृता—अवामना वामना सम्पाद्यमाना कृता वामनीकृता इति वामन+च्वि+√कृ+क्त+टाप् । समाश्वास्य=यहाँ सम्+आ √श्वस्+ल्यप् में समाश्वस्य होना चाहिए था । णिच् पाणिनि व्याकरण के विरुद्ध है । अवेक्ष्य=अव+√ईक्ष्+ल्यप् । मध्याह्नः = अह्नः=दिवसस्य मध्यम् इति मध्यशब्दस्य पूर्वनिपात। अहन्-शब्दस्य च अह्लादेशः । वीर्यवान्=वीरस्य भावः वीर्यम् तदस्यास्तीति वीर्य+मतुप् । क्रुद्धः=√क्रुध्+क्तः कर्तरि । पार्थिवः= पृथिव्याः (पालकः) अयम् इति पृथिवी+अण् । अमितम्=न मितम्=परि-मितम् इति √मा+क्तः । पैतामहम्=पितामहस्य (ब्रह्मणः) इदम् इति पिता-मह+अण् । संहितवान्=सम् + धा + क्तवतु, धास्थाने हिः । 'नरपति' और 'पार्थिव' में पुनरुक्ति है ।

टिप्पणी - स्थानाक्रमणम्—'स्थानं यहाँ सामरिक भाषा का शब्द है, देखिये आप्टे डिक्शनरी—'स्थान—(In polities and war etc.) The firm attitude or bearing of troops, standing firm so as to repd a charge' । जब शत्रु पर बन्दूक से गोली चलानी होती है अथवा किसी जानवर का शिकार करना होता है तो उसके लिए शरीर को विशेष स्थिति में रखना पड़ता है । यही बात धनुष से बाण छोड़ने में भी होती है । बायें पैर को आगे कुछ झुका कर और दायें पैर को पीछे कुछ टेढ़ा करके शरीर कुछ बौना-सा बनाना पड़ता है, तब बाण छोड़ते हैं । ऐसी स्थिति को आप बाण छोड़ते हुए राम, अर्जुन आदि के चित्रों में देख सकते हैं ।

टीका—रघुवरेति—अन्वयः—रघुवर० ज्वलन० (एतत् अस्त्रम्) सङ्ख्ये रजनि० निहत्य पुनः शीघ्रम् रामम् एव अभिगच्छति ।

दूसरा—राम के बाहु-वेग से छोड़ा हुआ, अग्नि और सूर्य को (अपनी) तेज धार में रखे यह अस्त्र युद्ध में राक्षसराज (बाण) को मारकर फिर शीघ्र

रजनिचरवरं निहत्य सङ्ख्ये
पुनरभिगच्छति राममेव शीघ्रम् ॥ १७ ॥

सर्वे—हन्त निपातितो रावणः ।

प्रथमः—रावणं निहतं दृष्ट्वा पुष्पवृष्टिर्निपातिता ।
एता नदन्ति गम्भीरं भेर्यस्त्रिदिवसद्मनाम् ॥ १८ ॥

रघु०—रघुषु=रघुवंशीयेषु नृपेषु वरः=श्रेष्ठः (ष० तत्पु०) राम इत्यर्थः तस्य भुजस्य=बाहोः (ष० तत्पु०) वेगेन=रयेण (ष० तत्पु०) विप्रमुक्तम्=त्यक्तम् (तृ० तत्पु०) (राम के बाहु-वेग से छोड़ा हुआ) ज्वलन०—ज्वलनः=अग्निश्च दिवाकरः=सूर्यश्च (द्वन्द्वः) ताभ्याम् युक्ता= मिलिता (तृ० तत्पु०) तीक्ष्णा = निशिता (कर्मधा०) धारा=अग्रम् (कर्मधा०) यस्य तत् (ब० व्री०) (जिसकी तेज धार में अग्नि और सूर्य लगे हुए हैं) एतत् अस्त्रम् = ब्रह्मास्त्रम् सङ्ख्ये = युद्धे ('युद्धमायोधनं····। मृधमास्कन्दनं संख्यम्' इत्यमरः) रजनिचरेषु=राक्षसेषु मुख्यम्=प्रधानम् रावणमित्यर्थः निहत्य=हत्वा पुनः=भूयः शीघ्रम्=त्वरितम् रामम् एव अभिगच्छति=प्राप्नोति । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ १७ ॥

व्याकरण—विप्रमुक्त = वि + प्र + √मुच् + क्त । ज्वलनः=√ज्वल-तीति √ज्वल् + ल्युट् । दिवाकरः= दिवा(अव्य०)=दिनम् करोतीति दिवा+√कृ + अच् युक्त=√युज्+क्तः । रजनिचरः=रजन्यां=रात्रौ चरतीति रजनि + √चर्+ट । निहत्य=नि+√हन्+ल्यप् ।

टीका—निपातितः=धराशायीकृतः, मारित इत्यर्थः सरलः अन्वयः ।

रावणमिति—रावणम् निहतम्=मारितम् दृष्ट्वा=विलोक्य पुष्पाणाम्=कुसुमानाम् वृष्टिः=वर्षम् निपातिता=उपरिष्टात् देवैः गन्धर्वसिद्धादिभिश्च कृता इत्यर्थः ।

एताः=इमाः त्रिदिवः=स्वर्गः ('स्वरव्ययं स्वर्ग-नाक-त्रिदिव-त्रिदशा-

---

ही राम के पास वापस आ जाता है ॥ १७ ॥

सब—हा ! रावण धराशायी कर दिया गया है ।

पहला—रावण को मारा हुआ देखकर देवताओं ने पुष्प-वर्षा की देवताओं के ये नगाड़े जोर-जोर से बज रहे हैं ॥ १८ ॥

द्वितीयः--भवतु । सिद्धं देवकार्यम् ।

प्रथमः--तदागम्यताम् । वयमपि तावत् सर्वहितं रामं सम्भाव-यिष्यामः ।

उभौ--बाढम् । प्रथमः कल्पः ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

विष्कम्भकः ।

लयाः' इत्यमरः) सद्म=गृहम् ('वेश्म सद्म निकेतनम्' इत्यमरः) (कर्मधा०) येषां तथाभूतानाम् देवतानामित्यर्थः (ब० व्री०) भेर्यः=दुन्दुभयः ('भेरी स्त्री दुन्दुभिः पुमान्' इत्यमरः) गम्भीरम्=उच्चैः यथा स्यात् तथा नदन्ति=शब्दायन्ते । अनुष्टुप् ॥ १८ ॥

व्याकरण – निहत्=नि+√हन्+क्त । दृष्ट्वा=√दृश्+क्त्वा । वृष्टिः=√वृष्+क्तिन् । निपातित=नि+√पत्+णिच्+क्त ।

टीका –व्याक०—सिद्धम्=√सिध्+क्तः, सम्पन्नम् देवानाम् = सुराणाम् कार्यम् (ष० तत्पु०) । आगम्यताम् = आ + √गम् + लट् भाववाच्ये । सर्वेभ्यः=सकलेभ्यः लोकेभ्यः हितम्=हितकारणम् सर्वोपकारकमित्यर्थः (च० तत्पु०) संभावयिष्यामः = सम् + √भू + णिच्+लृट् सत्करिष्यामः । प्रथमः कल्पः=विचारः इत्यर्थः ।

टिप्पणी --विष्कम्भकः—इस सम्बन्ध में अङ्क द्वितीय, चतुर्थ और पञ्चम के विष्कम्भक देखिए । यहाँ भास ने नाटयविधान के अनुसार अवश्य युद्ध का दृश्य रंगमञ्च पर नहीं दिखाया जैसे पीछे वाली-सुग्रीव का युद्ध दिखाया था । कारण स्पष्ट है । वाली और सुग्रीव दो ही व्यक्ति थे, इसलिए दोनों का युद्ध

दूसरा—अस्तु । देवताओं का काम बन गया है ।

पहला—तो आओ, अब हम भी सभी का भला करने वाले राम का आदर सम्मान करेंगे ।

दोनों—हाँ, उत्तम विचार है ।

(सब के सब चल पड़े)

विष्कम्भक ।

(ततः प्रविशति रामः ।)

रामः—

हत्वा रावणमाहवेऽद्य तरसा मद्बाणवेगार्दितं
कृत्वा चापि विभीषणं शुभमतिं लङ्केश्वरं साम्प्रतम् ।

रङ्गमञ्च पर दिखाने में कोई कठिनाई नहीं थी, किन्तु वानरों और राक्षसों की विशाल सेना के साथ रथारूढ हुए राम और रावण का युद्ध रङ्गमञ्च पर दिखाना सम्भव नहीं था, अतएव भास ने विद्याधरों का प्रवेश करवाकर उनके मुख से ही युद्ध का वर्णन कराया है। दर्शक लोगों को राम-रावण-युद्ध और रावण-वध की सूचना देकर विद्याधर रंगमञ्च से चले जाते हैं और आगे की घटना मञ्च पर अभिनीत होने लगती है। विद्याधर उच्च वर्ग के पात्र हैं और सभी संस्कृत बोलते हैं, इसलिए यह (शुद्ध) विष्कम्भक कहलाता है। वास्तव में रङ्गमञ्च पर विद्याधरों का प्रवेश करवाना भी सम्भव नहीं है।

टीका—हत्वेति—अन्वयः—अद्य आहवे मद्बाण० रावणम् तरसा हत्वा, शुभमतिम् विभीषणम् च साम्प्रतम् लङ्केश्वरम् कृत्वा, दोर्भ्याम् अनल्प० प्रतिज्ञार्णवम् च तीर्त्वा बन्धु-सहितः (अहम्) सीताम् समाश्वासितुम् लङ्काम् अभ्युपयामि। अद्य आहवे = युद्धे ('संग्रामाभ्यागमाहवाः' इत्यमरः) मम बाणः = शरः मद्बाणः (ष० तत्पु०) तस्य यः वेगः = रयः (ष० तत्पु०) तेन अर्दितम् = आहतम् रावणम् तरसा = शीघ्रम् हत्वा = व्यापाद्य, शुभा = कल्याणी मतिः = बुद्धिः (कर्मधा०) यस्य तथाभूतम् (ब० व्री०) विभीषणम् = रावणानुजम् साम्प्रतम् = इदानीम् लङ्कायाः ईश्वरम् (ष० तत्पु०) लङ्काधिपतिमित्यर्थः कृत्वा = विधाय दोर्भ्याम्=भुजाभ्याम् अनल्पानि=बृहन्ति महान्ति इत्यर्थः सत्त्व-चरितानि (कर्मधा०) सत्त्वस्य = बलस्य चरितानि = कार्याणि (ष० तत्पु०) यस्यां (प्रतिज्ञायाम्) तां (ब० व्री०) अर्णवपक्षे अनल्पानां = बहूनाम् सत्त्वानाम् =

(तदनन्तर राम प्रवेश करते हैं।)

राम—आज युद्ध में मेरे (=अपने) बाण के वेग से चोट खाये रावण को शीघ्र ही मारकर, शुभ मति वाले विभीषण को अब लंका का राजा बनाकर भुजाओं द्वारा सत्त्व (बल) के अनल्प (बड़े-बड़े) चरितों (कार्यों) वाली प्रतिज्ञा-रूपी

तीर्त्वा चैवमनल्पसत्त्वचरितं दोर्भ्यां प्रतिज्ञार्णवं

लङ्कामभ्युपयामि बन्धुसहितः सीतां समाश्वासितुम् ॥ १९ ॥

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः । आर्य ! एषा ह्यार्यायस्य समीपमुपसर्पति ।

रामः—वत्स ! लक्ष्मण !

जीवानाम् चरितम् = चरणम्, सञ्चरणम् इतस्ततः परिभ्रमणमिति यावत् यस्मिन् (अर्णवे) तम् प्रतिज्ञा = प्रणः एव अर्णवः = समुद्रः (कर्मधा०) तम् तीर्त्वा = उत्तीर्य बन्धुना = बान्धवेन भ्रात्रा लक्ष्मणेनेत्यर्थः सहितः = युक्तः (तृ० तत्पु०) सीताम् समाश्वासितुम् (?)=समाश्वासयितुम् लङ्काम् अभ्युपयामि=अभिगच्छामि। अत्र प्रतिज्ञायाम् अर्णवस्य आरोपात् रूपकालङ्कारः, सच 'अनल्पसत्त्वचरिते, श्लेषात् श्लेषानुप्राणितः । एकस्मिन् कारके (रामे) अनेक क्रियाणां सम्बन्धाच्च दीपकालङ्कारोऽपि इति द्वयोः अलङ्कारयोः अत्र संसृष्टिः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १९ ॥

व्याकरण--आहवः—आहूयन्ते = युद्धार्थं परस्परम् आकार्यन्ते भटा यत्रेति आ + √ ह्वे + अप् अधिकरणे । अर्दित=√ अर्द + क्त । हत्वा = √ हन् + क्त । चरित-√चर्+क्तः, भावे। समाश्वासितुम्—पाणिनि-व्याकरण के अनुसार यहां √ समाश्वस् का णिजन्त में 'तुम' प्रत्यय लगने से समाश्वासयितुम् रूप बनाना चाहिए था; समाश्वासितुम् गलत है। अभ्युपयामि = अभि + उप + √ या + लट् उत्त० ।

टीका—एषा आर्या = आदरणीया जनकनन्दनीत्यर्थः आर्यस्य = भवतः समीपम् उपसर्पति = उपयाति ।

अनल्प (अनेक) सत्त्वों (जीवों) चरित्र (संचरण) से युक्त समुद्र को पार करके बन्धु (लक्ष्मण) सहित मैं सीता को आश्वासन देने हेतु लंका जा रहा हूं ॥ १९ ॥

(प्रवेशकर के) लक्ष्मण—आर्य की जय हो । आर्य ! ये आर्या सीता आपके पास आ रही हैं ।

राम—तात लक्ष्मण !

अपायाच्च हि वैदेह्या उषिताया रिपुक्षये ।
दर्शनात् साम्प्रतं धैर्य मन्युर्मे वारयिष्यति ॥ २० ॥

विभीषणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (निष्क्रान्तः ।)

(प्रविश्य)

विभीषणः—जयतु देवः ।

एषा हि राजंस्तव धर्मपत्नी
त्वद्बाहुवीर्येण विधूतदुःखा ।

अपायादिति—अन्वयः—अपायात् हि रिपु-क्षये उषितायाः च वैदेह्याः दर्शनात् मन्यु मे धैर्यम् साम्प्रतम् वारयिष्यति । अपायात् = मां विरहय्य दूरमपगमनात् रिपोः=शत्रोः रावणस्ययेत्यर्थः क्षये = निलये गृहे इति यावत् ('निलयापचयौ क्षयौ' इत्यमरः) उषितायाः = वासं कृतवत्याः वैदेह्याः = सीतायाः दर्शनात् = अवलोकनात् मन्युः = क्रोधः हि = निश्चयेन मे = मम धैर्यम् = उत्साहमित्यर्थः वारयिष्यति = रोत्स्यति । सीताहि मत्तः दूरमपेता, शत्रु-गृहे च निवासं कृतवती, अतः मे क्रोधः मयि तद्दर्शनोत्सहं निवारयति, अहमिदानी तां द्रष्टुं नोत्सहे इति भावः । अत्र कारणोक्तेः काव्यलिंगालंकारः । अनुष्टुप् ॥ २०॥

व्याकरण—अपायः = अप + √ इ + अच् । उषित् √वस् + क्तः, वस्य उः, सस्य च षः । क्षयः=क्षियन्ति =निवसन्ति अत्रेति √क्षि = अच् अधिकरणे । दर्शनम् √ दृश् + ल्युट् । धैर्यम् + धीरस्य भावः इति धीर + ष्यञ् ।

टीका=एषेति – अन्वयः – हे राजन् ! त्वद्बाहुवीर्येण विधूत-दुःखा एषा हि सा तव धर्मपत्नी पुरा दैत्य-कुल-च्युता लक्ष्मीः इव तव प्रसादात् (त्वाम्) समुपस्थिता (अस्ति) ।

(मुझसे) दूर चली जाने के कारण तथा शत्रु के घर में निवास किये हुए सीता को देखने से क्रोध मेरे उत्साह को निश्चय ही रोक देगा ॥ २० ॥

लक्ष्मण—जैसी आपकी आज्ञा ।

(प्रवेश करके) विभीषण—महाराज की जय ।

हे राजन् ! आपके भुज-वीर्य से जिसकी विपत्ति दूर कर दी गई है,

लक्ष्मीः पुरा दैत्यकुलच्च्युतेव
तव प्रसादात् समुपस्थिता सा ॥ २१ ॥

रामः—विभीषण ! तत्रैव तावत् तिष्ठतु रजनिचरावमर्शजातकल्मषा इक्ष्वाकुकुलस्याङ्कभूता। राजानं दशरथं पितरमुद्दिश्य न युक्तं भो लङ्काधिपते ! मां द्रष्टुम् । अपि च,

---

हे राजन् = नृप ! तव बाह्वोः = भुजयोः (ष० तत्पु०) वीर्येण = शौर्येण (ष० तत्पु०) विधूतम् = निराकृतम् दुःखम्=विपत्तिः (कर्मधा०) यस्या सा (ब० व्री०) (आपके भुज-वीर्य से जिसकी विपत्ति दूर कर दी गई) सा तव धर्मपत्नी = भार्या पुरा = प्राचीनकाले दैत्यानाम् = दानवानाम् कुलात्=वंशात् (प० तत्पु०) च्युता = मुक्ता (ष० तत्पु०) लक्ष्मीः = श्रीः इव तव प्रसादात्= अनुग्रहात् समुपस्थिता = आगता अस्तीति शेषः। अत्रोपमालंकारः। उपजातिः वृत्तम् ॥ २१ ॥

व्याकरण—वीर्यम् = वीरस्य भाव इति वीर + ष्यञ्, विधूत वि + धू + क्त। दैत्यः=दितेः अपत्यम् पुमान् इति दिति + ण्यः। च्युत = √ च्यु + क्त। प्रसादः=प्र √सद्+घञ्। समुपस्थित–सम् + उप + √ स्था + क्तः, कर्तरि।

टीका—रजनि—रजनिकरस्य = राक्षसस्य रावणस्येत्यर्थः यः अवमर्शः सम्पर्कः (ष० तत्पु०) रावणकर्तृकसंसर्गः इति यावत् तेन जातम्= उत्पन्नम् कल्मषम् = लाञ्छनम् (तृ० तत्पु०) यस्यां सा (ब०व्री०) (रावण से संपर्क होने से जिसपर लाञ्छन लगा हुआ है) इक्ष्वाकोः = अस्मद्वंश-प्रवर्तकस्य राज्ञः कुलस्य वंशस्य (ष० तत्पु०) अङ्कभूता=कलङ्कभूता (ष० तत्पु०) उद्दिश्य =लक्ष्यीकृत्य अर्थात् यदा अहं स्वपितरं स्मरामि न युक्तम्=उचितम्। अत्र न युक्ता इति, अथवा ०कल्मषायाः ०अङ्कभूतायाः इति वक्तव्यमासीत्।

ऐसी आपकी वह यह धर्मपत्नी प्राचीन समय में दैत्य-कुल से उन्मुक्त लक्ष्मी की तरह आप की कृपा से आ पहुँची है ॥ २१ ॥

राम—विभीषण ! अभी वह वहीं ठहरे। रावण के सम्पर्क से दूषित हुई, इक्ष्वाकु-कुल की कलंक-रूप पिता दशरथ का विचार करके उसका मुझे देखना हे लंकापति ! ठीक नहीं है। और भी—

मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु च ।
निवारयति यो राजन् ! स मित्रं रिपुरन्यथा ॥ २२ ॥

विभीषणः—प्रसीदतु देवः ।

रामः—नार्हति भवानतः परं पीडयितुम् ।

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः—जयत्वार्यः । आर्यस्याभिप्रायं श्रुत्वैवाग्निप्रवेशाय प्रसादं प्रतिपालयत्यार्या ।

टीका—मज्जेति—अन्वयः—हे राजन् ! यः अकार्येषु विषयेषु (च) मज्जमानम् पुरुषम् निवारयति, स वै मित्रम् अन्यथा (सः) रिपुः । हे राजन् ! यः जनः अकार्येषु = अनुचितेषु कर्मसु विषयेषु = इन्द्रियोपभोग्य-वस्तुषु च मज्जमानम् (?) = निमग्नीभवन्तम् पुरुषम् = जनम् निवारयति – निरुणद्धि सः वै = निश्चयेन मित्रम् = सखा अन्यथा = इतरथा अर्थात् यदि स एवं न करोति, तर्हि रिपुः = शत्रुः अस्तीति शेषः । अनुष्टुप् ॥ २२ ॥

व्याकरण—मज्जमानम् = पाणिनि –व्याकरण के अनुसार यहाँ परस्मैपद में 'मज्जन्तम्' होना चाहिए था, आत्मनेपद अशुद्ध है । निवारयति = नि+वृ+णिच्+लट् ।

टिप्पणी—भास ने यहाँ मित्र का अच्छा लक्षण किया है । मित्रका यह दायित्व है कि वह बुरे कामों से हमें रोके और विषयोपभोगों से भी बचाए । बुरे काम और विषयासक्ति ये दोनों ही जीवन के विनाशक हैं, जिनसे बचाना मित्र का धर्म है । राम का अपने मित्र विभीषण पर यह एक आक्षेप ही समझो कि वह रावण-संपर्क से दूषित सीता को ग्रहण करने का अनुरोध कर रहा है जो कि अनुचित कार्य है ।

हे राजन्, जो बुरे कामों और विषय-भोगों में डूबते हुए मनुष्य को हटाता है, वह वास्तव में मित्र है, अन्यथा वह शत्रु है ॥ २२ ॥

विभीषण—प्रसन्न हूजिए महाराज ।

राम—आप मुझे इससे अधिक तंग न कीजिए ।

(प्रवेश करके) लक्ष्मण—आर्य की जय हो । आर्य का अभिप्राय सुनते ही आर्या अग्नि-प्रवेश हेतु आपकी अनुमति की प्रतीक्षा कर रही हैं ।

रामः—लक्ष्मण ! अस्याः पतिव्रतायाश्छन्दमनुतिष्ठ ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (परिक्रम्य) भोः ! कष्टम् ।

विज्ञाय देव्याः शौचं च श्रुत्वा चार्यस्य शासनम् ।
धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिर्दोलायते मम ॥ २३ ॥

कोऽत्र ?

टीका—न अर्हति = न योग्योऽस्ति अतः = अस्मात् परम् = अधिकम् पीडयितुम् = खेदयितुम् उपरोद्धुमित्यर्थः । आर्यस्य भवतः अभिप्रायम् = आशयम् इच्छामित्यर्थः श्रुत्वा = आकर्ण्य अग्नौ = वह्नौ प्रवेशः = तस्मै (स० तत्पु०) प्रसादम् = अनुग्रहम् अनुमतिमिति यावत् प्रतिपालयति = प्रतीक्षते । पतिव्रतायाः = सत्याः नार्याः छन्दम् = अभिलाषम् अनुतिष्ठ = कुरु। अर्थात् तस्या इच्छानुसारेण तस्याः अग्निप्रवेशस्य प्रबन्धं कुरु ।

विज्ञायेति—अन्वयः—देव्याः शौचम् विज्ञाय आर्यस्य च शासनम् श्रुत्वा धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता मम बुद्धिः दोलायते ।

देव्याः = महिष्याः जनकसुतायाः शौचम् = शुद्धताम् विज्ञाय = बुद्ध्वा आर्यस्य = भ्रातुः रामस्येत्यर्थः शासनम् = आज्ञाम् श्रुत्वा = आकर्ण्य धर्मश्च स्नेहः = अनुरागश्च (द्वन्द्वः) तयोः अन्तरे = मध्ये (ष० तत्पु०) न्यस्ता = स्थिता इत्यर्थः मम बुद्धिः = मतिः दोलायते = द्वैधीभवतीत्यर्थः । भ्रातुः आज्ञापालने निजधर्मं मत्वा सा अग्नौ प्रवेशयितव्या अथवा तस्याः शुद्धचरित्रतां तस्यां स्नेहञ्च विचार्य सा अग्नौ न प्रवेशयितव्येति मे मनः संशयारूढं वर्तते इति भावः । अत्र 'दोलायते' इत्युपमा । सन्देहस्य वास्तवत्वात् सादृश्यानुपस्थापितत्वाच्च सन्देहालंकारो न प्रसज्यते । अनुष्टुप् ॥ २३ ॥

व्याकरण—विज्ञाय = वि + √ज्ञा + ल्यप् । शौचम् = शुचेः भावः इति शुचि + अण् । श्रुत्वा = √श्रु + क्त्वा । शासनम् = √शास् + ल्युट् ।

राम—लक्ष्मण ! इस पतिव्रता की इच्छा पूरी करो ।

लक्ष्मण—जैसी आप की आज्ञा । (घूमकर) अरे ! बड़े दुःख की बात है ।
देवी (सीता) की पवित्रता जानकर और आर्य (राम) की आज्ञा सुनकर धर्म और स्नेह के मध्य पड़ी हुई मेरी बुद्धि झूला-जैसे झूल रही है ॥ २३ ॥
यहाँ कौन है ?

(प्रविश्य)

हनूमान्—जयतु कुमारः।

लक्ष्मणः—हनूमन्! यदि ते शक्तिरस्ति, एवमाज्ञापयत्यार्यः।

हनूमान्—अत्र किं तर्कयति कुमारः।

लक्ष्मणः—निष्फलो मम तर्कः। अथवा वयमार्यस्याभिप्रायमनुवर्तितारः। गच्छामस्तावत्।

हनूमान्—यदाज्ञापयति कुमारः। (निष्क्रान्तौ।)

न्यस्त = नि + √अस् + क्त। बुद्धिः = √बुध् + क्तिन् करणे। दोलायते = दोला = प्रेंखा हिंदोल इति यावत् तद्वत् आचरतीति दोला + क्यङ्।

टिप्पणी—धर्मस्नेहान्तरे—झूले (दोला) से तुलना करके लक्ष्मण के मन की अवस्था का भास ने बड़ा अच्छा चित्रण किया है। एक तरफ भाई की आज्ञा है जिसका पालन करना लक्ष्मण का कर्तव्य है, दूसरी ओर सती-सीता के प्रति उसका निश्छल स्नेह है जो उसे कर्तव्य-पालन से रोक रहा है। इस तरह लक्ष्मण का मन कर्तव्य और भावना के संघर्ष में उलझ गया है। हनूमान से भी परामर्श किया, पर सारा तर्क निष्फल हो गया और अन्त में कर्तव्य ही विजयी हुआ। भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण में भी महासेन द्वारा पुत्रियों का विवाह करने या न करने के सम्बन्ध में माताओं के मन का भी ऐसा ही चित्रण करवा रखा है—अदत्तेत्यागता लज्जा दत्तेति व्यथितं मनः। धर्मस्नेहान्तरे न्यस्ता दुःखिताः खलु मातरः॥ (२।७) इस-जैसे ही भाव के लिए इसी नाटक के द्वितीय अंक में सीता की उक्ति देखिए—'सुखस्य दुःखस्य चान्तरे दोलायत इव में हृदयम्'।

(प्रवेश करके) हनूमान्—कुमार की जय हो।

लक्ष्मण—हनूमान्! यदि तुम में (आज्ञा-पालन करने की) शक्ति है, तो आर्य ऐसी आज्ञा दे रहे हैं।

हनूमान्—इस विषय में आपका क्या विचार है?

लक्ष्मण—मेरा विचार निष्फल है। अथवा हम तो आर्य की इच्छा के पीछे-पीछे चलने वाले हैं। तो चलें। (दोनों चले गए)

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः--प्रसीदत्वार्यः। आर्य! आश्चर्यमाश्चर्यम्। एषा ह्यार्या,

विकसितशतपत्रदामकल्पा ज्वलनमिहाशु विमुक्तजीविताशा।
श्रममिह तव निष्फलं च कृत्वा प्रविशति पद्मवनं यथैव हंसी ॥ २४ ॥

टीका—शक्तिरस्ति (आज्ञां पालयितुं) शक्नोषि इत्यर्थः। एवम् आज्ञापयति = आदिशति। तर्कयति = विचारयति, निष्फलः = व्यर्थः। अभिप्रायम् = अभिलाषमित्यर्थः। अनुवर्तितारः = अनु + √वृत् + तृन् (तृन्—प्रत्ययान्तत्वेन षष्ठयाः निषेधः अतः द्वितीया एव) अनुसर्तारः अर्थात् आज्ञापालका वयम्।

विकसितेति—अन्वयः—विकसित० विमुक्त० इह तव श्रमम् निष्फलं कृत्वा यथा एव हंसी पद्मवनम् (तथैव) इह आशु ज्वलनम् प्रविशति।

विकसित०—विकसितानि = प्रफुल्लितानि यानि शतपत्राणि=कमलानि (कर्मधा०) तेषां यत् दाम = माला (ष० तत्पु०) ईषद् ऊनम् विकसितशतपत्रदाम इति० कल्पा तत्सदृशीत्यर्थः (खिले हुए कमलों की माला-जैसी) विमुक्ता = त्यक्ता जीविताशा (कर्मधा०) जीवितस्य = प्राणानाम् आशा (ष० तत्पु०) यया सा (ब० व्री०) (जीवन की आशा छोड़े) इह=अग्निप्रवेशसम्बन्धे तव श्रमम् = प्रयत्नम् निष्फलम् व्यर्थं कृत्वा = विधाय यथा एव हंसी = हंसस्त्री पद्मानाम् = कमलानाम् वनम् (ष० तत्पु०) (तथा एव) इह अत्र (स्वयमेव) आशु = शीघ्रम् ज्वलनम् = अग्निम् प्रविशति = प्रविष्टा भवति। भवतः तत्परीक्षणार्थं प्रयत्नस्य आवश्यकता नास्ति। सा स्वयमेव स्वपरीक्षां ददातीति भावः। अत्र शतपत्रदामकल्पा तथा यथैव हंसीत्युपमाद्वयस्य संसृष्टिः। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ २४ ॥

(प्रवेश करके) लक्ष्मण—(दोनों चले गए) प्रसन्न हूजिए। आर्य! आश्चर्य है, आश्चर्य है।

खिले हुए कमलों की माला—जैसी, प्राणों की आशा छोड़े हुए यह आर्या (देवी) इस सम्बन्ध में आपके प्रयत्न को व्यर्थ कर के (स्वतः) अग्नि में शीघ्र इस तरह प्रवेश कर रही हैं जैसे हंसिनी कमल—वन में (प्रवेश किया करती है) ॥२४॥

रामः—आश्चर्यमाश्चर्यम् । लक्ष्मण ! निवारय, निवारय ।

लक्ष्मणः –यदाज्ञापयत्यार्यः ।

(प्रविश्य)

हनूमान्: जयतु देवः ।

एषा कनकमालेव ज्वलनाद् वर्धितप्रभा ।
पावन पावकं प्राप्य निर्विकारमुपागता ॥ २५ ॥

व्याकरण—शतपत्रम् = शतम् = शतसंख्यकानि पत्राणि = दलानि (पंखुड़ियाँ) यस्मिन् तत् (ब० व्री०) । ०दाम–कल्पा = ०दाम + कल्पप् + टाप् । ज्वलनः = ज्वलतीति √ज्वल् + ल्युट् । इह = इदम् + ह इशादेशश्च (सप्तम्यर्थे) । विमुक्त वि + √मुच् + क्त । जीवितम्= √जीव् + क्तः भावे । श्रमः = √श्रम् + घञ्, न वृद्धिः । यथा = √यत् + थाल् (प्रकारवचने) ।

टीका – एषेति —अन्वयः – एषा पावना (देवी) पावकम् प्राप्य कनकमाला इव वर्धितप्रभा (सती) ज्वलनात् निर्विकारम् उपागता ।

एषा = इयम् पावना = पवित्रा (देवी) पावकम् = वह्निम् प्राप्य = प्रविश्येत्यर्थः कनकस्य = सुवर्णस्य माला = हारः (ष० तत्पु०) इव वर्धिता= वृद्धिम् प्रापिता प्रभा = कान्तिः (कर्मधा०) यस्याः सा (ब० व्री०) सती ज्वलनात् = वन्हेः अभ्यन्तरात् इत्यर्थः निर्विकारम् = निर् = न विकारः= परिवर्तनं दाहादिरूपम् यस्मिन् कर्मणि (ब० व्री०) यथा स्यात्तथा = यस्मिन् कर्मणि (ब० व्री०) यथा स्यात्तथा = यथावत् (ज्यों की त्यों) उपागता = बहिरागता । अग्नौ न दग्धा, न चापि क्षत-विक्षता जातेति भावः । अत्र कनकमाला इवेति उपमा, 'पावक' शब्दस्य सार्थकविशेष्यत्वेन परिकराङ्कुरः, 'पाव' 'पावं' इति छेकानुप्रासः इत्येतेषां संसृष्टिः । अनुष्टुप् ॥ २५ ॥

राम—आश्चर्य-आश्चर्य । लक्ष्मण ! रोको, रोको ।

लक्ष्मण—जैसी आप की आज्ञा ।

(प्रवेश करके) हनूमान्—महाराज की जय हो ।

यह पवित्र (देवी) अग्नि को प्राप्त करके सुवर्ण-माला की तरह वृद्धि को प्राप्त हुई कान्ति से युक्त हो ज्यों की त्यों अग्नि से (बाहर) निकल आई हैं ॥ २५ ॥

रामः—(सविस्मयम्) किमिति किमिति ?

लक्ष्मणः— अहो, आश्चर्यम् ।

(प्रविश्य)

सुग्रीवः—जयतु देवः ।

को नु खल्वेष जीवन्तीमादाय जनकात्मजाम् ।

प्रणम्यरूपः सम्भूतो ज्वलतो हव्यवाहनात् ॥ २६ ॥

व्याकरण—पावकः=पुनातीति√पू + ण्वुल् । ज्वलनः=ज्वलतीति√ज्वल्+ल्युट् । वर्धित = √वृध् + णिच् + क्त । प्रभा प्र + √भा+अङ्+टाप् । प्राप्य=प्र+√आप्+ल्यप् । विकारः=वि+√कृ+घञ् । उपागताः=उप+आ+√गम् + क्त कर्तरि ।

टीका – क इति । अन्वयः – जीवन्तीम् जनकात्मजाम् आदाय ज्वलतः हव्यवाहनात् सम्भूतः प्रणम्य-रूपः कः नु खलु एषः (अस्ति) । जीवन्तीम्= सजीवाम् अमृतामित्यर्थः जनकस्य आत्मजाम्=तनयाम् आदाय=गृहीत्वा ज्वलतः =देदीप्यमानात् हव्यवाहनात्=अग्नेः सम्भूतः = उद्गतः प्रणम्यम्=वन्दनीयम् रूपम्=स्वरूपं (कर्मधा०) यस्य सः (ब० व्री०) कः नु=इति वितर्के खलु= निश्चयेन अस्ति । अनुष्टुप् ॥ २६ ॥

व्याकरण—जीवन्तीम् = √जीव्+शतृ+ङीप् द्वि० । आत्मजा=आत्मनः जायते इति आत्मन्+√जन्+डः+टाप् । ज्वलतः= √ज्वल्+शतृ+प० । हव्य-वाहनः = हव्यस्य=आहवनीय-पदार्थस्य वाहनः=देवान् प्रति प्रापकः । हव्यम्= हूयते इति√हु+यत् कर्मणि । वाहनः=वहतीति√वह् + ल्युट् । सम्भूतः=सम् √भू+क्त । प्रणम्य=प्र + √नम्+यत् ।

राम – (आश्चर्य के साथ) यह क्या ? यह क्या ?

लक्ष्मण —ओह ! आश्चर्य है ।

(प्रवेश करके) सुग्रीव—महाराज की जय हो ।

जीती-जागती जनकनन्दनी को लेकर जलती अग्नि से निकला, वन्दनीय स्वरूप वाला यह सचमुच कौन होगा ? ॥ २६ ॥

लक्ष्मणः— अये ! अयमार्यां पुरस्कृत्यैत एवाभिवर्तते भगवान् विभावसुः ।

रामः—अये ! अयं भगवान् हुताशनः । उपसर्पामस्तावत् ।

(सर्वे उपसर्पन्ति)

(ततः प्रविशत्यग्निः सीतां गृहीत्वा ।)

अग्निः—एष भगवान् नारायणः । जयतु देवः ।

रामः—भगवान् ! नमस्ते ।

अग्निः—न मे नमस्कारं कर्तुमर्हति देवेशः ।

टीका—पुरस्कृत्य = अग्रे कृत्वा । अभिवर्तते=आगच्छति । हुताशनः-हुतस्य=अग्नौ प्रदत्तस्य आहवनीय-द्रव्यस्य अशनः=अश्नाति भक्षयतीति√अश्+ ल्युट् कर्तरि । अग्निः इत्यर्थः । उपसर्पामः=समीपे गच्छामः । नारायणः=विष्णुः । नारायण शब्द की व्युत्पत्ति मनु ने इस प्रकार की है :—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।। (१।१० ।।)

अर्थात् 'नाराः' जल को कहते हैं, क्योंकि वे नरनामक परमात्मा का पुत्र हैं । सबसे पहले परमात्मा ने जल ही उत्पन्न किया था ("अप एव ससर्जादौ" 'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या') उसका जो अयन आश्रय है अर्थात् परमात्मा, विष्णु । देवेशः=देवानाम् ईशः=ईश्वरः (ष० तत्पु०) :

लक्ष्मण—अरे, यह तो आर्या (सीता देवी) को आगे करके भगवान् अग्निदेव इधर ही आ रहे हैं ।

राम—अये, ये भगवान अग्निदेव हैं । तो अब (उनके) पास चलते हैं । (सब चल पड़ते हैं)

(तदनन्तर सीता को लेकर अग्निदेव प्रवेश करते हैं)

अग्नि—यह भगवान् नारायण हैं । महाराज की जय ।

राम—भगवन् ! नमस्ते ।

अग्निः—देवाधिपति को मुझे नमस्कार नहीं करना चाहिए ।

इमां गृह्णीष्व राजेन्द्र ! सर्वलोकनमस्कृताम् ।
अपापामक्षतां शुद्धां जानकीं पुरुषोत्तम ! ॥ २७ ॥

अपि च,

इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम् ।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमास्थिता ॥ २८ ॥

इमामिति । अन्वयः—हे राजेन्द्र ! पुरुषोत्तम ! सर्व० अपापाम्, अक्षताम्, शुद्धाम् इमाम् जानकीम् गृह्णीष्व । राज्ञाम् = नृपतीनाम् इन्द्रः=स्वामी महाराजः इत्यर्थः (ष० तत्पु०) तत्सम्बुद्धौ, पुरुषेषु=नरेषु उत्तमः=श्रेष्ठ ! नृपवर इत्यर्थः (स० तत्पु०) सर्वे=सकलाश्च ते लोकाः=जगन्ति (कर्मधा०) तैः नमस्कृताम् =प्रणताम् (तृ० तत्पु०) अपापाम् = न पापम् अपापम् (नञ्-तत्पु०) यस्यां तथाभूताम् (ब० व्री०) पापरहिताम्, अक्षताम्=न क्षता ताम् (नञ्-तत्पु०) दाहकृतक्षतिरहिताम् शुद्धाम् = पवित्राम् इमाम् = एताम् जानकीम्=जनकपुत्रीम् गृह्णीष्व = स्वीकुरु । सीता सर्वथा निर्दोषा शुद्धा चास्तीति सा स्वीक्रियताम् इति भावः । अनुष्टुप् ॥ २७ ॥

व्याकरण—नमस्कृत=नमस्+√कृ+क्त । अक्षत=न क्षत इति, √क्षण्+क्त । शुद्ध=√शुध्+क्तः, कर्तरि । जानकी = जनकस्य अपत्यं स्त्री इति जनक + अण्+ ङीप् । उत्तमः = अतिशयेन उत्कृष्ट इति उद् + √कृप्+तमप् (गृह्णीष्व= √गृह्=लोट् मध्य० ।

टीका—इमामिति । अन्वयः—इमाम् जनकात्मजाम् भगवतीम् लक्ष्मीम् जानीहि । मानुषीम् तनुम् आस्थिता सा भवन्तम् अनुप्राप्ता ।

इमाम् = एताम् जनकस्य आत्मजा=पुत्री ताम् भगवतीम्=ऐश्वर्यादिगुण-वतीम् लक्ष्मीम=श्रियम् जानीहि=अवगच्छ । सा=लक्ष्मी मानुषीम्=मानवीयाम्

महाराज पुरुषोत्तम ! सभी लोकों द्वारा नमस्कार की जाने वाली इस निष्पाप, (दाह द्वारा) क्षति-रहित पवित्र जानकी को ग्रहण करें ॥ २७ ॥

अपि च—

इन जनकनन्दिनी को आप भगवती लक्ष्मी समझो । वह मनुष्य-देह में स्थित आपके पास आई हुई है ॥ २८ ॥

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि।

जानतापि च वैदेह्याः शुचितां धूमकेतन ! ।
प्रत्ययार्थं हि लोकानामेवमेव मया कृतम् ॥ २९ ॥

तनुम्=देहम् आस्थिता = आश्रिता भवन्तम् = त्वाम् अनुप्राप्ता=उपयाता। सीता साक्षात् लक्ष्म्याः अवतारः अस्तीति भावः। अनुष्टुप् ॥ २८ ॥

व्याकरण—आत्मजा = आत्मनः जायते इति आत्मन्+√जन्+ड+टाप्। भगवती = भगः अस्या अस्तीति भग+मतुप्+ङीप्। भग के भीतर ये छः चीजें आती हैं :—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णाम् भग इतीरणा ॥

अर्थात् जिसमें समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य भरा हो वही भगवान् होता है। मानुषी = मानुषस्य (मनुष्यस्य) इयम् इति मानुष+अण्+ङीप्। आस्थिता=आ+√स्था+क्त। 'आ' उपसर्ग लगने से स्था धातु सकर्मक हो जाता है। अनुप्राप्ता=अनु + प्र+आप् + क्त।

टिप्पणी – यद्यपि वाल्मीकि के अनुसार राम एक वीर पुरुष और सीता एक सती नारी हैं, तथापि भारत ही नहीं, प्रत्युत पुराणों के अनुसार भी राम रावण वध हेतु मनुष्य-रूप में प्रकट हुए विष्णु-भगवान् हैं और सीता लक्ष्मी-अवतार। देखिए – 'राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्ण-जन्मनि। अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषाऽनपायिनी ॥' तुलसीदास ने भी जहाँ रामको 'रामाख्यमीशं हरिम्' के रूप में नमन किया, वहाँ सीता को' 'उद्भवस्थिति-संहारकारिणीम्' कहा है।

टीका—जानतेति—अन्वयः—हे धूमकेतन ! वैदेह्याः शुचिताम् जानता अपि च मया हि लोकानाम् प्रत्ययार्थम् एव एवम् कृतम्। हे धूमकेतन ! अग्ने ! वैदेह्याः=सीतायाः शुचिताम् पवित्रताम् जानता=अवगच्छता अपि मया लोकानाम् जनानाम् प्रत्ययार्थम्=प्रत्ययायेति चतुर्थ्यर्थे अर्थेन नित्यसमासः विश्वासार्थम् एवम्=अग्नौ सीतापरीक्षणमित्यर्थः एव=निश्चयेन कृतम्=विहितम्।

राम—अनुगृहीत हूँ।

हे अग्नि ! सीता की पवित्रता जानते हुए भी मैंने वास्तव में लोगों के विश्वास हेतु ही ऐसा किया है ॥ २९ ॥

(नेपथ्ये दिव्यगन्धर्वा गायन्ति ।)

नमो भगवते त्रैलोक्यकारणाय नारायणाय ।
ब्रह्मा ते हृदयं जगत्त्रयपते ! रुद्रश्च कोपस्तव
नेत्रे चन्द्रदिवाकरौ सुरपते ! जिह्वा च ते भारती ।

लोका यथा सीतायाः रावणगृहनिवासेऽपि शुद्धतायाम् विश्वसेयुः तथा मया तस्या अग्निपरीक्षा कृतेति भावः । अनुष्टुप् ॥ २९ ॥

व्याकरण—धूम-केतनः=धूमः केतन=पताका यस्य सः (ब० व्री०) । आग का धूआँ झंडा-जैसा उठा हुआ लगता है, इसलिए आग को 'धूमकेतन' कहते हैं । केतन झंडा इसलिए कहा जाता है कि वह केतयति=सङ्केतयति (√कित्+णिच्+ल्युट्)=किसी का परिचय देता है । झण्डे परिचयार्थ ही हुआ करते हैं । धूआँ देखते ही अग्नि का अनुमान हो जाता है । वैदेही=विदेहेषु (देशे) भवा अथवा वैदेहस्य= विदेहदेशनृपतेः=अपत्यं स्त्री इति वैदेही अथवा वैदेह+अण्+ङीप् । शुचिता=शुचेः भाव इति शुचि+तल्+टाप् । जानता=√ज्ञा+शतृ+तृ० एक० । प्रत्ययः - प्रति+√इ+अच् । कृत=√कृ+क्त ।

टिप्पणी—लोकानां प्रत्ययार्थम्—बहुत से आलोचक राम के सम्बन्ध में यह कह बैठते हैं कि जब उनका हृदय सीता की पवित्रता पर विश्वस्त था, तो उन्हें उनकी अग्नि-परीक्षा नहीं लेनी चाहिये थी और न ही पीछे लोगों के कहने-कहाने पर ही गर्भवती-अवस्था में घर से निकालना चाहिए था । किन्तु वे आलोचक यह भूल जाते हैं कि राम मर्यादा-पुरुषोत्तम थे । उनका जन्म ही धर्म की मर्यादाओं और उच्च आदर्शों की स्थापना-हेतु हुआ था । वे अपने आचरण को प्रजा-द्वारा अनुकरणीय बनाना चाहते थे.। गीताकार का भी यही विचार था —

यद् यदाचरति श्रेष्ठः तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

(नेपथ्य में दिव्य गन्धर्व गाते हैं)

तीनों लोकों के कारण रूप भगवान् नारायण को नमस्कार !

हे तीनों लोकों के स्वामी ! ब्रह्मा तुम्हारा हृदय है, रुद्र (भगवान्) कोप है, हे देवाधिपति ! चन्द्र और सूर्य (तुम्हारे) नेत्र हैं । और सरस्वती तुम्हारी

सब्रह्मेन्द्रमरुद्गणं त्रिभुवनं सृष्टं त्वयैव प्रभो !
सीतेयं जलसम्भवालयरता विष्णुर्भवान् गृह्यताम् ॥ ३० ॥

राम सदा अपने को लोक-विश्वास में रखना चाहते थे। उनके विचारानुसार प्रत्येक शासक को प्रजा के संदेहों से ऊपर रहना चाहिए। यही लोक-विश्वास अथवा लोकाराधन-भावना किसी भी शासनतन्त्र की—चाहे वह राजतन्त्र हो या लोकतन्त्र, असली रीढ़ हुआ करती है। तभी तो राम ने अपने विषय में भवभूति के मुँह से यह कहलवाया है—

स्नेहं दयाञ्च सौख्यञ्च अथवा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

और यही कारण है कि महात्मा गान्धी भी देश के स्वराज्य में इसी रामराज्य का स्वप्न देखते थे, जो निरा स्वप्न ही स्वप्न रहा, तथ्य न हो सका।

टीका—व्याकरण—त्रैलोक्यस्य=त्रयाणां लोकानाम् समाहारः त्रिलोकी (समाहार द्वन्द्वः) त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम् (स्वार्थे ष्यञ्) लोकत्रयमित्यर्थः कारणाय=हेतवे भगवते नारायणाय=विष्णवे (व्युत्पत्तियाँ पीछे दे रखी हैं।)

ब्रह्मेति—अन्वयः—हे जगत्त्रयपते ! ब्रह्मा ते हृदयम् (अस्ति), रुद्रः च तव कोपः (अस्ति), हे सुरपते ! चन्द्र-दिवाकरौ (तव) नेत्रे (स्तः), ते जिह्वा च भारती (अस्ति), हे प्रभो ! सब्रह्म० त्रिभुवनम् त्वया एव सृष्टम्, इयम् सीता जल० (अस्ति) भवान् विष्णुः (अस्ति) इयम् गृह्यताम् ॥

जगताम=लोकानाम् त्रयम्=त्रिकम् त्रयोलोकास्वर्ग-मर्त्य-पातालाः इत्यर्थः (ष० तत्पु०) तस्य पतिः=स्वामी तत्सम्बुद्धौ ब्रह्मा=स्रष्टा ते=हृदयम्=अन्तःकरणम् अस्तीति शेषः रुद्रः=महादेवश्च तव कोपः क्रोधः अस्ति क्रोध-कारणात् एव रुद्रस्य जगत्संहारकत्वम्। हे सुराणाम्=देवानां पते !=स्वामिन् ! (ष०तत्पु)० चद्रः=शशी च दिवाकरः=सूर्यश्चेति (द्वन्द्व०) नेत्रे=नयने स्तः इति शेषः ते=जिह्वा रसना च भारती=सरस्वती अस्ति, हे प्रभो !=स्वामिन् ! सब्रह्म०=मरुताम्=देवतानाम् गणः=समूहः (ष०तत्पु०) ब्रह्मा च इन्द्रश्च मरुद्गणश्च

जिह्वा है, प्रभु ! ब्रह्मा, इन्द्र और देवगण सहित तीनों भुवन तुमने ही रचे हैं। यह सीता कमलों के आलय में रमण करने वाली (लक्ष्मी), हैं, आप (स्वयं) विष्णु हैं, इसे (सीता को) स्वीकार कीजिए ॥ ३० ॥

(पुनर्नेपथ्ये अपरे गायन्ति !)

भग्नेयं हि जले वराहवपुषा भूमिस्त्वयैवोद्धृता
विक्रान्तं भुवनत्रयं सुरपते ! पादत्रयेण त्वया ।
स्वैरं रूपमुपस्थितेन भवता देव्या यथा साम्प्रतं
हत्वा रावणमाहवे न हि तथा देवाः समाश्वासिताः ।। ३१ ।।

०गणाः (द्वन्द्व) तैः सह वर्तमानम् (ब० व्री०) त्रिभुवनम्=त्रयाणां भुवनानाम्=लोकानां समाहारः (समाहारद्वन्द्वः स च नपुंसकम्) त्वया एव सृष्टम् जनितम् । इयम्=एषा सीता जल०-जलात्=सलिलात् सम्भवः=उत्पत्तिः यस्य तत् (ब० व्री०) जलजं कमलमिति यावत् तस्मिन् आलयः=गृहम् (स०तत्पु०) तस्मिन् रता=आसक्ता अनुरक्तेति यावत्, कमलालयानुरागिणी, कमलवासिनी लक्ष्मीः इति यावत् अस्ति, भवान् विष्णुः=नारायणः अस्तीति शेषः, अतः विष्णुरूपेण भवता लक्ष्मीरूपिणीयम् सीता गृह्यताम् आत्मीयीक्रियताम् स्वीक्रियतामिति यावत् । अत्र साङ्गरूपकम् । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।। ३० ।।

व्याकरण — त्रयम्=त्रयः अवयवा अत्रेति त्रि+अयच् । कापः=√कुप्+घञ् । सृष्टः=√सृज्+क्तः । प्रभुः=प्रभवतीति प्र+√भू+डः । रता=√रम्+क्तः कर्तरि । गृह्यताम्=√ग्रह्+लोट् कर्मवाच्ये ।

भग्नेति—अन्वयः—जले मग्ना इयम् भूमिः हि वराहवपुषा त्वया एव उद्धृता; हे सुरपते ! त्वया पाद-त्रयेण भुवन-त्रयम् विक्रान्तम्; (तदानीम्) देवाः न हि (भवता) तथा (समाश्वासिताः) यथा स्वैरम् रूपम् उपस्थितेन आहवे रावणम् हत्वा देव्या (सह) भवता साम्प्रतम् समाश्वासिताः ।

जले० मग्ना—ब्रुडिता इयम्=एषा भूमिः=पृथिवी वराहस्य=शूकरस्य वपुः=शरीरं (ष० तत्पु०) यस्य तेन (ब० व्री०) वराहावतारधारिणेत्यर्थः त्वया=भवता एव उद्धृता=उपरि आनीता; हे सुराणाम्=देवानाम् पते=स्वामिन् !

(फिर नेपथ्य में अन्य गाते हैं)

जल में डूबी हुई यह पृथिवी वराह का शरीर धारण किये आपने ही उबारी, हे देवाधिपति ! तीन पगों से तीनों लोक आपने ही लाँघे थे । मन-माना (मानव) रूप धारण किये, युद्ध में रावण का वध करके आपने देवी (सीता) सहित जैसे देवताओं को इस समय आश्वासन दिया है, वैसा तब नहीं दिया था ।। ३१ ।।

अग्निः—भद्रमुख ! एते देवदेवर्षिसिद्धविद्याधरगन्धर्वाप्सरोगणाः स्वविभवैर्भवन्तं वर्धयन्ति ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

अग्निः—भद्रमुख ! अभिषेकार्थमित इतो भवान् ।

रामः—यदाज्ञापयति भगवान् ।

(निष्क्रान्तौ)

(ष० तत्पु०) त्वया पादानाम्=पादक्रमाणामित्यर्थः त्रयेण=त्रिकेन (ष० तत्पु०) भुवनानाम्=लोकानाम् त्रयम्=त्रिकम् विक्रान्तम्=लंघितम्, एतेन भगवतः वामनावतारः निर्दिश्यते; (किन्तु तदानीम्) देवाः=सुराः न हि भवता तथा= (समाश्वासिताः=आश्वासनम् प्रापिताः) यथा स्वैरम् = स्वच्छन्दम् रूपम्= मानुषरूपमित्यर्थः उपस्थितेन = प्राप्तेन आहवे=युद्धे रावणम् हत्वा= मारयित्वा देव्या=महिष्या सीतया (सह) भवता साम्प्रतम् = इदानीम् समाश्वासिताः । तव वामनावतारस्य अपेक्षया इदानीं रामावतारे देवा अधिकं प्रसन्नाः सन्तीति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।। ३१ ।।

व्याकरण—मग्ना=√मस्ज्+क्तः तस्य नः । उद्धृता = उत्+√हृ+क्त कर्मणि । त्रयम्=त्रि+अयच् । विक्रान्तम्=वि+√क्रम्+क्त । स्वैर=इर्त इति√ ईर् (गतौ) अच्=ईरः स्वेन=आत्मना ईरः स्वयंचारी स्वच्छन्द इति यावत् । उपस्थित=उप+√स्था+क्तः कर्तरि । आहवः=आ+√ह्वे+अप् । हत्वा=√हन् +क्त्वा । समाश्वासिताः=सम्+आ + √श्वस्+णिच् + क्त ।

टिप्पणी—इस श्लोक में विष्णु के दस अवतारों में से तीनों का उल्लेख है । 'वराहवपु' से वराहावतार का निर्देश है । श्रीमद्-भागवत के अनुसार सृष्टि के आदि में कश्यप प्रजापति की पत्नी दिति के गर्भ से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नाम के दो महादैत्य उत्पन्न हुए । इनमें से दोनों के वध हेतु भगवान को नृसिंह

अग्नि—हे भागवान् मुँह वाले ! ये देव, देवर्षि, सिद्ध, विद्याधर, गन्धर्व और अप्सराओं के दल अपनी-अपनी स्थितियों के अनुसार आपको बधाई दे रहे हैं ।

राम—अनुगृहीत हूँ ।

अग्नि—भद्रमुख ! राज्याभिषेक हेतु आप इधर आइए ।

राम—जैसी आपकी आज्ञा (दोनों चले गये) ।

(नेपथ्ये)

जयतु देवः । जयतु स्वामी । जयतु भद्रमुखः । जयतु महाराजः । जयतु रावणान्तकः । जयत्वायुष्मान् ।

और वराह अवतार धारण करने पड़े । हिरण्याक्ष महाबली था । उसने स्वर्गलोक पर आक्रमण कर दिया और इन्द्र-सहित सभी देवताओं को परास्त करके हजारों अप्सराओं और देवाङ्गनाओं को हर ले आया । पृथ्वी को भी खींचकर वह अपने पाताल-लोक में ले गया । देवता लोग रोते-चिल्लाते विष्णु भगवान् के पास गए । तब विष्णु ने महावराह रूप धारण किया और पाताल जाकर हिरण्याक्ष का वध करके पृथिवी को अपने दांतों पर रखकर रसातल से ऊपर लाए ।

वामन —अवतार के विषय में पुराणों में ऐसी कहानी आती है कि प्रह्लाद का पौत्र और विरोचन का पुत्र बलि एक बड़ा शक्तिशाली राक्षसराज हुआ । वह जब देवताओं को बहुत तङ्ग करने लगा तो वे सहायता हेतु विष्णु भगवान् के पास गये । उनकी पुकार पर कश्यप प्रजापति की पत्नी अदिति के गर्भ से भगवान वामन (बौना) के रूप में अवतीर्ण हुए । उन्होंने भिखारी का वेष बना कर राजा बलि से अपने लिए छोटी-सी कुटिया बनाने हेतु तीन पैर नाप की धरती मांगी । बलि दानी तो था ही, इसलिए तत्काल उसने इस छोटी-सी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया । किन्तु बाद को वामन ने विशाल रूप अपना लिया और एक पग से सारी धरती और दूसरे पग से सारा आका॰ नाप लिया; तीसरे पग के लिए वे जब बलि को पूछने लगे कि कहां रखूँ, तो बलि ने अपना सिर पसार दिया । भगवान ने अपना पैर राक्षसराज के सिर पर रखा और जोर से दबाकर उसे पाताल-लोक भेज दिया ।

तीसरा अवतार मनुष्य के रूप में रावण-वध हेतु रामावतार है जो इस नाटक का विषय है ।

टीका—भद्रं=कल्याणं मुखम् (कर्मधा०) यस्य तत्सम्बुद्धौ । एते=इमे देव०=देवाश्च देवर्षयः= दिव्यर्षयश्च सिद्धाः=देवयोनिविशेषाश्च विद्याधराः=

(नेपथ्य में) महाराज की जय ! स्वामी की जय ! भद्रमुख की जय ! महाराज की जय ! रावण-विनाशक की जय ! आयुष्मान् की जय !

विभीषणः—एष महाराजः,

तीर्त्वा प्रतिज्ञार्णवमाहवेऽद्य

सम्प्राप्य देवीं च विधूतपापाम् ।

देवैः समस्तैश्च कृताभिषेको

विभाति शुभ्रे नभसीव चन्द्रः ॥ ३२ ॥

देवयोनिविशेषाश्च अप्सरसः = देवयोनिविशेषाश्च ('विद्याधराप्सरो-यक्ष-रक्षो-गन्धर्व-किन्नराः । पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः'' इत्यमरः) इति (द्वन्द्वः) तेषां गणाः=समूहाः (ष० तत्पु०) स्वाः=स्वकीयाः विभवाः=स्थितयः पदानि इति यावत् (कर्मधा०) तैः भवन्तम् वर्धयन्ति=भवते वर्धापनं ददति । अभिषेकाय=राज्याभिषेकाय इति अभिषेकार्थम् (चतुर्थ्यर्थे अर्थेन नित्य-समासः)। रावणस्य अन्तकः =विनाशकः ।

तीर्त्वेति—अन्वयः—प्रतिज्ञार्णवम् तीर्त्वा आहवे अद्य विधूत-पापाम् देवीम् च सम्प्राप्य समस्तैः देवैः कृताभिषेकः च एष महाराजः शुभ्रे नभसि चन्द्रः इव विभाति ।

प्रतिज्ञा=प्रण एव अर्णवः=समुद्रः (कर्मधा०) तम् तीर्त्वा=अतिक्रम्य आहवे=युद्धे रावणं हत्वेति शेषः अद्य विधूतम्=अपगतम् पापम्=कालुष्यम् (कर्मधा०) यस्याः ताम् (ब० व्री०) (निष्पाप) अग्निना शुद्धत्वेन प्रमाणितामित्यर्थः देवीम्=महिषीम् सीताम् प्राप्य=लब्ध्वा च समस्तैः=सकलैः देवैः=सुरैः कृतः=सम्पादितः अभिषेकः=राज्याभिषेकः (कर्मधा०) यस्य तथाभूतः (ब० व्री०) (सभी देवताओं ने जिनका राज्याभिषेक किया) एष महाराज इति पूर्वेण अन्वयः । शुभ्रे=निर्मले नभसि=आकाशे चन्द्रः=चन्द्रमा इव विभाति=शोभते । अत्र प्रतिज्ञायामर्णवारोपात् रूपकम्, रामस्य च चन्द्रेण साम्य-प्रदर्शनात् उपमेति द्वयोः संसृष्टिः । उपजातिः वृत्तम् ॥ ३२ ॥

व्याकरण—प्रतिज्ञा+ प्रति + √ज्ञा+अङ् + टाप् । तीर्त्वा=√तॄ + क्त्वा, ऋकारस्य ईर् । आहवः = आ+√ह्वे+अप् । विधूत + वि+√धू + क्त ।

विभीषण—प्रतिज्ञा-रूपी समुद्र पार करके आज (रावणवध करके) निष्कलंक सीता को प्राप्त कर और सभी देवताओं द्वारा राज्याभिषिक्त किये हुए ये महाराज निर्मल आकाश में चाँद की भाँति चमक रहे हैं ॥ ३२ ॥

लक्ष्मणः—अहो नु खल्वार्यस्य वैष्णवं तेजः।

यमवरुणकुबेरवासवाद्यैस्त्रिदशगणैरभिसंवृतो विभाति।
दशरथवचनात् कृताभिषेकस्त्रिदशपतित्वमवाप्य वृत्रहेव ॥ ३३ ॥

(ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सीतया सह)

रामः—वत्स लक्ष्मण !

सम्प्राप्य=सम्+प्र+√आप्+ल्यप्। समस्त=सम्+√अस्+क्त। शुभ्र—√शुभ्+रक्। विभाति=वि+√भा+लट् प्र०।

टीका—वैष्णवम्=विष्णोः इदम् इति विष्णु+अण् विष्णुसम्बन्धि तेजः=वर्चः।

यमेति—अन्वयः—यम-वरुण० अभिसंवृतः दशरथ-वचनात् कृताभिषेकः (आर्यः) त्रिदशपतित्वम् अवाप्य वृत्रहा इव विभाति।

यमः=यमराजश्च वरुणः=जलाधिष्ठातृदेवश्च कुबेरः=धनदश्च वासवः=इन्द्रश्चेति ०वासवाः (द्वन्द्वः) आद्याः=आदयः येषां तैः (ब० व्री०) त्रिदशानाम्=देवानाम् गणैः=समूहैः अभिसंवृतः=परिगतः दशरथस्य वचनात्=कथनात् कृतः=विहितः अभिषेकः=राज्याभिषेकः (कर्मधा०) यस्य तथाभूतः आर्यः राम इति शेषः। त्रिदशानाम्=देवानाम् पतित्वम्=स्वामित्वम् अवाप्य=प्राप्य वृत्रहा=इन्द्र इव विभाति=शोभते। अत्र वृत्रहेवेति उपमा। पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ३३ ॥

व्याकरण—आद्यः=आदौ भव इति आदि+यत्। त्रिदशाः इस शब्द की व्युत्पत्ति के लिए तृतीय अङ्क का चौथा श्लोक देखिये। अभिसंवृत=अभि+सम्+√वृ+क्त। वचनम्=√वच्+ल्युट्। अभिषेकः=अभि+√सिच्+घञ्, सस्य षः। अवाप्य=अव+√आप्+ल्यप्। वृत्रहन्=वृत्रं हन्तीति वृत्र+√हन्+क्विप् कर्तरि।

टिप्पणी—दशरथवचनात्=जीवित अवस्था में राजा दशरथ राम का अभिषेक करना चाहते थे किन्तु कैकयी के विरोध के कारण कर न सके

लक्ष्मण—बाप रे ! आर्य में कैसा वैष्णव तेज है !

यम, वरुण, कुबेर और इन्द्रादि देवताओं से घिरे, दशरथ के कहने से राज्याभिषिक्त हुए आर्य ऐसे शोभित हो रहे हैं जैसे देवताओं का स्वामित्व प्राप्त करके इन्द्र (शोभित हुआ था) ॥ ३३ ॥

(तदनन्तर राज्याभिषिक्त राम सीता के साथ प्रवेश करते हैं।)

राम—तात लक्ष्मण !

येनाहं कृतमङ्गलप्रतिसरो भद्रासनारोपितो-
ऽप्यम्बायाः प्रियमिच्छता नृपतिना भिन्नाभिषेकः कृतः।

और पुत्र-वियोग में स्वर्ग सिधार ग९। रावण-वध के अनन्तर अग्नि-परीक्षा में सफल निकली हुई सीता को साथ लिये राम और लक्ष्मण को स्वर्ग से विमान में आए हुए दशरथ ने दर्शन दिये। पिता पुत्रों का यह पुर्नमिलन-क्षण बड़ा ही हर्ष का था। राम पर दशरथ बड़े प्रसन्न हुए और बोले कि प्रजा तुम्हें राज्याभिषिक्त देखेगी—

त्वां तु दृष्ट्वा कुशलिनं परिष्वज्य सलक्ष्मणम्।
अद्य दुःखाद् विमुक्तोऽस्मि नीहारादिव भास्करः॥
तारितोऽहं त्वया पुत्र! सुपुत्रेण महात्मना।
इदानीं च विजानामि यथा सौम्य, सुरेश्वरैः।
वधार्थं रावणस्येह पिहितं पुरुषोत्तमम्॥
सिद्धार्थाः खलु ते राम! नरा ये त्वां पुरीं गतम्।
राज्ये चैवाभिषिक्तं च द्रक्ष्यन्ते वसुधाधिपम्॥

(उ० का० ११६। १६-२०)

वृत्रहा—त्वष्टा का पुत्र वृत्र एक बड़ा भारी राक्षस था, जिसके साथ इन्द्र के संघर्ष का वेदों और पुराणों में प्रचुर उल्लेख आया हुआ है। देवता लोग जब इससे बहुत तंग आ गये, तो इन्द्र सहित वे ऋषि दधीचि के पास गये और उनसे उनकी अस्थियाँ माँगी। देवताओं के उपकार हेतु दधीचि ने प्राण त्याग कर अपनी हड्डियां इन्द्रादि देवताओं को दे दी। उनकी हड्डी से इन्द्र ने वज्र बनाया, तब जाकर कहीं वह वृत्रासुर को मारने में सफल हो सका। इसलिए इन्द्र को वृत्रहा, वृत्रशत्रु, वृत्र-द्वेषी आदि कहा जाता है।

टीका—येनाहमिति—अन्वयः—कृत० भद्रा० अपि येन नृपतिना अहम् अम्बायाः प्रियम् इच्छता (सता) अहम् भिन्नाभिषेकः कृतः, व्यक्तम् देव-गतिम् गतेन तेन एव गुरुणा अद्य प्रसन्नमनसा (सता) साम्प्रतम् प्रत्यक्षतः पुनः अहम् प्राप्ताभिषेकः कृतः (अस्मि)।

मंगल सूत्र (बंधन-विधि) सम्पन्न होने पर नृपासन पर बिठाये हुए भी मैं जिस नरपति द्वारा माता (कैकयी) का हित चाहते हुए राज्याभिषेक से

व्यक्तं दैवगतिं गतेन गुरुणा प्रत्यक्षतः साम्प्रतं
तेनैवाद्य पुनः प्रहृष्टमनसा प्राप्ताभिषेकः कृतः ॥ ३४ ॥

अग्निः—भद्रमुख ! एता हि महेन्द्रनियोगाद् भरतशत्रुघ्नपुरःसराः प्रकृतयो भवन्तमुपस्थिताः ।

कृत०-कृतः = विहितः मङ्गलः = माङ्गलिकः प्रतिसरः = सूत्रम् मङ्गल-सूत्रमित्यर्थः अर्थात् अभिषेकात् पूर्वं पूर्वाङ्गत्वेन यस्य रामस्य हस्ते मङ्गल-सूत्रं बद्धमासीत् (मंगलसूत्र बाँधे जाने पर भी) भद्रासने = नृपासने (नृपासनं यत्तद्भद्रासनम्' इत्यमरः) आरोपितः = अधिष्ठापितः अपि (नृपासन पर बैठाए जाने पर भी) येन नृपतिना = राज्ञा अहम् अम्बायाः = मातुः कैकेय्याः हितम् = प्रियम् अभिलषितमित्यर्थः इच्छता = कामयमानेन (सता) भिन्नः = विघटितः रुद्धः इति यावत् अभिषेकः (कर्मधा०) यस्य तथाभूतः (ब० व्री०) अहं कृतः अभिषेकस्य सम्पादितोऽपि सर्वः प्रबन्धः निराकृत इति भावः व्यक्तम् = स्पष्टं यथा स्यात्तथा दैवीम् = दिव्यां गतिं गतेन = मम वनवास-दुःखकारणात् स्वर्गं गतेन तेन गुरुणा = पित्रा अद्य मत्कर्तृकरावणवधं दृष्ट्वा प्रसन्नम् = प्रमुदितम् मनः = हृदयम् (कर्मधा०) यस्य तथाभूतेन (ब० व्री०) सता साम्प्रतम् = इदानीम् पुनः प्राप्तः = लब्धः अभिषेकः (कर्मधा०) येन तथाभूतः (ब० व्री०) कृतः अस्मीति शेषः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३४ ॥

व्याकरण—आरोपित = आ + √रुह् + णिच् + क्त । इच्छता = √इष् + शतृ + तृ० एका० । भिन्न = √भिद् + क्तः, तस्य नः । अभिषेकः = अभि + सिच् + घञ् । दैव = देवानाम् इदम् इति देव + अण् । गतिः √गम् + क्तिः । गत = √गम् + क्तः । प्रत्यक्षतः = प्रत्यक्ष = तसिल् । प्रहृष्ट = √हृष् + क्तः । प्राप्त = प्र + √आप् + क्तः । कृत + √कृ + क्तः ।

टिप्पणी—अम्बायाः प्रियम्—सभी भारतीय जानते ही हैं कि राजा दशरथ की कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी—ये तीन रानियाँ थी । कौशल्या से

रोक दिया गया था, स्पष्टतः स्वर्ग को सिधारे, उन्हीं पिता द्वारा इस समय प्रसन्न-हृदय हो आज फिर से मेरा राज्यभिषेक किया गया है ॥ ३४ ॥

अग्नि—भद्रमुख ! इन्द्र की आज्ञा से भरत और शत्रुघ्न को आगे किये यह प्रजा आपके सामने उपस्थित है ।

रामः—भगवन् ! प्रहृष्टोऽस्मि ।
अग्निः—इमे महेन्द्रादयोऽमृतभुजो भवन्तमभिवर्धयन्ति ।
रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

राम, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा कैकेयी से भरत हुए। युवा होने पर दशरथ ज्येष्ठ पुत्र राम को युवराज बनाना चाह रहे थे कि कैकेयी ईर्ष्या से जल गई। उसने देवासुर-संग्राम में कभी राजा को सहायता देने के कारण उनसे दो वर प्राप्त कर रखे थे जिन्हें उसने राजा के पास धरोहर रखे हुए थे। उनमें से उसने एक से राम को वनवास और दूसरे से अपने पुत्र भरत को राज्य माँग लिया। राजा वचन-बद्ध थे। छोटी रानी को प्रसन्न करने हेतु उन्होंने राम के राज्याभिषेक की तय्यारी रोक दी और उन्हें वन-वास दे दिया और इसी दुःख में वे मर भी गए।

टीका—महान् चासौ इन्द्रः इति महेन्द्रः तस्य (कर्मधा०) नियोगात् = आदेशात् भरत०—भरतश्च शत्रुघ्नश्चेति भरतशत्रुघ्नौ (द्वन्द्वः) पुरःसरौ = अग्रगौ यासां तथा भूताः (ब० व्री०) प्रकृतयः = प्रजाः भवन्तम् उपस्थिताः = उपगताः सन्तीति शेषः प्रहृष्टः = (प्र + $\sqrt{}$हृष् + क्तः) प्रसन्नः। महेन्द्रः आदिः आद्यः येषां ते (ब० व्री०) अमृतं = सुधाम् भुञ्जते इति (अमृत + $\sqrt{}$भुज् + क्विप्) अमृतभक्षकाः देवा इत्यर्थः भवन्तम् अभिवर्धयन्ति = भवतः वर्धापनं कुर्वन्ति भूयः=पुनः प्रियम् = अभीष्टम् उपहरामि = अर्पयामि।

टिप्पणी—भरत-शत्रुघ्न पुरस्सराः—रामायण के अनुसार रावणवध के बाद राम विभीषण द्वारा लाये हुए पुष्पक विमान में विभीषण सुग्रीव आदि के साथ अयोध्या वापस आए। तदनन्तर अयोध्या में ही उनका राज्याभिषेक हुआ किन्तु भास ने ऐसा नहीं किया। उसने लंका में ही इन्द्रादि देवताओं की उपस्थिति में अभिषेक किया तथा इन्द्र के आदेश से भरत, शत्रुघ्न एवं सारी प्रजा की लंका में ही उपस्थिति करवाई है, जो नाटकीय दृष्टि से ठीक ही है, अन्यथा नाटक विस्तार में चला जाता।

राम—भगवन् ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ।
अग्नि—ये इन्द्रादि देवता आपको बधाई दे रहे हैं।
राम—मैं अनुगृहीत हूँ।

अग्निः—भद्रमुख ! किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ।

रामः—यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमहमिच्छामि ।

(भरतवाक्यम् ।)

भरतवाक्यम्—यह नाटक का पारिभाषिक शब्द है। नाटक के प्रारम्भिक प्रार्थना-श्लोक को जिस प्रकार 'नान्दी' कहते हैं, उसी तरह नाटक के अन्तिम प्रार्थना-श्लोक को 'भरत-वाक्यम्' कहते हैं। 'भरत-वाक्य' नाम इसलिए पड़ा है कि भरत मुनि नाटक-कला के प्रवर्तक माने जाते हैं। वे इस कला में इतने व्यापक बन गए कि नट भी स्वयं भरत कहलाने लगे। भवभूति ने मालती-माधव नाटक में नटों के लिए भरत शब्द ही प्रयुक्त कर रखा है (तत्किमुदासते भरताः)। 'भरतवाक्य' में 'भरत' शब्द नटों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह 'भरतानाम् = नटानाम् वाक्यम् = प्रार्थना-श्लोक होता है। मिलकर सभी नट या कोई अन्यतम नट नाटक के अन्त में लोकहित हेतु प्रार्थना करता है। आधुनिक नाट्य विधान में 'नान्दी' की तरह 'भरतवाक्य' भी नाटक का अनिवार्य अंग बना हुआ रहता है। किन्तु भास ने दृढ़ता के साथ इस नियम का पालन नहीं किया है। अभिषेक नाटक में तो उसने 'भरतवाक्यम्' दे रखा है। साथ ही 'भरतवाक्यम्' का मञ्च-निर्देश करने से पूर्व यह भूमिका भी बाँध रखी है—

अग्निः—भद्रमुख ! किं ते प्रियमुपहरामि ।

रामः—यदि मे भगवान् प्रसन्नः, किमतः परमिच्छामि ।

इसी तरह 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' आदि में भी 'भरतवाक्यम्' का ऐसा ही उपक्रम है, किन्तु 'दूतवाक्य' 'प्रतिमा' 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि नाटकों में उक्त उपक्रम कोई नहीं है, सीधा 'भरतवाक्यम्' ही लिखा हुआ है। 'मध्यमव्यायोग' 'पञ्चरात्र' आदि नाटक बिना 'भरतवाक्यम्' इस तरह मञ्चनिर्देश के ही समाप्त हुए हैं यद्यपि प्रार्थना-श्लोक अवश्य है। 'दूतघटोत्कच' आदि में 'भरतवाक्यम्' (प्रार्थना-श्लोक) का सर्वथा अभाव ही है। मालूम होता है

अग्नि—भद्रमुख ! फिर तुम्हारा और भला मैं क्या करूँ ?

राम—यदि भगवान (आप) मुझ पर प्रसन्न हैं, तो इससे अधिक मैं क्या चाहता हूँ—

भवन्त्वरजसो गावः परचक्रं प्रशाम्यतु ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥ ३५ ॥
(निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

षष्ठोऽङ्कः

अभिषेकनाटकं समाप्तम् ।

कि भास के समय में 'भरतवाक्यम्' के लिए कोई भी दृढ–कठोर नियम नहीं बने होंगे, जैसे आजकल हैं ।

टीका—अन्वयः - गावः=अरजसः भवन्तु; पर-चक्रं प्रशाम्यतु, नः राजसिंहः अपि इमाम् कृत्स्नाम् महीम् प्रशास्तु ।

गावः अरजसः = न रजः (नञ् तत्पु०) रजोगुणपरिणामभूतं दुःखमित्यर्थः यासां ताः (ब० व्री०) दुःखरहिताः भवन्तु = स्युः, परेषाम् = शत्रूणां चक्रम् = मण्डलम् (ष० तत्पु०) प्रशाम्यतु = शान्तं भवतु, शत्रवः शत्रुतां विहाय शान्तिमार्गं गच्छन्तु इति भावः । नः = अस्माकम् राजसिंहः = राजसु सिंहः श्रेष्ठः ('सिंह–शार्दूल–नागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थवाचकाः' इत्यमरः) (स० तत्पु०) कश्चित् नृपवरः अथवा एतन्नामा कश्चित् नृपविशेषः अपि कृत्स्नाम् = समग्राम् इमाम् = एताम् महीम् = पृथिवीम् प्रशास्तु = परिपालयतु । आशीरलंकारः । अनुष्टुप् ॥ ३५ ॥

टिप्पणी – भवन्तु -- यही भरत-वाक्य ज्यों का त्यों भास ने अपने प्रतिज्ञायौगन्धरायण में भी दे रखा है । 'भरतवाक्य' का उपक्रम भी ऐसा ही है ।

महीमपि अपि शब्द का सम्बन्ध 'महीम्' से नहीं हो सकता, अन्यथा राजसिंह का शासन स्वर्गादि में भी मानना पड़ेगा । अतः 'अपि' का सम्बन्ध 'राज सिंह' से ही है । अस्थान में 'अपि' के प्रयोग से यहाँ 'अस्थानस्थपदत्व' दोष है ।

षष्ठोऽङ्कः समाप्तः ॥ अभिषेक नाटकं समाप्तम् ॥

'पन्त'–मोहनदेवेन गढदेश–निवासिना ॥
टीकेयमभिषेकस्य प्रणीता 'छात्रतोषिणी' ॥

गौएँ प्रसन्न हों, शत्रु-मंडल शान्त हो जाय और हमारा 'राजसिंह' भी सम्पूर्ण पृथिवी पर शासन करे ॥ ३५ ॥ (सभी का प्रस्थान)

छठा अङ्क समाप्त ॥ अभिषेक नाटक समाप्त ॥

परिशिष्ट (क)

अभिषेक नाटक के सुभाषित तथा लोकोक्तियाँ

पद्य अथवा पद्य-खण्ड

अवश्यं युधि वीराणां वधो वा विजयोऽथवा। (३ । ६)
अहो दैवस्य विघ्नक्रिया ! (२ । १०)
कथं लम्बसटः सिंहो मृगेण विनिपात्यते।
गजो वा सुमहान् मत्तः शृगालेन निहन्यते॥ (३ । २८)
धर्म-स्नेहान्तरे न्यस्ता बुद्धिर्दोलायते मम। (६ । २३)
मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु वै।
निवारयति यो राजन् ! स मित्रं रिपुरन्यथा॥ (६ । २२)
वागुराच्छन्नमाश्रित्य मृगाणामिष्यते वधः। (१ । १६)

गद्य

अदण्ड्यो नैव दण्ड्यते। (प्र० अंक)
अधर्मः खलु प्रच्छन्नो वधः। (प्र० अंक)
अमात्य-वर्गेण सह संमन्त्र्य गन्तव्यम्। (प्र० अंक)
अवश्यं स्त्री-वधो न कर्तव्यः। (पं० अंक)
अहो अकरुणाः खल्वीश्वराः। (द्वि० अंक)
अहो नु खल्वतुलबलता कुसुमधन्वनः। (पं० अंक)
दूतवधः खलु वचनीयः। (तृ० अंक)
न त्वेव हि कदाचिज्ज्येष्ठस्य यवीयसो दाराभिमर्शनम्। (प्र० अंक)
निर्वेद एव खल्वनुक्तग्राहिणं स्वामिनमुपाश्रितस्य भृत्यजनस्य। (तृ० अंक)
बहुमायाश्छलयोधिनश्च राक्षसाः। (च० अंक)
सर्वापराधेष्ववध्याः खलु दूताः। (तृ० अंक)

परिशिष्ट (ख)

संक्षिप्त छन्दोविज्ञान

संस्कृत-साहित्य में काव्य-गत संगीत-सौन्दर्य लाने हेतु छन्दों का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। छन्द-शास्त्र में उन नियमों का विधान है, जिनके द्वारा कोई रचना 'पद्य' अथवा 'कविता' कहलाती है। संसारसाहित्य का सर्वप्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद' छन्दोमय है। सामवेद भी छन्दों में ही लिखा गया है। यजुर्वेद गद्य में है और अथर्ववेद गद्य-पद्य-दोनों में है, पर अधिकांश पद्य-बद्ध ही है। वेदों के बाद लौकिक संस्कृत का आदि महाकाव्य वाल्मीकिकृत रामायण है जो सारा पद्य में ही है। नाटकों में गद्य के साथ-साथ पद्य भी रहता है इसलिए छात्रों की सुविधा के लिए हम यहाँ पद्यों की रचना में आवश्यक छन्दों की परिभाषा और उदाहरण भी देना उचित समझते हैं।

छन्द-लक्षण—जिस रचना में वर्ण, मात्रा, यति, गति आदि के नियमों का पालन किया जाय, उसे छन्द कहते हैं। छन्द वास्तव में एक तुला है, जिस पर कविता तोली जाती है। छन्दोबद्ध रचना का ही दूसरा नाम पद्य है। संस्कृत में छन्दों के सम्बन्ध में एक विशाल शास्त्र है जिसके प्रवर्तक महर्षि पिंगल हैं और इन्हीं के नाम से इस शास्त्र को पिंगल कहा जाता है।

छन्द-भेद—यद्यपि वैदिक और लौकिक नाम से छन्द दो प्रकार के होते हैं, तथापि हम यहाँ केवल लौकिक छन्दों पर ही विवेचन करेंगे। लौकिक छन्दों के सुगम परिज्ञान के लिए छन्दः-शास्त्र के आचार्यों ने आठ गणों की कल्पना की है। गण अक्षरसमूह को कहते हैं और प्रत्येक गण में तीन-तीन अक्षर (Syllables) होते हैं। ये अक्षर दीर्घ भी हो सकते हैं, ह्रस्व भी हो सकते हैं और आदि, मध्य तथा अन्त में ह्रस्व एवं दीर्घ भी हो सकते हैं। इन आठ गणों की कल्पना का यह लाभ है कि छन्दों की परिभाषा करते समय हमें यह नहीं कहना पड़ता कि अमुक छन्द के पहले दीर्घ, फिर ह्रस्व, पुनः दीर्घ और पुनः ह्रस्व इत्यादि प्रकार से वर्णों का क्रम है। ऐसा करने से परिभाषायें बहुत लंबी हो जाएगी और साथ ही, उसको याद रखना भी बड़ा कठिन हो जाएगा। इस कठिनाई से बचने के

लिए और [illegible] से विभिन्न छन्दों की परिभाषा करने के लिए गणों की कल्पना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि गणों की कल्पना कर लेने पर किसी भी छन्द की परिभाषा बताने के लिए संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इसके प्रत्येक पाद में ये गण इस क्रम से रखे जाते हैं।

उपर्युक्त आठ गणों का स्वरूप निम्नलिखित एक ही श्लोक में दिया गया है:—

> मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो
> भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
> जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः
> सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥

हम ऊपर कह आए हैं कि गण आठ होते हैं। वे यह हैं—(१) मगण, (२) नगण, (३) भगण, (४) यगण, (५) जगण, (६) रगण, (७) सगण और तगण। संक्षेप की दृष्टि से ये म, न आदि अक्षरों से ही व्यवहार में आते हैं, जैसे—

१—मस्त्रिगुरुः=म (मगण) में तीनों वर्ण दीर्घ होते हैं, जैसे—'नारीणाम्' (ऽ ऽ ऽ)।

२—त्रिलघुश्च नकारः=न (नगण) में तीनों वर्ण लघु होते हैं, जैसे—'पवन'! (।।।)।

३—भादिगुरुः=भ (भगण) में आदि का वर्ण गुरु (दीर्घ) और बाद के दोनों लघु होते हैं, जैसे—'वारिणि' (ऽ।।)।

४—पुनरादिलघुर्यः=य (यगण) में आदि वर्ण लघु होता है और बाकी बाद के दोनों गुरु होते हैं, जैसे—'समाना' (।ऽऽ)।

५—जो गुरुमध्यगतः=ज (जगण) में मध्य का अक्षर गुरु और आगे-पीछे के दोनों अक्षर लघु होते हैं, जैसे—'यशांसि' (।ऽ।)।

६—रलमध्यः= र (रगण) में मध्य का अक्षर लघु और आगे-पीछे के अक्षर गुरु होते हैं, जैसे—'मानवी' (ऽ।ऽ)।

७—सोऽन्तगुरुः=स (सगण) में अन्त का अक्षर गुरु और उससे पहले के दोनों अक्षर लघु होते हैं, जैसे—'यमुना' (।।ऽ)।

८—अन्तलघुस्तः=त (तगण) में अन्त का अक्षर लघु और उससे पहले के दोनों अक्षर गुरु होते हैं, जैसे—'वारीणि' (ऽऽ।)।

ध्यान रहे कि ऊपर दी गई गणों की परिभाषा के अन्त में दिए गए चिह्नों में 'S' यह चिह्न गुरु का होता है और '।' यह चिह्न लघु का होता है।

विभाजन—छन्द और गणों के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय देकर अब हम छन्दों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त करते हैं:—

(१) अक्षरछन्द, (२) गणछन्द, (३) मात्रिकछन्द।

अक्षरछन्द—प्रायः ये वेदों में ही पाए जाते हैं। वेदों में अविकसित रूप का अनुष्टप् ही एक ऐसा छन्द है जो लौकिक संस्कृत में पूर्णतः विकसित हो पाया है। लौकिक संस्कृत का आदि महाकाव्य वाल्मीकि-रामायण और बाद के व्यास-रचित महाभारत एवं पुराण प्रायः इसी अक्षरछन्द में लिखे हुए हैं। रामायण और महाभारत से ही प्रभावित होकर भासने इस अनुष्टुप् अक्षरछन्द का अपने नाटकों में बहुत प्रयोग कर रखा है। इसी अनुष्टुप् को 'श्लोक' या 'गाथा' भी कहा करते हैं। इसका लक्षण यह है :—

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विश्चतुःपादयोः ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥

अर्थात् अनुष्टुप् में प्रत्येक पाद में आठ-आठ अक्षर होते हैं, जिनमें छठा अक्षर सर्वत्र गुरु और पाचवाँ अक्षर लघु होता है, दूसरे और चौथे पाद में सातवाँ अक्षर ह्रस्व तथा अन्य दो पादों (अर्थात् प्रथम और तृतीय) में सातवाँ अक्षर दीर्घ होता है, जैसे—

।S S ।S ।
भवन्त्वरजसो भावः परचक्रं प्रशाम्यतु।
। S S । S ।
इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥

(प० ३५)

गुरु अक्षरों के सम्बन्ध में एक स्मरणीय बात यह है कि यदि ह्रस्व अक्षर से परे कोई संयुक्ताक्षर हो तो पूर्ववर्ती ह्रस्व अक्षर पर बल (Stress) पड़ जाने से वह गुरु माना जाता है जैसे ऊपर के श्लोक के तृतीय पाद में 'कृत्स्नाम्' शब्द का 'कृ' ह्रस्व होने पर भी परवर्ती 'त्स्ना' संयुक्ताक्षर होने के कारण गुरु हो गया है। इसी तरह अनुस्वार और विसर्ग वाला वर्ण भी गुरु माना जाता

है, जैसे—स्व० ना० । भास ने अभिषेक नाटक में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग बहुत अधिक किया है । कुल मिलाकर इसकी संख्या ६८ है जो इस तरह है:—

प्रथम अङ्क—३, ८, १२, १५, १८–२१, २३, २४ ।

द्वितीय अङ्क—३, ७, १२, १३, १५, १६, १८–२०, २३, २४ ।

तृतीय अङ्क—५, ६, ८–११, १३–१५, १८, २०, २२, २४–२६ ।

चतुर्थ अङ्क—४, ८–११, १४, १६, १९–२२ ।

पञ्चम अङ्क—२, ५, ८–१०, १२, १४, १७ ।

षष्ठ अङ्क—८–१०, १८, २०, २२, २३, २५, २९–३५ ।

गणछन्द—हम पीछे कह आए हैं कि एक-एक गण तीन-तीन वर्णों का होता है । वर्णों से छन्द-शास्त्र में स्वर ही लिये जाते हैं, व्यञ्जन नहीं । उदाहरण के लिए 'विद्वान्' शब्द में 'व् द् व् न्' चार व्यञ्जन है किन्तु स्वर इ, आ दो ही है, इसलिए यहाँ दो ही वर्ण माने जाएंगे, व्यंजन और स्वर मिलाकर छः नहीं । छन्द में गणों की विभिन्न संख्या होने से विभिन्न छन्द बनते हैं । प्रत्येक छन्द के चार हिस्से किये जाते हैं, जिन्हें छन्दः शास्त्र में 'पाद' या 'चरण' कहते हैं । सभी पादों में वर्णों की संख्या समान ही हो – ऐसा कोई नियम नहीं है । समान भी हो सकती है, असमान भी हो सकती है । जहाँ चार हो पादों में वर्ण संख्या समान रहे, उसे वर्णसमछन्द कहते हैं और जहाँ विभिन्न हो, वह वर्णविषमछन्द कहलाता है । कहीं-कहीं पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे पादों में वर्ण-संख्या समान रहती है, उसे वर्णअर्धसम छन्द कहते हैं । इसके अतिरिक्त ध्यान में रखने योग्य एक बात यह भी है कि छन्द का उच्चारण करते समय हमें एक अथवा अधिक बार जरा ठहरना पड़ता है । इसी ठहरने अथवा विराम को छन्दःशास्त्र में 'यति' कहते हैं । यति का ध्यान न रखने से छन्द दूषित हो जाता है । यति-दोष से कभी-कभी अर्थ समझने में भी बाधा होती है, इसलिए 'यति' वाले वर्ण में थोड़ा-सा ठहर जाना चाहिए, उदाहरण के लिए आगे हम 'मन्दाक्रान्ता' में बताएंगे कि वहां ४, ६ अक्षरों में यति होती है—जैसे—'शरैर्भीमैर्वेगैर्हयान् मर्दयित्वा ध्वजं चापि शीघ्रं बलेनाभिहत्य' (अं० ६।१५) इत्यादि । अभिषेकनाटक में भास ने गणछन्द ही लिखे हैं और वे भी एक को छोड़कर सभी वर्णसमछन्द है ।

११ वर्णों के चरण वाले छन्दः—उपेन्द्रवज्रा, उपजाति और शालिनी।

१ उपेन्द्रवज्रा–'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।

इसके प्रत्येक पाद में जगण [। ऽ ।] सगण [ऽ ऽ ।] जगण [। ऽ ।] और उसके बाद दो गुरु (गौ) होते हैं, पाचवें और छठे वर्णों में यति रहती है जैसे—

मया कृतं दोषमपास्य बुद्धया
त्वया हरीणामधिपेन सम्यक् ।
विमुच्य रोषं परिगृह्य धर्मं
कुलप्रवालं परिगृह्यतां नः ॥ (१ । २६)

। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
म या कृ	तं दो ष	म पा स्य	बु द्ध या
ज	त	ज	ग ग

अभिषेक में प्र० अं० का २६ वां, तृ० अं० का ३ रा और १६ वां और पं० अं० का ११ वां श्लोक उपेन्द्रवज्रा के ही हैं जिनकी कुल संख्या ४ है।

२ उपजाति – उपजाति स्वतन्त्र कोई छन्द नहीं है, बल्कि उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा का सम्मिश्रण है। उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा में बहुत कम अन्तर है और वह यह कि उपेन्द्रवजा जहां 'ज-त ज ज ग ग है, वहां इन्द्रवज्रा 'त त ज ग ग' है [स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ ज गौ गः] । उदाहरण जैसे—

सीते ! त्यज त्वं व्रतमुग्रचर्यं
भजस्व मां भामिनि ! सर्वगात्रैः ।
अपास्य तं मानुषमद्य भद्रे !
गतायुषं कामपथान्निवृत्तम् ॥ (३।१४)

ऽ ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ	
सी–ते–त्य	ज–त्वं–व्र	त–मु–ग्र	च–र्यं	
त	त	ज	ग ग	=इन्द्रवज्रा
। ऽ ।	ऽ ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ	
भ–ज–स्व	मां–भा–मि	नि–स–र्व	गा–त्रैः	
ज	त	ज	ग–ग	=उपेन्द्रवज्रा

अभिषेक में द्वि० अंक का १४वां, चतु० अं० का ६ठा, ५० अं० का १ला और ५० अं० के १४वां, २१वां और ३२वां उपजाति छन्द है, जिसकी कुल संख्या ६ है :

३ शालिनी—'मात्तौ गौ चालिनी वेद-लोकै:'। इसके प्रत्येक पाद में मगण (SSS) दो तगण (SSI) और अन्त में दो गुरु होते हैं, चौथे (वेद) और सातवें (लोक) वर्ण में यति होती है, जैसे:—

सन्दष्टोष्ठश्चण्डसंरक्तनेत्रो
मुष्टिं कृत्वा गाढमुद्वृत्तदंष्ट्र:।
गर्जन् भीमं वानरो भाति युद्धे
संवर्त्ताग्नि: सन्दिधक्षुर्यथैव ॥ (१।१३)

S S S	S S I	S S I	S S
स–न्द–ष्टो	ष्ठ–श्च–ण्ड	सं–र–क्त	ने–त्रो
म	त	त	ग ग

सारे नाटक में प्रथम अंक का यह तेरहवां श्लोक ही शालिनी छन्द का है।

१२ वर्णों के चरणवाले छन्द:—द्रुतविलम्बित, भुजङ्गप्रयात, वंशस्थ और वैश्वदेवी।

१. द्रुतविलम्बित—'द्रुतविलम्बितमाह न-भौ भ-रौ' इसके प्रत्येक पाद में नगण (I I I), भगण (S I I), भगण (S I I) और रगण (S I S) होते हैं, चौथे और आठवें वर्ण में यति रहती है, जैसे—

युधि जगत्-त्रयभीतिकृतोऽपि मे
यदि कृतं त्रिदशैरिदमप्रियम्।
अनुभवन्त्वचिरादमृताशिन।
फलमतो निजशाठ्य-समुद्भवम् ॥ (३।४)

I I I	S I I	S I I	S I S
यु–धि–ज	गत्–त्र–य	भी–ति–कृ	तोऽ–पि–मे
न	भ	भ	र

सारे नाटक में तीसरे अंक का यही एक द्रुतविलम्बित छन्द है।

२. भुजङ्गप्रयात—'भुजङ्गप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः' । इसके प्रत्येक पाद में चार यगण (। S S) होते हैं; छठे अक्षर में यति रहती है, जैसे :—

शरैर्भीमवेगैर्हयान् मर्दयित्वा
ध्वजं चापि शीघ्रं बलेनाभिहत्य ।
महद्बाणवर्षं सृजन्तं नदन्तं
हसन्तं नृदेवं भृशं भीषयन्तम् ॥ (६।१५)

। S S	। S S	। S S	। S S
श–रै–र्भी	म–वे–गैः	ह–या–न्म	र्द–यि–त्वा
य	य	य	य

सारे नाटक में यही एक मात्र भुजङ्गप्रयात छन्द है :

३. वंशस्थ—'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इसके प्रत्येक पाद में जगण (। S ।), तगण (S S ।), जगण (। S ।) और रगण (S । S) रहते हैं, पाँचवें और सातवें अक्षर में यति होती है, जैसे :—

कुतो नु खल्वेष समुत्थितो ध्वनिः
प्रवर्तते श्रोत्रविदारणो महान् ।
प्रचण्डवातोद्धतभीमगामिनां
बलाहकानामिव खेऽभिगर्जताम् ॥ (१।२)

। S ।	S S ।	। S ।	S । S
कु– तो –नु	ख–ल्वे–ष	स–मु–त्थि	तो–ध्व–नि
ज	त	ज	र

सारे नाटक में प्रथम अंक का यही दूसरा श्लोक वंशस्थ छन्द है ।

४. वैश्वदेवी – 'बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ'। इसमें प्रत्येक पाद में दो मगण (S S S) और दो यगण (। S S) होते हैं; पाँचवें (बाण) और सातवें (अश्व) अक्षर में यति रहती है। जैसे:—

लब्ध्वा वृत्तान्तं राम-पत्न्याः खगेन्द्रा-
दारुह्यागेन्द्रं सद्विपेन्द्रं महेन्द्रम् ।
लङ्कामभ्येतुं वायु-पुत्रेण शीघ्रं
वीर्य-प्राबल्याल्लङ्घितः सागरोऽद्य ॥ (२।१)

ल–क्वा-वृ ता–त्तं–रा म–प–न्याः ख–गे–न्द्रा
म म य ग

इस नाटक में द्वि० अंक का पहला और षष्ठ अंक का पाँचवाँ दो ही वैश्वदेवी छन्द हैं।

१३ वर्णों का चरणवाला छन्द—प्रहर्षिणी।

प्रहर्षिणी—'त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्' इसके प्रत्येक पाद में मगण (ऽऽऽ), नगण (।।।) जगण (।ऽ।) रगण (ऽ।ऽ) और अन्त में एक गुरु होता है, जैसे—

संप्राप्ता हरिवरबाहुसंप्रगुप्ता
किष्किन्धा तव नृप ! बाहुसंप्रगुप्ता।
तिष्ठ त्वं नृवर ! करोम्यहं विसंज्ञं,
नादेन प्रचलमहीधरं नृलोकम् ॥ (१ (७)

ऽ ऽ ऽ । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ
सं–प्रा–प्ता ह–रि–व र–बा–हु सं–प्र–गु–प्ता
म न ज र ग

इस नाटक में प्रहर्षिणी छन्द के प्र० अंक का ७ वाँ १० वाँ, १७ वाँ और तृ० अंक का १७ वाँ—कुल चार श्लोक हैं।

वसन्ततिलका—१४ वर्णों के चरण का छन्द।

वसन्ततिलका—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः'। इसके प्रत्येक पाद में तगण (ऽऽ।) भगण (ऽ।।), जगण (।ऽ।) जगण (।ऽ।), अन्त में दो गुरु होते हैं; आठवें और छठे वर्ण में यति होती है, जैसे—

यो गाधिपुत्रमखविघ्नकराभिहन्ता,
युद्धे विराध-खर-दूषणवीर्यहन्ता।
दर्पोद्धितोल्बण-कवन्ध-कपीन्द्रहन्ता,
पायात् स वो निशिचरेन्द्रकुलाभिहन्ता। (१।१)

ऽ ऽ ।	ऽ । ।	। ऽ ।	। ऽ ।	ऽ ऽ
यो–गा–घि	पु–त्र–म	ख–वि–घ्न	क–रा–मि	ह–न्ता
त	भ	ज	ज	ग ग

नाटक में वसन्ततिलका से कुल १५ श्लोक हैं—प्र० अं० का पहला, चौथा, ९ वां और ११ वां; तृ० अं० का २१ वां और २७ वां; च० अं० का ७ वां, १३ वां और २३वां, प० अं० का ४ था, ७ वां, १३ वां, १६ वां और ष० अं० का पहला तथा ७ वां।

१५ वर्णों का चरणवाला छन्द—मालिनी।

मालिनी—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः'। इसके प्रत्येक पाद में नगण (।।।) नगण (।।।), मगण (ऽऽऽ), यगण (।ऽऽ), यगण (।ऽऽ) होते हैं; आठवें (भोगि) और सातवें (लोक) में यति होती है, जैसे—

> रुधिर-कलित-गात्रः स्रस्तसंरक्तनेत्रः
> कठिन-विपुल-बाहुः काललोकं विवक्षुः।
> अभिपतति कथञ्चिद्धीरमाकर्षमाणः,
> शरवरपरिवीतं शान्तवेगं शरीरम्॥ (१।१६)

। । ।	। । ।	ऽ ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ
रु धि–र	क–लि–त	गा–त्रः–स्र	स्त–सं–र	क्त–ने–त्रः
न	न	म	य	य

इस नाटक में मालिनी के कुल मिलाकर ११ श्लोक हैं—प्र० अंक का १६ वां और २५ वां; द्वि अं० का ८ वां, ९ वां, २१ वां, २६ वां, च० अं० का १५ वां, पं० अं० का १५ वां; ष० अं० का ४ था, ६ ठा और ११ वां।

१७ वर्णों के चरणवाला छन्द–शिखरिणी।

शिखरिणी—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी'। इसके प्रत्येक पाद में यगण (। ऽ ऽ), मगण), नगण (। । ।) सगण (। । ऽ) भगण (ऽ । ।) और अन्त में लघु-गुरु होते हैं; छठे (रस) और ग्यारहवें (रुद्र) अक्षर में यति होती है, जैसे—

क्वचित्फेनोद्गारी क्वचिदपि च मीनाकुलजलः,
क्वचिच्छङ्खाकीर्णः क्वचिदपि च नीलाम्बुदनिभः।
क्वचिद्वीचीमालः क्वचिदपि च नक्रप्रतिभयः,
क्वचिद्भीमावर्तः क्वचिदपि च निष्कम्पसलिलः ॥ (४।१७)

। S S S S S । । । । । S S । । । S
क्व-चि-त्फे नो-द्गा-री क्व-चि-द पि-च-मी ना-कु-ल ज-लः

य म न स भ ल ग

नाटक में अं० का १७ वां एक ही श्लोक शिखरिणी छन्द का है।

१९ अक्षरों का चरण वाला छन्द—शार्दूलविक्रीडित।

शार्दूलविक्रीडित—'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्'।

इसके प्रत्येक पाद में मगण (S S S) सगण (। । S), जगण (। S ।), सगण (। । S) तगण (S S ।) तगण (S S ।) और अन्त में गुरु होता है बारहवें (सूर्य) सातवें (अश्व) अक्षर में यति होती है, जैसे—

मुक्तो देव ! तवाद्य बालिहृदयं भेत्तुं न मे संशयः,
सालान् सप्त महावने हिमगिरेः शृङ्गोपमाञ्छ्रीधरः।
भित्त्वा वेगवशात् प्रविश्य धरणीं गत्वा च नागालयं,
मज्जन् वीर ! पयोनिधौ पुनरयं संप्राप्तवान् सायकः ॥ (१।५)

S S S । । S । S । । । S S S । S S । S
मु-क्तो-दे व-त-वा द्य-बा-लि हृ-द-यं भे-त्तुं-न मे सं-श यः

म स ज स त त ग

नाटक में शार्दूलविक्रीडित के कुल मिलाकर १६ श्लोक हैं—प्र० अं० का ५ वां, द्वि० का ४ था ६ ठा, १० वां, और २२ वां, तृ० का पहला, च० का पहला और दूसरा, पं० का छठा, ष० का ३ रा, १६ वां, १८ वां, ३० वां, ३१ वां और ४४ वां।

२१ वर्णों का चरण वाला छन्द—स्रग्धरा।

स्रग्धरा—'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्'।

इसमें मगण (S S S) रगण (S । S) भगण (S । ।), नगण (। । ।)

और तीन यगण (। ऽ ऽ) होते हैं, प्रत्येक सातवें (मुनि) अक्षर में तीन बार यति होती है, जैसे—

> क्रोधात्त् संरक्तनेत्रं त्वरिततरहयं स्यन्दनं वाहयन्तम्
> प्रावृट्-कालाभ्रकल्पं परमलघुतरं वाणजालान् वमन्तम् ।
> तान् वाणान् निर्विधून्वन् कपिरपि सहसा तद्रथं लंघयित्वा
> कण्ठे संगृह्य घृष्टं मुदिततरमुखो मुष्टिना निर्जघान ॥
>
> (३१७)

ऽ ऽ ऽ	ऽ । ऽ	ऽ । ।	। । ।	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ऽ
क्रो-धात् सं	र-क्त-ने	त्रं त्व-रि	त-त र	ह-यं स्य	न्द-नं वा	ह-य-न्तं
म	र	भ	न	य	य	य

नाटक में स्रग्धरा के तृतीय अंक के ७ वां और ९ वां दो ही श्लोक हैं।

उपर्युक्त सभी वर्ण समछन्द हैं, क्योंकि सबके चारों पादों में समान वर्ण हैं। भास ने एक वर्णअर्घ-समछन्द भी दिया है और वह पुष्पिताग्रा है, जिसे औपच्छन्दसिक भी कहते हैं।

पुष्पिताग्रा: —

'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।'

जिसके विषम पादों (अयुजि) अर्थात् प्रथम, तृतीय में दो नगण (। । ।), रगण (ऽ । ऽ) और यगण (। ऽ ऽ) तथा सम पादों (युजि) अर्थात् द्वितीय, चतुर्थ में नगण (। । ।) दो जगण (। ऽ ।) रगण (ऽ । ऽ) और अन्त में गुरु हो, उसे पुष्पिताग्रा कहते हैं। जैसे—

> तव नृप ! मुखनिःसृतैर्वचोभिः
> विगतभया हि वयं विनष्टशोकाः ।
> रघुवर ! हरये जयं प्रदातु
> गिरिमभिगच्छ सनीरनीरदाभम् ॥ (३१६)

। । ।	। । ।	ऽ । ऽ	। ऽ ऽ	
त-व नृ	प ! मु-ख	निः सृ-तै	र्व-चो-भिः	प्रथम पाद (विषम)
न	न	र	य	

। । ।	। ऽ ।	। ऽ ।	ऽ । ऽ	ऽ	
बि-ग-त	भ-या हिं	व-यं वि	न-ष्ट-शो	का:	द्वितीय पाद
न	ज	ज		ग	(सम)

सारे नाटक में कुल मिलाकर २२ पुष्पिताग्रा छन्द के श्लोक हैं —प्र० अं० का ६ ठा, १४वां और २२वां; द्वि० अं० का दूसरा, ५वां, ११वां, १७वां, और २५ वां, तृ० अं० का दूसरा, १६ वां और २१ वां, च० अं० का तोसरा, ५ वां १२ वां और १८ वां, पं० अं० का तीसरा और ष० अं० का दूसरा, १२ वां, १३ वां, १७ वां, २४ वां तथा ३३ वां ।

मात्रिक छन्द—छन्दों का तोसरा भेद मात्रिक छन्द है । इसमें वर्णो का विचार न होकर मात्राओं का विचार हुआ करता है । मात्रा वर्णो के उच्चारण पर लगने वाले समय को कहते हैं । ह्रस्व वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है, उससे दुगुना समय दार्घ वर्ण के उच्चारण में लगता है । इसलिए 'क' की एक मात्रा होती है तो 'का' की दो । इन मात्राओं पर ही मात्रिक छन्द बनते हैं जैसे 'आर्या' आदि । किन्तु भास के नाटक में मात्रिक छन्दों का सर्वथा अभाव है, अत: हम यहाँ उनका विवेचन नहीं करेंगे ।

भास के इस सारे नाटक में कुल मिलाकर १४५ श्लोक हैं, जो बहुत अधिक है और नाटक को काव्यीय रूप देते हैं ।

——

परिशिष्ट (ग)

नाट्य-परिभाषाओं की व्याख्या

संस्कृत में काव्य के दो भेद हैं—श्रव्य और दृश्य। श्रव्य वह काव्य होता है, जिसे हम सुनते हैं और पढ़ते हैं, जैसे वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, रघुवंश, मेघदूत आदि। दूसरा काव्य-भेद दृश्य है, जिसे हम रंगमञ्च पर खेला जाता हुआ देखते हैं। इसे नाट्य अथवा रूपक भी कहते हैं। इसके ११ भेद हैं, जिनमें एक नाटक भी है। नाटक किसी ऐतिहासिक वृत्तान्त पर आधारित होता है, जैसे भास का अभिषेक नाटक अथवा स्वप्नवासवदत्तम् आदि, एवं कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि।

नान्दी—नाटक के प्रारम्भ में किये जाने वाले मंगलाचरण को नान्दी कहते हैं। इसमें देवताओं की स्तुति की जाती है और पूजा-द्वारा उन्हें प्रसन्न किया जाता है। कभी-कभी देव-द्विजादि का आशीर्वाद भी होता है। इसका शास्त्रीय लक्षण यह है:—

देव-द्विज-नृपादीनामाशीर्वचनपूर्विका।
नन्दन्ति देवता यस्यां तस्मान्नान्दीति कीर्तिता॥

सूत्रधार – यह नाटक का प्रधान नट होता है। इसका व्युत्पत्ति-पूर्वक लक्षण इस तरह किया गया है: —

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥

जो नाटक के सूत्र को पकड़े रहता है अर्थात् नाटक के सभी उपकरणों—साधनों—पात्र, पात्रों के पाठ, अभिनय, संगीत, रंगमंच, परदे आदि का प्रबन्ध करता है वह सूत्रधार होता है। नाटक, तथा नाटककार का परिचय और नाटक का आरम्भ सभी सूत्रधार का काम है। कभी-कभी दर्शकों का मन आकृष्ट करने के लिए वह संगीत का आयोजन भी करता है।

सूत्रधार की एक और भी सरल और संक्षिप्त परिभाषा इस तरह दी गई है—

वर्णनीयं कथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रङ्गभूमिं समाराध्य सूत्रधारः स उच्यते ॥

इसमें शब्दान्तर में उपर्युक्त बात ही संक्षेप में कही गई है। अभिप्राय यह कि सूत्रधार रंगमंच का प्रबन्धक (स्टेज-मैनेजर) अथवा नाटक का निर्देशक (डाइरेक्टर) हुआ करता है। नाटक का सारा दायित्व सूत्रधार के ऊपर ही रहता है।

प्रस्तावना—प्रस्तूयते=उपस्थाप्यते नाटकस्य कथा-वस्तु यस्यां सा प्रस्तावना अर्थात् जिसमें नाटक की कथा-वस्तु का प्रस्तुतीकरण होता है, उसे प्रस्तावना कहते हैं। सूत्रधार अपनी पत्नी (नारी) अथवा पारिपार्श्वक के साथ जो नाटक-सम्बन्धी विचित्र संलाप करता है, इसे प्रस्तावना कहते हैं। इसे हम नाटक की भूमिका (Introduction) भी कह सकते हैं। इसी का दूसरा नाम 'आमुख' और 'स्थापना' भी हैं। प्रस्तुत नाटक में सूत्रधार और पारिपार्श्वक के वार्तालाप से भास ने नाटक की 'स्थापना' की है। कथावस्तु-स्थापना के पाँच प्रकार होते हैं, जिनके विस्तार में हम नहीं जाएँगे।

प्रस्तावना अथवा आमुख प्रस्तावना की परिभाषा नाट्य-शास्त्र में यह दी गई है:—

नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्वक एव वा।
सूत्रधारेण • सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा ॥

नेपथ्य—नाटकों में स्थान-स्थान में 'नेपथ्ये' लिखा रहता है, जिसका अर्थ 'पर्दे के पीछे से' है। वास्तव में 'कुशीलव-कुटुम्बस्य स्थलं नेपथ्यमुच्यते' अर्थात् नेपथ्य रंगमञ्च के पीछे अथवा अगल-बगल के उस स्थान को कहते हैं, जहाँ अभिनेता और अभिनेत्रियाँ अपनी वेश-भूषा (मेक अप) बनाते हैं। वहीं से जो आवाज आती है उसी के लिए 'नेपथ्ये' का प्रयोग होता है।

कञ्चुकी अथवा काञ्चुकीय—यह नाटक का एक पात्र-विशेष होता है, जिसका लक्षण भरत मुनि ने इस तरह दे रखा है—

अन्तःपुरचरयो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥

अर्थात् कञ्चुकी उस कार्यकुशल व्यक्ति को कहते हैं । जो जाति से ब्राह्मण और सर्वगुण–सम्पन्न हो एवं राजा के अन्तःपुर में विभिन्न कार्यों के लिए नियुक्त हो । 'कञ्चुक' एक लम्बे चोगे को कहते हैं । प्राचीन काल में राजाओं के अन्तःपुरों में नियुक्त प्रबन्धक 'कञ्चुक' पहना करता था, इसी लिए उसे 'कञ्चुकी' या 'काञ्चुकीय'–कहा करते थे ।

'स्वगतम्' 'आत्मगतम्' या 'आत्मनि'—अभिनय की आवश्यकता के अनुसार नाटकीय कथावस्तु को तीन भागों में बांटा गया है—

१ -- सर्वश्राव्य २ — नियतश्राव्य और ३ -- अश्राव्य ।

अश्राव्य कथावस्तु का वह भाग होता है जो किसी भी पात्र को नहीं सुनाया जाता । इसके द्वारा स्थितिविशेष में पात्र-विशेष के मानसिक भावों की अभिव्यक्ति होती है जिससे उस पात्र के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । इसे ही 'स्वगत' 'आत्मगत' या 'आत्मनि' (मन ही मन में बोलना) कहते हैं । यह स्वगत भाषण कभी-कभी दर्शकों के लिए नाटकीय कथावस्तु के पौर्वापर्य की शृंखला बांधने में भी सहायक सिद्ध होता है । अंग्रेजी में इसे 'Soliloquy' कहते हैं ।

प्रकाशम्---यह कथावस्तु का सर्वश्राव्य भाग होता है । इसका रंगमञ्च के सभी पात्रों को सुनाना अभीष्ट होता है । इसी को प्रदर्शित करने के लिए 'प्रकाशम्' यह स्टेज-डाइरेक्शन होता है जिसका अर्थ है—'प्रकट रूप में'

नियतश्राव्य---यह कथावस्तु का वह भाग होता है जो श्राव्य तो है, पर सर्व-श्राव्य नहीं, किसी विशेष व्यक्ति को श्राव्य होता है । जिसे श्राव्य होता है, उसी की ओर मुंह करके कहा जाता है जिससे वही सुन सके दूसरा या दूसरे नहीं । इसके लिए नाट्य का पारिभाषिक शब्द 'अपवार्य' और अपवारितकेन' हैं भास के इस नाटक में 'नियतश्राव्य' का प्रयोग नहीं हुआ है, 'स्वगतम्' और 'प्रकाशम्' का ही प्रयोग हुआ है ।

विष्कम्भक, मिश्रविष्कम्भक—हम देखते हैं कि नाटक की कथावस्तु कहीं दृश्य होती है और कहीं सूच्य । जो भाग बड़ा सरस, रोचक और प्रकरण

परक होता है उसे ही रंगमञ्च पर अभिनीत किया जाता है । उसे दृश्य कहते हैं। जो भाग कुछ नीरस, अरुचिकर और दिखाने में अश्लील, अमंगल, नियम-विरुद्ध एवं असम्भव हो, किन्तु कथावस्तु के पौर्वापर्य की शृंखला को समझने के लिए जिसका जानना अथवा दर्शकों को अवगत कराना अनिवार्य हो, उसे रंगमञ्च पर अभिनीत न करके विभिन्न प्रकारों से सूचित किया जाता है। सूचित करने के लिए नाट्य-शास्त्रियों ने पांच प्रकार (१. विष्कम्भक, २. प्रवेशक, ३. चूलिका, ४. अंकास्य, ५. अंकावतार) माने हैं। इन्हीं प्रकारों में से एक विष्कम्भक भी होता है। विष्कम्भक का लक्षण यह है:—

वृत्त-वर्तिष्यमाणानां कथांशनां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु 'विष्कम्भ' आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
शुद्धः स्यात् स तु सङ्कीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ॥

अर्थात् अंक के आदि में मध्यम वर्ग के एक या दो पात्र प्रवेश करके कथावस्तु की जो घटनायें बीत चुकी किन्तु रंगमञ्च पर अभिनीत नहीं की गई उन्हें सूचित करके भविष्य में होने वाली घटनाओं की ओर संकेत कर देते हैं, उसे विष्कम्भक कहते हैं। इसमें सूचना देने वाले दोनों पात्र संस्कृत बोलते हैं। यह शुद्ध विष्कम्भक है। किन्तु पात्रों में यदि एक मध्यमवर्ग का होकर संस्कृत बोले और दूसरा निम्नवर्ग का होकर प्राकृत बोले तो वह मिश्रविष्कम्भक कहलाता है। इस नाटक के द्वितीय अंक के प्रारम्भ का विष्कम्भक मिश्र-विष्कम्भक है। इसमें ककुभ मध्यवर्गीय एक अधिकारी है, जो संस्कृत बोलता है जबकि बिलमुख निम्नवर्गीय एक सिपाही है, जो प्राकृत बोलता है। दोनों सीता का पता लगने और हनूमान द्वारा समुद्र लांघने की सूचना देते हैं। विष्कम्भक अथवा शुद्धविष्कम्भक के लिए चतुर्थ अङ्क का प्रारम्भ देखिए, जिसमें मध्यवर्गीय काञ्चुकीय और बलाध्यक्ष संस्कृत बोलते हुए यह सूचना देते हैं कि हनूमान् लंका में सीता का पता लगाकर राम के पास आ गए हैं। समुद्र-लंघन की घटना रंगमञ्च पर दिखाना सम्भव न देखकर कवि ने उसे सूच्य के भीतर रख दिया है। ध्यान रखें कि यदि सूचना देने वाले पात्र निम्नवर्गीय हों और प्राकृत बोलते हों तो उसे विष्कम्भक न कहकर प्रवेशक कहते हैं। इस नाटक में प्रवेशक का प्रयोग नहीं हुआ है।

पताकास्थान—इसका लक्षण निम्नलिखित है :—

यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिंस्तल्लिङ्गोऽन्यः प्रयुज्यते ।
आगन्तुकेन भावेन 'पताकास्थानकं' तु तत् ॥

अर्थात् जहाँ किसी बात पर विचार हो रहा हो और उसमें प्रयुक्त शब्द दूसरे ही भाव को प्रकट करने वाले वाक्य में भी जुड़ जाय, जिसकी हमें आशा ही नहीं रहती हो, उसे पताकास्थान कहते हैं। भास ने अपने नाटकों में यत्र-तत्र बहुत से पताकास्थानों का प्रयोग कर रखा है। इसीलिए बाणभट्ट ने भास के नाटकों की विशेषता बतलाते हुए उन्हें 'सपताकैः' कहा है। इस नाटक में भी कवि ने पञ्चम अङ्क में जब रावण सीता को कह रहा था कि 'किसके द्वारा तू छुड़ाई जाएगी?' (केन त्वं मोक्षयिष्यसे ?) इतने में नेपथ्य से आवाज आती है 'राम द्वारा, राम द्वारा' (रामेण, रामेण) सीता प्रसन्न हो जाती है और कहनेवाले को आशीष दे बैठती है। किन्तु वस्तुतः 'राम द्वारा राम द्वारा' यह शब्द दूसरी ही घटना की ओर संकेत करता है अर्थात् 'राम द्वारा पुत्र (मेघनाद) मार दिया गया है' ('राघवेण प्रसह्य युद्धे निहतः सुतस्ते') यहाँ 'राघवेण' के स्थान में 'रामेण' होना चाहिये था, जो नेपथ्य से बोला गया था अथवा नेपथ्य से 'राघवेण, राघवेण' बोला जाना चाहिये था।

भरतवाक्यम्—नाटक के प्रारम्भ में जैसे मंगलाचरण होता है वैसे ही नाटक की समाप्ति पर भी मंगलाचरण को 'भरतवाक्यम्' कहते हैं। भरत नाट्यशास्त्र प्रवर्तक मुनि का नाम है। उन्हें आदर-भाव दिखाने हेतु इसे भरतवाक्य कहते हैं। अथवा भरत अभिनेता को भी कहते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त मंगलाचरण होने से भरतवाक्य नाम पड़ गया है।

प्रसंगवश हम यहाँ यह भी बता देना चाहते हैं कि नाटक के पात्रों की परस्पर व्यवहार की भाषा किस तरह शिष्टतापूर्ण रहती है। कौन, किसको किस तरह संबोधित करे और किस तरह उत्तर दे—इसके लिये नाट्यशास्त्र ने शिष्टाचार (एटीकेट) का इस प्रकार विधान कर रखा है :—

राजा स्वामीति देवेति, भृत्यैर्भट्टेति चाधमैः ।
राजर्षिभिर्वयस्येति तथा विदूषकेण च ॥ १ ॥
राजन्नित्यृषिभिर्वाच्यः सोऽपत्य-प्रत्ययेन च ।
स्वेच्छया नामभिर्विप्रैर्विप्र आर्येति चेतरैः ॥ २ ॥

वयस्येत्यथवा नाम्ना वाच्यो राज्ञा विदूषकः ।
वाच्यौ नटो-सूत्रधारावार्य-नाम्ना परस्परम् ॥ ३ ॥

सूत्रधारं वदेद् भाव इति वै पारिपार्श्वकः ।
सूत्रधारो मारिषेति हण्डे इत्यधमैः समाः ॥ ४ ॥

वयस्येत्युत्तमैर्हंहो ! मध्यैरार्येति चाग्रजः ।
भगवन्निति वक्तव्याः सर्वैर्देवर्षिलिङ्गिनः ॥ ५ ॥

वदेद् राज्ञीं च चेटीं च भवतीति विदूषकः ।
आयुष्मन् ! रथिनं सूतो वृद्धं तातेति चेतरः ॥ ६ ॥

वत्स ! पुत्रक ! तातेति नाम्ना गोत्रेण वा सुतः !
शिष्योऽनुजश्च वक्तव्योऽमात्य आर्येति वाधमैः ॥७॥

विप्रैरयममात्येति सचिवेति च भण्यते ।
साधो ! इति तपस्वी च प्रशान्तश्चोच्यते बुधैः ॥ ८ ॥

सुगृहीताभिधः पूज्यः शिष्याद्यैर्विनिगद्यते ।
उपाध्यायेति चाचार्यो महाराजेति भूपतिः ॥ ९ ॥

स्वामी तु युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारकः ।
वाच्या प्रकृतिभिः राज्ञः कुमारी भर्तृदारिका ॥ १० ॥

पतिर्यथा तथा वाच्या ज्येष्ठमध्याधमैः स्त्रियः ।
हलेति सदृशी प्रेष्या हञ्जे, वेश्याज्जुका तथा ॥ ११ ॥

कुट्टन्यम्बेत्यनुगतैः पूज्या च जरती जनैः ।
आमन्त्रणैश्च पाषण्डा वाच्याः स्वसमयागतैः ॥ १२ ॥

शकादयश्च संभाष्या भद्रदत्तादिनामभिः !
यस्य यत्कर्म शिल्पं वा विद्या वा जातिरेव वा ॥ १३ ॥

तेनैव नाम्ना वाच्योऽसौ ज्ञेयाश्चान्ये यथोचितम् ।

अर्थात् उच्चजातीय भृत्यों द्वारा अपने महाराज को 'स्वामी' और 'देव' शब्द से सम्बोधन करना चाहिए और निम्नजातियों द्वारा 'भट्ट' 'रार्षदि' तथा

विदूषक द्वारा 'वयस्य' और ऋषियों द्वारा 'राजन्' अथवा अपत्यार्थक प्रत्यय जोड़कर जैसे—'दाशरथे'। ब्राह्मण लोग आपस में नाम लेकर या अपत्यार्थक प्रत्यय लगाकर व्यवहार करें और अन्य लोग ब्राह्मणों को 'आर्य' शब्द से पुकारें। विदूषक राजा को 'वयस्य' कहे अथवा नाम से पुकारे। नटी और सूत्रधार एक-दूसरे को क्रमशः 'आर्य' और 'आर्या' कहकर पुकारें। पारिपार्श्वक सूत्रधार को 'भाव' और सूत्रधार पारिपार्श्वक को मारिष' कहकर संबोधित करें। अधम श्रेणी के लोग आपसमें 'हण्डे', उच्च-श्रेणी के लोग परस्पर 'वयस्य' और मध्य-श्रेणी के लोग परस्पर 'हंहो' कहकर पुकारें। अपने बड़े भाई को 'आर्य' कहना चाहिए और देवता ऋषि और साधुओं को भगवन्। विदूषक रानी और चेटी को 'भवती', सारथि अपने रथी को 'आयुष्मान्' और वृद्ध पुरुषों को 'तात'। वृद्ध भी पुत्र, शिष्य और छोटे भाई को 'वत्स', 'पुत्रक' 'तात' अथवा नाम या गोत्र से पुकारे। निम्न श्रेणी के लोग अमात्यको 'आर्य' और ब्राह्मण लोग 'अमात्य' या 'सचिव' कहकर पुकारे। विद्वान् लोग तपस्वी और शान्तिनिष्ठ को 'साधो' कहे। शिष्य वगैरह अपने उपाध्याय और आचार्य को 'सुगृहीत नामधेय' अथवा 'पूज्य' कहें। राजा को 'महाराज' अथवा 'स्वामी' शब्द से सम्बोधन करते हैं। युवराज को 'भर्तृदारिका' कहने का नियम है। उत्तम मध्यम और अधम श्रेणी के लोग स्त्रियों को उसी प्रकार सम्बोधित करें जैसे वे उनके पतियों को सम्बोधित किया करते हैं। सखी को 'हला', नोकरानी को हञ्जे' वेश्या को 'अज्जुका' और कुट्टनी को 'अम्बा' शब्द से पुकारें। पाखण्डी और दम्भी जनों को इनके आचार के अनुसार पुकारें। शक आदि जाति के लोगों को 'भद्रदत्त' इत्यादि नामों से संबोधित करें। इसी तरह जिस-जिस की जो कला हो, शिल्प हो, विद्या हो, पेशा हो अथवा जाति हो, उसी के अनुसार नामों से जैसे—कुम्भकार, चित्रकार, सुवर्णकार—से उसे सम्बोधन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य व्यवहार भी इसी तरह समझ लेना चाहिए।

———

परिशिष्ट (घ)

भास के कुछ पाणिनि-व्याकरण के विरुद्ध प्रयोग

अशुद्ध	शुद्ध
१. आकर्षमाणः (१।१६)	आकर्षन् (कृष् भ्वा० परस्मैपद)
२. कारणः (६।१२)	कारणम् (नपुं०)
३. जालान् (३।७)	जालानि (नपुं०)
४. घर्षितः (३।१४ के बाद का गद्य)	घृष्ट (णिच् नहीं चाहिये)
५. प्रत्याययति (२ २४)	(प्रत्येति चाहिये, णिच् नहीं चाहिये)
६. मज्जमानम् (६।२२)	मजन्तम् (परस्मै०)
७. रमते (२।१०)	रमयति (रम् अकर्मक है।
८. विंशत्० (५।१४ के बाद का गद्य)	विंशति०
९. बीजन्ति, वीजन्तः (३।१)	वीजन्ते, वीजमानाः (वीज् आत्मने०)
१०. सन्नाहमाज्ञापय वानरवाहिनीम्	(आज्ञप् द्विकर्मक नहीं है। सन्नाहार्थम्
११. (चतुर्थ अंक का प्रारम्भिक गद्य)	चाहिए)
वानरवाहिनी सन्नाहमाज्ञापिता (४।१)	,, ,, ,,
१२. समाश्वास्य (६।१६)	समाश्वस्य (णिजन्त नहीं चाहिए)
१३. समाश्वासितुम् (३।१९)	समाश्वासयितुम्

अन्य प्रयोग टीका के व्याकरण-स्तम्भ में स्पष्ट कर रखे हैं।

———

परिशिष्ट (ङ)

श्लोकानुक्रमणिका

हमारे महत्त्वपूर्ण छात्रोपयोगी प्रकाशन

[मूलपाठ के साथ संस्कृत-हिन्दी, भूमिका,
टिप्पणी एवं अन्य छात्रोपयोगी सामग्री सहित]

E-mail: mlbd@mlbd.com
Website: www.mlbd.com

₹ 295

Sanskrit Literature

ISBN: 978-81-208-2509-3